इतिहास समुच्चय ।

श्रीहरिः

कला ।

श्रीहरिश्चन्द्रकला ।

अथवा

गोलोकवासी भा. भू. भा. श्रीहरिश्चन्द्र का जीवन-सर्वस्व

द्वितीय भाग ।

जिस में

उक्त महामान्य सुप्रसिद्ध कविवर कृत ऐतिहासिक विषयों का संग्रह है ।

हिन्दी भाषा के प्रेमी तथा रसिकजनों के मनोविलास के लिये श्री म० कु० बाबू रामदीन सिंह "क्षत्रिय-पत्रिका" सम्पादक द्वारा संकलित व रायसाहब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित ।

पटना

खड्गविलास प्रेस—बांकीपुर ।

बाबू रामप्रसाद सिंह ने मुद्रित किया ।

श्री हरिश्चन्द्र संवत् ३४ । वि० सं० १९७५ । सन् १९१८ ईस्वी ।

मूल्य २) रुपये

[डाक महसूल ।=)

जन्म कुण्डलियों का होना क्या साधारण बात समझी जा सकती है ? कदापि नहीं।

इस स्थान पर मेरा यह कहना अनुचित न होगा कि भारतेन्दु जी के इतिहास सम्बन्धी समस्त लेख तथा संग्रह मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुए। जहां लों लब्ध हुए मुद्रित किये और शेष के परिशोध में हूं क्योंकि बाबू साहिब के संग्रहों का हाल सुन सुन कर चित्त आकुल हो जाता है कि कैसे और कहां से उन को पाऊं। संवत् १९४५ में जो ऐतिहासिक विषय छप चुके हैं उस के अनन्तर भारतेन्दु जी के स्नेह भाजन श्री बाबू राधाकृष्ण दास जी से "कालचक्र" नाम का एक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है और इसी प्रकार से एक सज्जन के पास दो अल्बम् भारतेन्दु जी के सुने गये जिन में शाही फार्सी पत्रों का संग्रह है, अतः उन को अधिक द्रव्य दे कर दोनों अल्बम् ले लिये गये। देखने पर ज्ञात हुआ कि उन में से बहुतेरे पुरातन पत्र निकल गये तथापि इतनी लिपियां उन में हैं कि उन के संग्रह का एक असाधारण ग्रन्थ बन सकता है। एक मित्र ने मुझ से कहा है कि किसी के यहां बाबू साहिब की संग्रह की हुई २०० से अधिक प्रशस्तियां हैं, उन को भी ला दूंगा, निदान इसी भांति जहां कहीं इस सर्वसंग्रही के भण्डार का पता लगता है उस की प्राप्ति का यत्न किया जाता है और आशा है कि कालक्रम से अनेक अलभ्य वस्तुएं हाथ आ जायंगी।

उक्त ग्रंथों के मुद्रण होने के पश्चात् जो विषय प्राप्त हुए उन को इसलिये इस खण्ड में प्रकाशित नहीं किया कि जब सब स्फुट

लेख एकात्रत हो जायं तो सर्व-संग्रह का एक भाग पृथक् ही छाप दिया जाय।

श्रीमान् भारतेन्दु के ग्रन्थों के विषय में यथार्थ प्रशंसा का दम भरना झख मारना है क्योंकि जो कुछ हम लोग न कह सकेंगे वह सब ग्रन्थ ही आप से आप पुकारेंगे, परन्तु जिन अनुरक्त महानुभावों ने अपने हृदय का उद्गार प्रकटित किया है उस का गोपन करना भी कृतघ्नता है अतः निज सम्मति कुछ न लिख कर चन्द्रकला की जहां लों समालोचनायें प्राप्त हुई हैं उन को इस ग्रन्थ के अन्त में (६ ठे खण्ड के अन्त में) एकत्रित कर के रख दिया है, सहृदय सज्जनों को उन के पढ़ने से अधिक आनन्द होगा।

प्रकाशक।

ग्रन्थ सूची।

KASHMIR FLOWER

CONTAINING

A Short History of Kashmir, A Genealogical Table of Rajas with Dates &c., Sri Harsa, A Review of Kalhana's Rajatarangini, and a Short History of The Present Jamboo Raj Family.

BY

BHARATENDU HARISHCHANDRA.

....ITED BY CHANDI PRASAD SINHA,
AT THE KHADGA VILAS PRESS,

BANKIPUR.

1916.

काश्मीर कुसुम

अथवा

राजतरंगिणी कमल

(काश्मीर का संक्षिप्त इतिहास, राजाओं के नाम और समय का सविस्तर चक्र, राजतरंगिणी की समालोचना, श्रीहर्ष और वर्त्तमान महाराज कश्मीर के वंश का छोटा इतिहास।)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित।

'कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः।
कवीन् प्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः' ॥
'भुजतरुवनच्छायां येषां निषेव्य महौजसां।
जलधिरसनामेदिन्यासीदसावकुतोभया ॥
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रहं।
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे' ॥

खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर.

बाबू चण्डी प्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित।

सन् १९१६ ईस्वी। विक्रमाब्द १९७३। हरिश्चन्द्र सम्वत् ३२

दूसरी बार.

हे सौभाग्य काश्मीर,

केवल ग्रन्थकर्त्ता ही से नहीं इस ग्रन्थ से भी तुम से अनेक सम्बन्ध हैं। तुम कुसुम जाति हो, यह ग्रन्थ भी। काश्मीर के क्षेत्र से दर्शकों का मन प्रसन्न होता है, तुम्हारे दर्शन से हमारा। कश्मीर इस पृथ्वी का स्वर्ग है, तुम हमारे हेतु इस पृथ्वी में स्वर्ग हो। यह ग्रन्थ राजतरंगिणी कमल है, तुम वर्ण से राजतरंगिणी कमला ही नहीं हमारी आशाराजतरंगिणी में कमल हो। तरंगिणी गण की रानी भोगवती भागिरथी है, तुम हमारी हृदयपातालबाहिनी राजतरंगिणी हो। कश्मीरभू स्वर्णमयी नीलमणि प्रभवा है, तुम भी इन्हीं अनेक सम्बन्धों से समझो या केवल हमारे हृदय सम्बन्ध से यह ग्रन्थ तुम को समर्पित है।

भारतवर्ष के निर्मल आकाश में इतिहासचन्द्रमा का दर्शन नहीं होता, क्योंकि भारतवर्ष की प्राचीन विद्याओं के साथ इतिहास का भी लोप हो गया। कुछ तो पूर्व समय में शृङ्खलावद्ध इतिहास लिखने की चाल ही न थी और जो कुछ बचा बचाया था वह भी कराल काल के गाल में चला गया। जैनों ने वैदिकों के ग्रन्थ नाश किए और वैदिकों ने जैनों के। एक राजधानी में एक वंश राज्य करता था। जब दूसरे वंश ने उस को जीता तो पहले वंश की संपूर्ण वंशावली के ग्रन्थ जला दिए। कवियों ने अपने अन्नदाता की झूठी प्रशंसा की कहानी जोड़ लीं और उन के जो शत्रु थे उन की सब कीर्ति लोप कर दीं। यह सब तो था ही, अन्त में मुसल्मानों ने आकर जो कुछ बचे बचाये ग्रन्थ थे जला दिए। चलिए छुट्टी हुई। ऐसी काली घटा छाई कि भारतवर्ष के कीर्तिचन्द्रमा का प्रकाश ही छिप गया। हरिश्चन्द्र, राम, युधिष्ठिर ऐसे महानुभावों की कीर्ति का प्रकाश अति उत्कट था इसी से घनपटल को वेध कर अब तक हम लोगों के अंधेरे हृदय को आलोक पहुंचाता है। किन्तु ब्रह्मा से ले कर आज तक और जितने बड़े बड़े राजा या वीर या पंडित या महानुभाव हुए किसी का समाचार ठीक ठीक नहीं मिलता। पुराणादिकों में नाम मिलता है तो समय नहीं मिलता।

ऐसे अंधेरे में कश्मीर के राजाओं के इतिहास का एक तारा जो हम लोगों को दिखलाई पड़ता है इसी को हम कई सूर्य से बढ़ कर समझते हैं। सिद्धान्त यह कि भारतवर्ष में यही एक देश है जिस का इतिहास शृङ्खलावद्ध देखने में आता है और यही कारण है कि इस इतिहास पर हमारा ऐसा आदर और आग्रह है।

कश्मीर के इतिहास में कल्हण कवि की राजतरंगिणी ही मुख्य

है। यद्यपि कल्हण के पहले सुब्रत, क्षेमेन्द्र, हेलाराज, नीलमुनि, पद्ममिहिर और श्री छविल्लभट्ट आदि ग्रन्थकार हुए हैं, किन्तु किसी के ग्रन्थ अब नहीं मिलते। कल्हण ने लिखा है कि हेलाराज ने बारह हज़ार ग्रन्थ कश्मीर के राजाओं के वर्णन के एकत्र किए थे। नीलमुनि ने इस इतिहास में एक बड़ा सा पुराण ही बनाया था। किन्तु हाय! अब वे ग्रन्थ कहीं नहीं मिलते। कश्मीर के बचे बचाए जितने ग्रन्थ थे सब दुष्टों ने जला दिए। आर्य्यों की मन्दिर मूर्त्ति आदि में कारीगरी, कीर्तिस्तम्भादिकों के लेख और पुस्तकों का इन दुष्टों के हाथ से समूल नाश हो गया। परशुराम जी ने राजाओं का शरीरमात्र नाश किया, किन्तु इन्हों ने देह बल विद्या धन प्राण की कौन कहै कीर्ति का भी नाश कर दिया।

कल्हण ने जयसिंह के काल में सन् ११४८ ई० में राजतरंगिणी बनाई। यह कश्मीर के अमात्य चम्पक का पुत्र था और इसी कारण से इस को इस ग्रन्थ के बनाने में बहुत सा विषय सहज ही में मिला था।

इस के पीछे जोन राज ने १४१२ में राजावली बना कर कल्हण से लेकर अपने काल तक के राजाओं का उस में वर्णन किया। फिर उस के शिष्य श्री बरराज ने १४७७ में एक ग्रन्थ और बनाया। अकबर के समय में प्राज्यभट्ट ने इस इतिहास का चतुर्थ खंड लिखा। इस प्रकार चार खंडों में यह कश्मीर का इतिहास संस्कृत में श्लोकबद्ध विद्यमान है।

महाराज रणजीत सिंह के काल में जान मैकफेयर नामक एक यूरोपीय विद्वान ने कश्मीर से पहिले पहल इस ग्रन्थ का संग्रह किया। विलसन साहब ने एशियाटिक रिसर्चेज़ में इस के प्रथम छ सर्ग का अनुवाद भी किया था।

इसी राजतरंगिणी ही से यह इतिहास मैं ने लिखा है। इस में केवल राजाओं के समय और बड़ी बड़ी घटनाओं का वर्णन है।

आशा है कि कोई इस को सविस्तर भी निर्माण कर के प्रकाश करैगा।

राजतरंगिणी छोड़ कर और और भी कई ग्रन्थों और लेखों से इस में संग्रह किया हैं। यथा आइने अकबरी, ……… का फारसी इतिहास, एशियाटिक सोसाइटी के पत्र; विल्सन, विल्फर्ड, प्रिंसिप, कनिंगहम, टाड, विलिअम्स, गोशेन और ट्रायर आदि के लेख, बाबू जोगेशचन्द्रदत्त की अङ्गरेजी तवारीख, दीवान-कृपाराम जी की फारसी तवारीख आदि।

बहुतों का मत है कि कश्मीर शब्द कश्यपमेरु का अपभ्रंश है। पहिले पहल कश्यप मुनि ने अपने तपोबल से इस प्रदेश का पानी सुखा कर इस को बसाया था। इन के पीछे गोनर्द तक अर्थात् कलियुग के प्रारम्भ तक राजाओं का कुछ पता नहीं है। गोनर्द से ही राजाओं का नाम शृङ्खलाबद्ध मिलता है। मुसल्मान लेखकों ने इस के पूर्व के भी कई नाम लिखे हैं, किन्तु वे सब ऐसे अशुद्ध और प्रति शब्द में खां उपाधि विशिष्ट है कि उन नामों पर श्रद्धा नहीं होती।

गोनर्द से लेकर सहदेव तक पूर्व में सैंतीस सौ बरस के लगभग डेढ़ सौ हिन्दू राजाओं ने कश्मीर भोगा, फिर पूरे पांच सौ बरस मुसल्मानों ने इस का उत्पीड़न किया। (बीच में बागी हो कर यद्यपि राजा सुखजीवन ने ८ बरस राज्य किया था पर उस की कोई गिनती नहीं) फिर नाममात्र को कश्मीर अफ़्ग़ानिस्तानी राज्य-भुक्त होकर आज चौंसठ बरस से फिर हिन्दुओं के अधिकार में आया है। अब ईश्वर सर्वदा इस को उपद्रवों से बचावै। एवमस्तु

कश्मीर के वर्त्तमान महाराज की संक्षित वंशपरम्परा यों है। ये लोग कछवाहे क्षत्री हैं। जैपुर प्रान्त से सूर्यदेव नामक एक राजकुमार ने आकर जम्बू में राज्य का आरम्भ किया। उस के वंश में भुजदेव, अवतारदेव, यशदेव, कृपालुदेव, चक्रदेव, विजयदेव, नृसिंहदेव, अर्जनदेव और जयदेव ये क्रम से हुए। जयदेव का पुत्र मालदेव बड़ा बली और पराक्रमी हुआ। इस ने हँसी हँसी में पचास पचास मन के जो पत्थर उठाए हैं वह उस की अचल कीर्ति बन कर अब भी जम्बू में पड़े हैं। उस के पीछे हम्बीरदेव, अजेव्यदेव, वीरदेव, घोगड़देव, कर्पूरदेव और सुमहलदेव क्रम से राजा हुए। सुमहलदेव के पुत्र संग्रामदेव ने फिर बड़ा नाम किया। आलमगीर इन की वीरता से ऐसा प्रसन्न हुआ कि महाराजगी का पद छत्र चंवर सब कुछ दिया। ये दक्षिण की लड़ाई में मारे गए। इन के पुत्र हरिदेव ने और उन के पुत्र गजसिंह ने राज को बहुत ही बसाया। सब प्रकार के नियम बांधे और महल बनवाए। गजसिंह के पुत्र ध्रुवदेव ने बहुत दिन तक ऐश्वर्यपूर्वक राज्य किया। ध्रुवदेव के रणजीतदेव और सूरतसिंह पुत्र थे। रणजीतदेव को ब्रजराजदेव और उन को निजपरम्परासम्पूर्णकारी सम्पूर्णदेव हुए। सम्पूर्णदेव को सन्तति न होने के कारण रणजीतदेव के दूसरे पुत्र दलेलसिंह के पुत्र जैतसिंह ने राज्य पाया। महाराज रणजीतसिंह लाहोरवाले के प्रताप के समय में जैतसिंह को पिनशिन मिली और जम्बू का राज्य लाहोर में मिल गया। जैतसिंह के पुत्र रघुवीरदेव के पुत्र पौत्र अब अम्बाले में हैं और सर्कार अंगरेज़ से पिनशिन पाते हैं। ध्रुवदेव के दूसरे पुत्र सूरतसिंह को जोरावर सिंह और मियां मोटासिंह दो पुत्र थे। मियां मोटा को विभूतिसिंह और उन को एक पुत्र ब्रजदेव हैं जिन को वर्त्तमान महाराज जम्बू ने क़ैद कर रक्खा है। जोरावरसिंह को किशोरसिंह और उन को तीन पुत्र हुए, गुलाबसिंह, सुचेतसिंह और ध्यानसिंह।

महाराज गुलाबसिंह ने महाराजाधिराज रणजीतसिंह से जम्बू का राज्य फिर पाया। सुचेतसिंह का वंश नहीं रहा। राजा ध्यानसिंह को हीरासिंह, जवाहरसिंह और मोतीसिंह हुए, जिन में राजा मोतीसिंह का वंश है। महाराज गुलाबसिंह के उद्धवसिंह, रणधीरसिंह और रणवीरसिंह तीन पुत्र हुए। प्रथम दोनों नौनिहालसिंह और राजा हीरासिंह के साथ क्रम से मर गए इस से महाराज रणवीरसिंह वर्त्तमान जम्बू और कश्मीर के महाराज ने राज्य पाया। इन के एक वैमात्रेय भाई मियां हट्टूसिंह हैं जिन को महाराज ने क़ैद कर रक्खा था, पर सुनते हैं कि आज कल वह क़ैद से निकल कर नैपाल प्रान्त में चले गए हैं। सन् १८६१ में महाराज को जी० सी० एस० आई० का पद सर्कार ने दिया और १८६२ में दत्तक लेने का आज्ञापत्र भी दिया। इन को २१ तोप की सलामी है। दिल्ली दरबार में इन को और भी अनेक आदरसूचक पद मिले हैं। ये संस्कृत विद्या और धर्म के अनुरागी हैं। इन को तीन पुत्र हैं यथा युवराज प्रतापसिंह, कुमार रामसिंह और कुमार अमरसिंह *।

राजतरङ्गिणी की समालोचना।

जिस महाग्रन्थ के कारण हम लोग आज दिन कश्मीर का इतिहास प्रत्यक्ष करते हैं उस के विषय में भी कुछ कहना यहां

---

* वर्त्तमान महाराज के पारिषदवर्ग भी उत्तम हैं। इन के एक बड़े शुभचिन्तक पण्डित रामकृष्ण जी को कई वर्ष हुए लोगों ने षड्चक्र कर के राज्य से अलग कर दिया था और अब उन के पुत्र पण्डित रघुनाथ जी काशी में रहते हैं। महाराज के अमात्य दीवान ज्वाला सहाय के पौत्र दीवान कृपाराम के पुत्र दीवान अनन्तराम जी हैं, जो अङ्गरेज़ी फ़ारसी आदि पढ़े और सुचतुर हैं। बाबू नीलाम्बर मुकुर्जी, बाबू गणेशचौबे प्रभृति और भी कई चतुर लोग राज्यकार्य में दक्ष हैं।

बहुत आवश्यक है। इस ग्रन्थ को कल्हण कवि ने शाके एक हज़ार सत्तर १०७० में बनाया था। उस समय तीसरे गोनर्द से तेईस सौ तीस बरस बीत चुके थे। इस ग्रन्थ की संस्कृत क्लिष्ट और एक विचित्र शैली की है। कवि के स्वभाव का जहां तक परिचय मिला है ऐसा जाना जाता है कि वह उद्धत और अभिमानी था, किन्तु साथ ही यह भी है कि उस की गवेषणा अत्यन्त गम्भीर थी। नीलपुराण छोड़ कर ग्यारह प्राचीन ग्रन्थ इस ने इतिहास के देखे थे। केवल इन्हीं ग्रन्थों के भरोसे इस ने यह ग्रन्थ नहीं बनाया वरंच आजकल के पुरातत्ववेत्ता (Antiquarians) की भांति प्राचीन राजाओं के शासनपत्र, दानपत्र तथा शिवालय आदि की लिपि भी इस ने देखी थीं। (प्रथम तरंग १५ श्लोक देखो) यह मन्त्री का पुत्र था, इस से सम्भव है कि इन वस्तुओं को देखने में इस को इतना परिश्रम न पड़ा होगा जितना यदि कोई साधारण कवि बनाता तो उस को पड़ता। इस ग्रन्थ में आठ हज़ार श्लोक हैं। साढ़े छ सौ बरस कलियुग बीते कौरव पांडवों का युद्ध हुआ था, यह बात इसी ने प्रचलित की है। जरासन्ध के युद्ध में कश्मीर का पहला राजा गोनर्द मारा गया। यहां से कथा का आरम्भ है *। इसी आदि गोनर्द के पुत्र को श्रीकृष्ण

---

* इस ग्रन्थकर्त्ता के पिता श्रीयुत कविवर गिरिधरदास जी ने अपने जरासन्धबध नामक महाकाव्य में जरासन्ध की सैना में कश्मीर के आदि गोनर्द के वर्णन में कई एक छन्द लिखा है वह भी प्रकाश किया जाता है। (३ सर्ग ४० छन्द)

चलेउ भूप गोनर्द वर्दवाहन समान बल,
संग लिये बहु मर्द सर्द लखि होत अपर दल ।
फेंटा सीस लपेटा गल मुकुता की माला,
सिर केसर को पुंड्र धरे पचरङ्ग दुसाला ।

ने गान्धार देश के स्वयम्बर में मारा और उस की सगर्भा रानी का राज्य पर बैठाया। उस समय श्रीकृष्ण ने कश्मीर की महिमा में एक पुराण का श्लोक कहा। (१ त० ३२ श्लोक) यही प्रकरण इस बात का प्रमाण है कि कश्मीर का राज्य बहुत दिन से प्रतिष्ठित है। इस रानी के पुत्र का नाम द्वितीय गोनर्द हुआ, जो महाभारत के युद्ध में मारा गया। इसी से स्पष्ट है कि पूर्वोक्त तीनों राजा जवानी ही में मरे, क्योंकि एक पांडवों के काल में तीनों का वर्णन आया है। इन लोगों के अनेक काल पीछे अशोक राजा जैनी हुआ। इसी ने श्रीनगर बसाया। इस के पीछे जलौकराजा प्रतापी हुआ जिस ने कान्यकुब्जादि देश जीता। यह शैव था। (भारतवर्ष में मूर्तिपूजा और शैव वैष्णवादि मत बहुत ही थोड़े काल से चले हैं यह कहने वाले महात्मागण इस प्रसंग को आंख खोल कर पढ़ैं)(१ त० ११३ श्लो०) फिर हुष्क जुष्क और कनिष्क ये तीन

रथ चारु जराऊ सोहतो रूप सबन मन मोहतो,
कश्मीर भूप भरि रिसि लसी मथुरापुर दिसि जोहतो ॥

(६ सर्ग २५ छन्द)

छप्पय—मद्रक सुम्भक पनस किंपुरुस द्रुमनृप कोसल,
सोमदत्त बाल्हीक भूरि सह भूरिस्रवा सल ।
युधामन्यु गोनर्द अनामय पुनि उतमौजा,
चेकितान अरु अङ्ग बङ्ग कालिङ्ग महौजा ।
नृपवृहत छत्र कैसिक सुहित आहुति सहित भुआल सब
चढ़ि लरैं द्वार पश्चिम जबर, अरि गति देन ढब ॥

(१० सर्ग ११ छन्द)

कैसिक नृप अति विक्रमवन्त, अरिमरदन संगाभिरयो तुरन्त ।
धरम वृद्ध गोनर्द महीप, करन लगे रथ जोरि समीप ।
हरिगीत छन्द—तहं काश्मीरी भूमिपति गोनर्द धनु टंकारि कै ।

विदेशी (Bactro-Indian tribe) राजा हुए। इन के समय में शाक्य सिंह को हुए डेढ़ सौ बरस हुए थे। (१ त० १७२ श्लोक) इस से स्पष्ट होता है कि राजतरंगिणी के हिसाब से शाक्यसिंह को हुए पचास सौ बरस हुए। इसी समय में नागार्जुन नामक सिद्ध भी हुआ। इन के पीछे अभिमन्यु के समय में चन्द्राचार्य ने व्याकरण के महाभाष्य का प्रचार किया और एक दूसरे चन्द्रदेव ने बौद्धों को जीता। कुछ काल पीछे मिहिरकुल नामक एक राजा हुआ। इस के समय की एक घटना बिचारने के योग्य है। वह यह कि इस की रानी सिंहल का बना रेशमी कपड़ा पहने थी उस पर वहां के राजा के पैर की सोनहली छाप थी। इस पर कश्मीर के राजा ने बड़ा क्रोध किया और लङ्का जीतने चला।

भट धर्म वृद्धहि छाय दीनो मारु मारु पुकारि कै ।
सुफलक सुवन धनु धरि निज अहि सरिस वान प्रहारिकै ।
मव काटिकै दुसमन विसिख महि मध्य दीनो डारिकै ॥ ९५ ॥
गोनर्द तब बोलत भयो तू ज्वान प्रगट लखात है ।
क्यों धर्म्म वृद्ध कहात है आचरज यह अधिकात है ।
पै एक बात विचारि करि संदेह मेरो जात है ।
रन धरम वृद्धन को धरै अति सिथिल तेरो गात है ॥ ९६ ॥
जदुवीर अब बोलत भयो नृप सांच तोहि बातै कहैं ।
हम धर्म्म वृद्ध कहात हैं पै करम वृद्ध नहीं अहैं ।
अरु धर्म्म वृख को नाम है सो वृद्ध बहु दिन को भयो ।
गोनरद तू रद रहित बूढ़ो पतिहि क्यों चाहै नयो ॥ ९७ ॥
इमि वचन सुनि सुफलक सुवन के कासमीरी कोपि कै ।
बहु बरखि आयुध वारिधर सम दियो पर रथ लोपि कै ।
तिमि धर्म्म वृद्धि बजाय धनु सर त्याग कीने चोपि कै ।
गोनर्द सङ्ख उड़ायकै गरज्यो विजय पन रोपि कै ॥ ९८ ॥

तब लङ्कावालों ने 'यमुषदेव' नामक सूर्य के बिम्ब के छापे का कपड़ा दे कर उस से मेल किया। (१ त० ३०० श्लोक) इस से स्पष्ट होता है कि चांदी सोने से कपड़ा छापना लङ्का में तभी से प्रचलित था। अद्यापि दक्षिण हैदराबाद में (लङ्का के समीप) छापा अच्छा होता है। उस समय तक भट्टि (Bhatti) दारद (Dardareans) और गांधार (Kandharians) ब्राह्मण होते थे।

फिर तुंजीन नामक राजा के समय में चन्द्रक कवि ने नाटक बनाया। (२ त० १६ श्लो०) इस के समय में एक बात और आश्चर्य की लिखी है कि एक समय बड़ा काल पड़ा था तो परमेश्वर ने कबूतर बरसाये थे। (२ त० ५१ श्लो०) और हर्ष नामक एक कोई और राजा उस काल में हुआ था। इस राजा के कुछ काल पीछे सन्धिमान राजा की कथा भी बड़ी आश्चर्य की लिखी है कि वह सूली दिया गया था और फिर जी गया इत्यादि। विक्रमादित्य के मरने के थोड़े ही समय पीछे प्रवरसेन राजा ने नाव का पुल बांधा और वह ललाट में त्रिशूल की भांति तिलक देता था (३ त० ३५६ और ३६७ श्लो०)।

जयापीड़ राजा का समय फिर ध्यान देने के योग्य है, क्योंकि इस के समय में कई पण्डित हुए हैं, जिन में शंकु नामक कवि ने मम्म और उत्पल की लड़ाई में भुवनाभ्युदय नामक काव्य बनाया था। (४ त० २५ श्लो०) इसी के समय में वामन नामक वैयाकरण पण्डित हुआ है जिस की कारिका प्रसिद्ध है। (४ त० ४८७ से ४९४ श्लो० तक) इसी वामन का बोपदेव ने खण्डन किया है। (बोपदेव महाग्राहग्रस्तो वामने कुंजरः) इस से बोपदेव जयापीड़ के समय (७५ ई०) के पीछे हुए हैं यह सिद्ध होता है। जयापीड़ ने द्वारका फिर से बसा कर मन्दिर बन-

बाए। (४ त० ५६० श्लो०) और उस समय नैपाल का राजा
असुड़ि था (४ त० ५२६ श्लो०)।

राजा शंकरवर्मा का समय भी दृष्टि देने के योग्य है। इस के
पास ३०० हाथी, लाख घोड़े और नौ लाख प्यादे थे। उस समय
गुजरात में 'खालान खान' का जोर था। दरद और तुरुष्क
देश के राजा भारत में बड़ा उपद्रव मचाए हुए थे। लाखियशाह
खानालखान का सर्दार था (५ त० १५३ से १६० श्लो० तक)।
इस ग्रंथ में मुसल्मानों का वर्णन पहले यहीं आया है। इस से
स्पष्ट होता है कि ईस्वी नवीं शताब्दी के अन्त तक जो मुसल्मान
चढ़ाई करते थे वे गुजरात की राह से करते थे; उत्तर पश्चिम
की राह नहीं खुली थी। इस तरंग में कायस्थों की बड़ी निन्दा
की है (४ त० ६२५ श्लो० से और ५ त० १७६ श्लो० आदि)।

चतुर्थ और पञ्चम तरङ्ग में कई बात और दृष्टि देने के योग्य
है। जैसे तांबे की 'दीनार' पर राजाओं का नाम खुदा रहना।
(४ त० ६२१ श्लो०) जहां पथिक टिकें उस स्थान का नाम गंज
(४ त० ५६२ श्लो०)। रुपयों की हुण्डिका (हुण्डी) का प्रचार।
(५ त० १५६ श्लो०) मेष के ताज़े चमड़े पर खड़े होकर तलवार
ढाल हाथ में लेकर शपथ खाना इत्यादि (५ त० ३३० श्लो०)।
इसी तरङ्ग में गानेवालों का नाम डोम लिखा है। (५ त० ३५८
श्लो०) यह दीनार गंज हुण्डी और डोम शब्द अब तक भाषा में
प्रचलित है, बरंच मीरहसन ने भी 'बडोमनपना' लिखा है।
जैसा इस काल में रंडी और इन की बुढ़िया तथा भंडुओं के
समझने की और साधारण लोग जिस में न समझैं * ऐसी एक

* वर्तमान काल में रंडियों की भाषा का कुछ उदाहरण दिखाते हैं। नगूर की वारवधूगण की संकेत भाषा यथा—लूरा-पुरुष, लूरी-रंडी, चीसा-अच्छा बीला, बुरा मीमड़, रुपया, आदि। ग्राम्य रंडियों की भाषा यथा-सेरुआ-पुरुष, सेरुइ-स्त्री. कनेरी-रुपया, सेमिल-अच्छा है और छौलिआयल्यः अर्थात् रुपया सब ठग लो।

भाषा प्रचलित है वैसी ही उस काल में भी थी। गानेवाले को हेलू गांव दिया गया। इस की उस काल की भाषा हुई 'रंगस्सहल्लुदिराणा' (५ त० ४०२ श्लो०)।

षष्ठतरंग में दिद्दारानी का उपद्रव और बहुत से राजाओं के नाम के पूर्व में शाहिपद ध्यान देने के योग्य है।

सप्तमतरंग (५३ श्लो०) में हम्मीर नाम का एक राजा तुंग के समय में और (१९० श्लो०) अनन्त के समय में भोज का राजा होना लिखा है। मान के हेतु लोगों को ठाकुर की पदवी दी जाती थी। (७ त० २९ श्लो०) तुरुष्क देश से सोने का मुलम्मा करने की विद्या हर्ष के समय में आई। (७ त० ५३ श्लो०) इसी के काल में खस लोगों ने पहले पहल बन्दूक का युद्ध किया (७ त० ९८४ श्लो०) कालिंजर के राजा, राजा उदय सिंह आदि कई राजाओं के प्रसंग से (१३०० श्लो० के आसपास) नाम आए हैं। युद्ध हारने के समय क्षत्रानियां राजपुताने की भांति यहां भी जल जाती थीं। (७ त० १५०० श्लो०)

अष्टमतरंग में भी कायस्थों की बहुत निन्दा की है। (८ त० ८९ श्लो० आदि) कैदियों को भांग से रंग कर कपड़ा पहनाते थे। (८ त० ९३ श्लो०) कल्याण के हेतु लोग भीष्मस्तवराज, गजेन्द्रमोक्ष, दुर्गापाठ आदि का पाठ करते थे (८ त० १०९ श्लो०) टकसाल का नाम टंकशाला। (८ त० १५२ श्लो०) उस समय में भी राजाओं को इस बात का आग्रह होता था कि उन्हीं के नाम के सिक्के का प्रचार विशेष हो। इस समय (बारहवीं शताब्दी के मध्य में) कालिंजर का राजा कल्ह था। (८ त० २०५ श्लो०) कटार को कट्टार कहते थे। (८ त० ५१५ श्लो०) हर्ष का सिर काट कर लोगों ने भाले पर चढ़ाया, किन्तु इस के पहले किसी राजा के सिर काटने की चाल नहीं थी। हर्ष का व्याख्यान इस तरंग में अवश्य पढ़ने के योग्य है, जिस से शृङ्गार वीर आदि

रसों का हृदय में उदय हो कर अन्त में वैराग्य आता है।

राजतरंगिणी में रामलक्ष्मण को मूर्त्ति का पृथ्वी के भीतर से निकलना इस बात का प्रमाण है कि मूर्त्तिपूजा यहां बहुत दिन से प्रचलित है।

इस में देवी, देवता, भूत प्रेत और नागा की अनेक प्रकार की आश्चर्य कथा हैं जिन को ग्रन्थ बढ़ने के भय से यहां नहीं लिखा। और भी वृक्ष, शस्त्र औषधि और मणि आदिकों के अनेक प्रकार के वर्णन हैं। कोई महात्मा इस का पूरा अनुवाद करैंगे तो साधारण पाठकों को इस का पूर्ण आनन्द मिलैगा।

इस में एक मणि का वर्णन बड़ा आश्चर्यजनक है। एक बेर राजा नदी पार होना चाहता था किन्तु कोई सामान उस समय नहीं था। एक सिद्ध मनुष्य नें जल में एक मणि फेंक दी, उस से जल हट गया और सैना पार उतर गई। फिर दूसरी मणि के बल से इस मणि को उठा लिया। एक कहानी ऐसी और भी प्रसिद्ध है कि किसी राजा की अंगूठी पानी में गिर पड़ी। राजा को उस अमूल्य रत्न का बड़ा शोच हुआ। यह देख कर मंत्री ने अपनी अंगूठी डोरे में बांध कर पानी में डाली। मंत्री के अंगूठी के रत्न में ऐसी शक्ति थी कि अन्य रत्नों को वह खींच लेती थी, इस से राजा की अंगूठी मिल गई।

हर्षदेव।

हर्षदेव के विषय में यद्यपि राजतरंगिणी में कुछ विशेष नहीं लिखा है किन्तु इस राजा का नाम भारतवर्ष में बहुत प्रसिद्ध है और एक इस बात की प्रसिद्धि पर कि रत्नावली इत्यादि काव्य-ग्रन्थ उस के समय में बने थे इस राजा पर मेरी विशेष दृष्टि गई। इस का समय विक्रम और कालिदास के समय के

बहुत पीछे स्पष्ट होने से इस बात की मुझ को बड़ी चिन्ता हुई कि वह कौन पुण्यात्मा श्री हर्ष है धावक ने जिस की कीर्ति आ-चन्द्रार्क स्थिर रक्खी है। वह श्री हर्ष निश्चय मम्मट कालिदासादि के पूर्व और वत्सराज के पश्चात् हुआ है। वंशावलियों में खोजने से कई हर्ष मिले। यथा मालवा के राजाओं में एक हर्षमेघ १६१ ई० पू० हुआ है। यह युद्ध में मारा गया और कोई विशेष कथा इस की नहीं है। छतरपुर में एक लिपि में श्री हर्ष नाम का एक राजा बिहल का पुत्र यशोधर्मदेव का पिता लिखा है। और यह लिपि श्री हर्ष के प्रपौत्र की सं० १०१६ की है। एक श्री हर्ष नैपाल का राजा ३६३१ ई० पू० हुआ है। एक विक्रमा-दित्य जिस का दूसरा नाम हर्ष था मातृगुप्त के समय में हुआ। शक १००० में एक विक्रम और इस के कुछ ही पूर्व कान्यकुब्ज में एक हर्ष नामक राजा हुआ। कालिदास और श्री हर्ष कवि भी इसी काल में थे। जैन लोगों ने लिखा है कि वाराणसी के जयन्तीचन्द्र नामक राजा के दरबार में श्री हर्ष कवि था। (१०८९ शक) यह जैनों का भ्रम है। और हर्षों को छोड़ कर कान्यकुब्ज के हर्ष को यदि धावक कवि को स्वामी मानें तभी कुछ लड़ सब बातों की मिलैगी। जैसा रत्नावली में जिस वत्स-राज का चरित है वह कलियुग के प्रारम्भ में उरुक्षेप का पुत्र वत्स था। शुनकवंश का प्रथम राजा एक प्रद्योत हुआ है। [३००० ई० पू०] सम्भव है कि इसी प्रद्योत की बेटी वत्स की व्याही हो। धावक ने एक उदयन का भी वर्णन किया है वह पांडवों के वंश की अन्तावस्था में हुआ था। यह सब अति प्राचीन है। इस से ३६३१ ई० पू० के नैपालवाले श्रीहर्ष के हेतु धावक ने काव्य बनाया है यह नहीं हो सकता। कन्नौज में जो श्रीहर्ष नामक राजा था जिस की सभा में श्रीहर्ष नामक कवि का पिता रहता था वही श्रीहर्ष धावक का स्वामी था। छतरपुर

की लिपि का काल १०१६ है। चार पुश्त पहले यह काल ८५० संबत् में जा पड़ेगा। यशोविग्रह के पहले कदाचित् राजविप्लव हुआ हो और श्रीहर्ष से यशोविग्रह तक दो एक राजे और हो गए हों तो आश्चर्य नहीं। प्रशस्ति के 'क्ष्मापालमाला सुदिवंगतासु' इस पद से ऐसा झलकता भी है। यशोविग्रह से लेकर जयचन्द्र तक नामों में जितनी प्रशस्ति मिली हैं उन में बड़ा ही अन्तर है। जो ताम्रपत्र मैं ने देखा है उस का क्रम यह है—यशोविग्रह, महीचन्द्र, चन्द्रदेव, मदनपाल, गोविन्देन्द्र और जयचन्द्र। जैनों ने इसी जयचन्द्र को जयन्तीचन्द्र लिखा है और काशी का राजा लिखने का हेतु यह है कि 'तीर्थानि काशीकुशिकोत्तरकौशलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयताभिगम्य' इस पद से स्पष्ट है कि काशी भी उस समय कन्नौजवालों के अधिकार में थी इसी से काशी का राजा लिखा। और जयचन्द्र के प्रपितामह या उस के भी पिता के काल में जो श्रीहर्ष कवि था उस को जयचन्द्र के काल में लिख दिया। छतरपुर की लिपि में जो श्रीहर्ष राजा का पुत्र यशोधर्म वा वर्म लिखा है वही यशोविग्रह मान लिया जाय और जयचन्द्र उस के बड़े पुत्र का वंश और छतरपुर की लिपि वाले छोटे पुत्र के वंश में हैं ऐसा मान लीजिए तो विरोध मिट जायगा। चन्द्रदेव ने 'श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमखिलं दोर्विक्रमेनार्जितम्' इस पर से कान्यकुब्ज का राज्य अपने बल से पाया यह भी झलकता है। इस से यह भी सम्भव है कि श्रीहर्ष का राज्य कन्नौज में शेष न रहा हो और चन्द्रदेव ने नए सिरे से राज्य किया हो। यशोविग्रह के वंश की कई शाखा हैं इस का प्रमाण प्रशस्तियों के भिन्न भिन्न नामों ही से है। इस से ऐसा निश्चय होता है कि सम्बत् ६०७ के लगभग जो श्रीहर्ष नामक

हैं *। कालिदास, विक्रम, भोज सब इस काल के सौ बरस के आस पास पीछे उत्पन्न हुए हैं और इसी से कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में धावक' का परिचय दिया है। कल्हण कवि ने जो राजतरंगिणी में कालिदास या इस श्रीहर्ष का नाम नहीं दिया उस का कारण यही है कल्हण का स्वभाव असहिष्णु था और कालिदास से कश्मीर के राजा भीमगुप्त से (जो ६७५ ई० के काल में राज्य करता था) महा वैर था, इस से उस ने कालिदास का या उस के स्वामी विक्रम का नाम नहीं लिखा। कल्हण प्रायःसभी राजाओं की कुछ कुछ निन्दा कर देता है जैसा इसी हर्षदेव की जिस की और स्थानों में बड़ी स्तुति है कल्हण ने निन्दा की है। और ग्रन्थकारों के मत में श्रीहर्ष बड़ा न्यायपरायण स्वयं महा कवि अति उदार था। पुकार सुनने के हेतु महल की भित्तियों पर घंटियां लटकती थीं। रात दिन गुणियों से घिरा रहता था और अन्त में संसार को असार जानकर त्यागी हो गया। कल्हण से हर्ष राज से द्वेष का यह कारण है कि इस के स्वामी जयसिंह का बाप सुस्सल हर्ष के पोते भिक्षाचर को मार कर राज्य पर बैठा था।

---

* पूर्व में तुजीन के काल में एक हर्ष हुआ है यह लिख भी आए हैं।

महाराष्ट्रदेश का इतिहास।

महाराष्ट्र देश का शृङ्खलावद्ध इतिहास नहीं मिलता। शालिबाहन राजा वहां के पुराने राजों में गिना जाता है। इस ने शाका चलाया है और यह भी प्रसिद्ध है कि इस ने किसी विक्रम को मारा था। इस की राजधानी प्रतिष्ठान थी, जिसे अब पैठण कहते हैं। देवगिरी का राज्य मुसलमानों के आगमन तक स्वाधीन था और रामदेव वहां का आखिरी स्वतन्त्र राजा हुआ। तेरहवें शतक में मुसलमानों ने देवगिरी (देवगढ़) विजय कर के उस का नाम दौलताबाद रक्खा। सन् १३५० के लगभग दिल्ली के बादशाह के जाफर खां नामक सूबेदार ने दक्षिण में एक मुसलमानी स्वतंत्र राज्य स्थापन किया और वह पहिले एक ब्राह्मण का सेवक था इस से अपना पद ब्राह्मण रक्खा था। इस वंश ने पहिले कलवर्ग में, फिर विदर में, अन्दाज डेढ़ सौ बरस राज किया। सन् १५०० के लगभग इस राज की पांच शाखा हो गई थीं, जिन में गोलकुंडा बीजापुर और अहमदनगर वाले विशेष बली थे। इस वंश के राज में सन् १३९६ में बारह बरस का दक्षिण में एक बड़ा भारी अकाल पड़ा था। हिन्दुओं में उस समय कोंकण में सिरका नाम का केवल एक स्वाधीन सरदार था, बाकी सब लोग इन के आधीन थे। ब्राह्मणीराज्य नाश होने के समय सन् १४९६ ई० में वास्कोडिगामा पुर्तगाल लोगों के साथ कालीकट में प्रथम प्रवेश किया और सन् १५१० में गोआ उन लोगों के आधीन हो गया। बीजापुर के बादशाह अदलशाही और गोलकुंडे के कुतुब-

शाही और अहमदनगर के निज़ामशाही कहलाते थे। सन् १६२८ में अहमदनगर की बादशाहत दिल्ली के अधिकार में हो गई और गोलकुंडा और बीजापुर भी सन् १६८७ ई० में दिल्ली में मिल गए।

महाराष्ट्रों का राजस्थापन करनेवाला शिवा जी सन् १६२७ ई० में उत्पन्न हुआ।

उस के पूर्वजों का नाम भोंसला था, जो लोग दौलताबाद के पास बेरूल गांव में रहते थे।

शिवाजी का दादा मालोजी भोंसला अपने वंश में पहिला प्रसिद्ध मनुष्य हुआ और उस ने अपने बेटे शहाजी का विवाह अहमदनगर के बादशाह के दशहजारी सरदार जादोराव की बेटी से किया और पूना सूबा बादशाह से जागीर में पाया और शिवनेरी और चाकण दोनों किलों का सरदार भी नियत हुआ।

अहमदनगर की बादशाहत बिगड़ने पर शहाजी दिल्ली में शाहजहां के पास गया और वहां से अपनी जागीर कायम रखने की सनद ले आया, पर थोड़े ही दिन पीछे किसी वैमनस्य से दिल्ली का अधिकार छोड़ कर वह बीजापुर के बादशाह से जा मिला और अपने राज्य में करनाटक के बहुत से गांव मिला लिये।

शिवाजी शिवनेरी किले में जनमा और तब उस का बाप करनाटक में रहता था, इस से उस ने छोटेपन में पूना प्रान्त में दादोजी कोण देव से शिक्षा पाई थी। छोटेहीपन से इस में वीरता के चिन्ह और लड़ाई के उत्साह प्रगट थे।

उन्नीस बरस की अवस्था में तोरन का किला जीत लिया और दादोजी कोणदेव के मरने पर पूना के जिले का सब काम अपने हाथ में ले लिया।

बीजापुर के पुरन्दर और दूसरे दूसरे कई किले अपने अधिकार में कर के उस पर सन्तोष न कर के दिल्ली के बादशाही देशों में भी लूट कर इस ने अपना बल, सेना और धन बढ़ाया।

मालव नाम की सूर जाति के लोग इस की सेना में बहुत थे और सन् १६४८ ई० में बीजापुर के बादशाह से इस के कल्यान की सूबेदारी लिया, परन्तु जब बादशाह ने उस का बल बढ़ते देखा तो सन् १६५९ में अपने अफ़ज़ुल ख़ां नामक सरदार को उस से लड़ने को भेजा, पर शिवाजी ने धोखा दे कर इस सरदार को मार डाला।

सन् १६६४ ई० में शिवाजी का बाप मर गया और तब से उस ने अपना पद राजा रख कर अपने नाम की एक टकसाल जारी किया।

यह पहले राजगढ़ और फिर रायगढ़ के किले में रहता था। उस ने अपने बहुत से किले बनाये थे, जिन में राजगढ़ और प्रतापगढ़ ये दो मुख्य थे।

सन् १६५६ ई० में साम राजपन्त्र को शिवाजी ने पेशवा नियत किया।

बीजापुर का बादशाह तो शिवाजी को दमन करने में समर्थ न हुआ, परन्तु औरङ्गज़ेब ने राजा जसवन्त सिंह को बहुत सी फ़ौज दे कर शिवा जी को जीतने को भेजा, पर शिवाजी ने बादशाह के आधीन रहना स्वीकार कर के राजा से मेल कर लिया। और सन् १६६६ में आप भी दिल्ली गया, पर वहां उस का यथेष्ट आदर न हुआ, इस से उस ने बादशाह को कटु वचन कहा, जिस से थोड़े दिन तक कैद में रह कर फिर अपने बेटे समेत दक्खिन भाग गया। कुछ दिन पीछे औरङ्गज़ेब ने उस को राजा का ख़िताब

दिया और उसी अधिकार से उस ने दक्खिन में सन् १६७० में चौथाई और सर देश मुरकी नाम के दो कर स्थापन किये। सन् १६६५ में इस ने पानी के राह से मालावार पै चढ़ाई की और दो बेर सूरत लूटा। जब यह दूसरे बेर सूरत लूटने जाता था तब १५००० फ़ौज इस के साथ थी और राह में हुगली नामक शहर लूटने से बहुत सा धन इस के हाथ आया और फिर तो वह यहां तक बलवान हो गया था कि जो अपने भाई बेङ्को जी से बाप की जागीर बंटवाने और बीजापुर का इलाका लूटने को करनाटक की तरफ़ गया था तो इस के साथ ४०००० पैदल और ३०००० सवार थे।

सामराज पन्त से पेशवाई ले कर मेरो पन्त पिङ्गला को उस स्थान पर नियत किया और प्रताप राव गूजर इस का मुख्य सेनापति था, जिस के मरने पर हम्बीर राव मोहिता उसी काम पै हुआ।

सन् १६७६ में रामगढ़ में शिवाजी का विधिपूर्वक राज्याभिषेक हुआ और तब इस ने आठ अपने मुख्य प्रधान रक्खे थे। पेशवा-पन्त, अमात्य, पन्तसचिव, मन्त्री, सेनापति, सुमन्त, न्यायाधीश और पण्डितराव; यही आठ पद उस ने नियुक्त किये थे और अपने जीते हुए देशों का काम अवाजी सोन देव के अधिकार में दिया।

जिस समय सब कोंकन और पूना का इलाका और करनाटक और दूसरे देशों में भी कुछ पृथ्वी इस के आधीन थी उस समय सन् १६८० ई० में सम्भाजी और राजाराम नाम के दो पुत्र छोड़ कर ५३ वर्ष की अवस्था में यह परलोक सिधारा।

शिवाजी के मरने के पीछे २३ वर्ष की अवस्था में सम्भाजी गद्दी पर बैठा, पर यह ऐसा क्रूर और दुर्व्यसनी था कि इस से

सब लोग दुखी थे। इस ने अपने छोटे भाई राजाराम की मा को मार डाला और सब पुराने कारबारियों को निकाल कर कलूसा नामक कनौजिया ब्राह्मण को सब राजकाज सौंप दिया। इस की दुष्टता से इस के पिता का सब प्रबन्ध बिगड़ गया और सब सर्दार इस के अशुभचिन्तक हो गये और यहां तक कि सन् १६८६ ई० में जब यह सङ्गमेश्वर की ओर शिकार खेलने गया था तो इस को मुग़लों ने पकड़ कर औरङ्गजेब की आज्ञा से कलूसा ब्राह्मण समेत तुलापुर में मार डाला।

इस का पुत्र शिवा जी जिस को साहू जी भी कहते हैं औरङ्गजेब की क़ैद में था, इस से इस का सौतेला भाई राजाराम गद्दी पर बैठा। इस ने सितारा में अपनी राजधानी स्थापन किया और पन्त प्रतिनिधि नाम का एक नया पद नियुक्त किया और बड़े भाई के बिगाड़े हुए सब प्रबन्धों को नए सिरे से सवांरा। यह १७०० ई० में मरा और फिर ८ वर्ष तक इस की स्त्री ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को गद्दी पर बिठा कर उस के नाम से राज्य का काम चलाया।

इन लोगों के समय में औरङ्गज़ेब ने महाराष्ट्रों को बहुत बिगाड़ना चाहा, परन्तु कुछ फल न हुआ, यहां तक कि वह सन् १७०७ में आप ही मर गया। जब संम्माजी का पुत्र शिवाजी औरङ्गज़ेब के पास रहता था तब औरङ्गज़ेब इस के दादा को लुटेरा शिवाजी और उस को साहु शिवाजी कहता था, इसी से दूसरे शिवाजी का नाम साहूराजा हुआ। सन् १७०८ ई० में जब साहू औरङ्गज़ेब की कैद से छुट कर आया तब सर्दारों ने उसे सितारे की गद्दी पर बिठाया, और तब उस की चाची ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को ले कर कोलापुर का एक अलग स्वतन्त्र राज स्थापन किया।

जब साहू राजा १७ वर्ष तक कैद मे था तब औरङ्गज़ेब की बेटी उस पर और उस की मा पर बड़ी मेहरबान थी। इसी से औरङ्ग-ज़ेब ने अपने यहां के दो बड़े बड़े मरहठे सरदारों की बेटी ब्याह दी थी और उसे बहुत सी जागीर भी दी थी। जब साहू राजा दिल्ली से सितारे आता था तब एक स्त्री ने अपना दूध पीनेवाला बालक उस के पैर पर रख दिया था, जिस के वंश में अब अकल-कोट के राजा हैं। साहू राजा का स्वभाव विषयी था, इसी से उस ने अपना सब काम धनाजी राव यादव को सौंप रक्खा था और उस ने आवाजी पुरन्दरे और बालाजी विश्वनाथ नाम के दो मनुष्य अपने नीचे रक्खे थे। धना जी के मरने पर सन् १७१४ ई० में बाला जी विश्वनाथ पेशवा हुआ और महाराष्ट के इतिहास में इस का नाम सब से प्रसिद्ध है।

साहू राजा ४२ वर्ष राज कर के ६६ वर्ष की अवस्था में सन् १७४१ ई० में मर गया और इस के पीछे सितारे का राज्य पेशवा के अधिकार में रहा। यह मरते समय लिख गया था कि ताराबाई के पोते राजाराम को गोद ले कर हमारी गद्दी पर बिठा कर राज काज पेशवा करैं।

राजाराम सन् १७४१ ई० में नाम मात्र का राजा हो कर सन् १७७० तक राज्य करके अपुत्र मरा। फिर शिवाजी के भाई के वंश का एक पुरुष दत्तक लेकर साहू महाराज के नाम से गद्दी पर बिठाया, जो सन् १८०८ ई० में मरा और उस के पीछे उस का पुत्र प्रताप सिंह गद्दी पर बैठा। इस को सन् १८१८ में सर्कार अङ्गरेज बहादुर ने पेशवा के राज्य से बहुत मुलक दिया पर सन् १८४९ में इस पर दोषारोप होने से अङ्गरेजों ने इसे निकाल कर इस के छोटे भाई शाहाजी को गद्दी पर बिठाया

जो सन् १८४८ ई० में निर्वंश मर कर इस वंश का अन्तिम राजा हुआ और उस का सारा राज्य सर्कारी राज्य में मिल गया।

इति १ ला भाग।

दूसरा भाग।

बालाजी विश्वनाथ ने पेशवा होकर सैयदों की सहायता से दिल्ली के परतंत्र बादशाह से अपने स्वामी का गया हुआ सब राज्य फेर लिया। और छः वर्ष पेशवाई करके सन् १७२० में सास बड़ गांव में मर गया। उसी साल में हैदराबाद के नव्वाबों का मूल पुरुष निजामुलमुल्क नर्मदा के इस पार आकर बादशाही सेना से लड़ाई कर रहा था और अपना अधिकार बहुत बढ़ा लिया था।

साहु राजा ने बालाजी विश्वनाथ के बड़े पुत्र बाजीराव को पेशवाई का अधिकार दिया। यह मनुष्य शूर और युद्ध में बड़ा कुशल था और उस का छोटा भाई चिमनाजी आप्पा भी बड़ा बुद्धिमान् और वीर था और अपने बड़े भाई की राज्य और लड़ाई के कामों में बड़ी सहायता करता था। निजामुलमुल्क से इस ने तीन लड़ाई बड़ी भारी २ जीती और गुजरात मालवा इत्यादि अनेक देशों पर अपना इख़्तियार कर लिया। और अपनी सेना ले कर सारे हिन्दुस्थान को लूटता और जीतता फिरता था। सेंधिया, हुलकर और गाइकवाड़ ने इसी के समय उत्कर्ष पाया, पर सेंधिया के पुरुषा पहले से बादशाही फौज के सरदारों में थे। वरंच कहते हैं कि औरङ्गज़ेब ने इन्हीं पुरुषों में से किसी की बेटी साहुराजा को ब्याही थी। नागपुर वालों ने भी इसी के समय राज पाया। चिमनाजी आपा ने पोर्तुगीज़ लोगों से साष्टीवेट का इलाका बड़ी बहादुरी से छीन लिया था। बाजीराव सन् १७४० में मरा और उस का बड़ा पुत्र बालाजी

उर्फ नाना साहब पेशवा हुआ। इस का एक छोटा भाई रघुराथ राव नाम का था। इस ने पूना को अपनी राजधानी बनाया। इस के छोटे भाई के अधिकार में राज्य का सब काम था। यद्यपि नाना साहब राज्य के कामों में बड़ा चतुर था पर कपटी और बड़ा आलसी मनुष्य था, पर उस के दोनों भाई अपने काम में ऐसे सावधान थे कि उस की बात में कुछ फरक न पड़ने पाया।

सदाशिव राव भाऊ ने रामचन्द्र बाबा शेणवी को साथ लेकर महाराष्ट्री राज्य का फिर से नया और पक्का प्रबन्ध किया। महाराष्टों का बल उस समय पूरा जमा हुआ था और हिन्दुस्तान में ये लोग चारों ओर चढ़ाइयां करते फिरते थे। दिल्ली का बादशाह तो मानों इन की कठपुतली था। नाना साहब से नागपुर के सरदार राघोजी भोंसला से कुछ वैमनस्य हो गया था, पर साहू राजा ने बीच में पड़ कर बिहार, अयोध्या और बंगाल का मरहटी अधिकार भोंसला से छोड़िवा कर आपस का द्वेष मिटा दिया।

सन् १७४८ ई० में एक सौ चार वर्ष का होकर निज़ामुल-मुल्क मर गया। उस के पीछे बारह वर्ष तक उस का राज्य अव्य-वस्थित पड़ा रहा; फिर उस के पुत्रों में से निज़ामअली नाम के एक मनुष्य ने वह राज्य पाया। रघुनाथ राव ने अटक से कटक तक हिन्दुस्तान को दो बेर जीता, पर वहां का रुपया वसूल करना हुल्कर और सेंधिया के अधिकार में करके आप फिर आया।

इसी अवसर में अहमदशाह अफ़गानों की बड़ी भारी फौज लेकर हिन्दुस्तान में मराठों को जीतने के लिये आया। तब सदा-शिव राव भाऊ और पेशवा का बड़ा लड़का विश्वास राव ये दोनों सेंधिया, हुल्कर, गाइकवाड़ और और और सर्दारों के साथ डेढ़ लाख पैदल, पचपन हजार सवार और दो सौ तोप की फौज ले

दिल्ली की ओर चले और सन् १७६० ई० में जब मरहटों ने दिल्ली जीती थी तब से इन की बहुत सी फ़ौज दिल्ली में भी थी सो वह फ़ौज भी इन लोगों के साथ मिल गई, पर दो महीने पीछे इन के फ़ौज में अनाज का ऐसा टोटा पड़ा कि मरहटों से सिवा लड़ने के और कुछ बन न पड़ा। यह बड़ी लड़ाई पानीपत के मैदान में सन् १७६१ ई० के जनवरी महीने की सातवीं तारीख़ को हुई। भाऊ निज़ामअली के जीतने से ऐसा गर्वित हो रहा था कि इस लड़ाई को वह बड़ी असावधानी से लड़ा। जब उस ने सुना कि विश्वास राव बहुत ज़खमी हो गया है तब हाथी पर से उतर पड़ा और फिर उस का पता न लगा। जनको जी सेंधिया और इब्राहीम ख़ां गारदी भी मारे गये और दूसरे भी अनेक बड़े बड़े सरदार मारे गये। और मरहटों की ऐसी भारी हार हुई कि सारे दक्खिन में सियापा पड़ गया। और नाना साहेब को तो इस हार से ऐसी ग्लानि और दुःख हुआ कि थोड़े ही दिन पीछे परलोक सिधारे। इस मनुष्य के समय में जैसी पहिले महाराष्ट्रों की वृद्धि हुई थी वैसाही एक साथ क्षय भी हो गया। सन् १७६१ में बालाजी बाजीराव उर्फ़ नाना साहेब के मरने पीछे उन का पुत्र पहिला माधवराव गद्दी पर बैठा। यह स्वभाव का न्यायी सूर धीर और दयालु था। मराठी राज से बेगार की चाल इस ने एक-दम उठा दी थी और ग़रीबों के पालने से इस का चित्त बहुत ही बहलता था। नाना फड़नवीस नामक प्रसिद्ध मनुष्य इस का मुख्य वज़ीर था और मराठी राज्य की आमदनी उस के समय सात करोड़ रुपया थी। इसी के काल में हैदरअली ने मैसूर के राज की नेव दी थी। इस ने राघोबा दादा को कैद कर के पूने भेज दिया और आप न्याय और धर्म से ११ बरस राज कर के २८ बरस की अवस्था में क्षय रोग से मरा। इस के मरने के पीछे इस के भाई नारायण राव को गद्दी पर बैठाया, पर आठ ही

महीने पीछे रघुनाथ राव ने उस को एक सूबेदार से मरवा डाला और आप गद्दी पर बैठा। इस से सब कारबारी इतने नाराज़ थे कि जब नारायण राव की स्त्री गंगाबाई (जो विधवा होने के समय गर्भवती थी) पुत्र जनी तो सवाई माधवराय के नाम से उस को राजा बना के उस के नाम की मुनादी फिरवा दी और नाना फड़नवीस सब काम काज करने लगा। राघोबा ने अंगरेज़ों से इस शर्त पर सहायता चाही कि साष्टीबेट बसई गांव और गुजरात के कुछ इलाके अंगरेज सरकार को दिये जायं, पर पोर्तुगीज़ और बादशाह के कलह से अंगरेज़ों ने आप ही वह बेट ले लिया और फिर कलकत्ते के गवर्नर के लिखे अनुसार नाना फड़नवीस ने साष्टीबेट अंगरेज़ों को लिख दिया और कोपर गांव में राघोबा को कुछ महीना कर के रख दिया। राघोबा दादा को बाजीराव चिमना आप और अमृतराव से तीन पुत्र थे, परन्तु अमृतराव दत्तक थे। राघोबा का कई मनोरथ पूरा नहीं हुआ और सन् १७८४ में मर गया। नाना फड़नवीस से महाजी सेंधिया से कुछ लाग थी, इस से महाजी उस के तावे कभी नहीं हुआ और सदा कुछ उत्पात करता रहा। नाना की फ़ौज के हरिपन्त फड़के और परशुराम पन्त पट्टवर्द्धन ये दो बड़े सरदार थे। सन् १७९५ में निज़ाम अली से महाराष्ट्र लोगों से एक बड़ी लड़ाई हुई, जिस में मरहठे जीते और अङ्गरेजों से भी तीन बरस तक कुछ कलह रही, पर फिर मेल हो गया। सन् १७९६ में नाना फड़नवीस के वंश में रहने के दुःख से माधव राव गिर के मर गया और राघोबा का बड़ा बेटा दूसरा बाजीराव पेशवा हुआ, पर इस से भी नाना फड़नवीस से खटपट चली ही गई। बाजीराव ने दौलतराव सेंधिया को उभारा और उस ने छल बल कर के नाना फड़नवीस को नगर के किले में क़ैद कर लिया, पर बाजीराव को उस के क़ैद से छुड़ा कर फिर से दीवान बनाना

पड़ा, क्योंकि ऐसा चतुर मनुष्य उस काल में उस को दूसरा मिलना कठिन था। नाना फड़नवीस सन् १८०० में मर गया और मराठी राज्य की लक्ष्मी और बल अपने साथ लेता गया। राज पर बैठने के पहिले बाजीराव ने दौलतराव से करार किया था कि हम पेशवा होंगे तो तुम को दो करोड़ रुपया देंगे, पर जब इतना रुपया आप न दे सका तो दौलतराव के साथ पूना लूटा। सन् १८०२ में जब दौलतराव कहीं दौरा करने गया था तब यशवन्त राव हुलकर ने पूना पर चढ़ाई किया और पेशवा और सेंधिया दोनों की सैना को हरा कर पूने को खूब लूटा। बाजीराव इस समय भाग कर अङ्गरेजों की शरण गया और उन से बसई में यह बात ठहराई कि सर्कारी ८००० फौज पूने में रहै और बाजीराव को शत्रुओं से बचावै और उस का सब खर्च बाजीराव दे। अङ्गरेजी फौज़ पहुंच जाने के पूर्व ही हुलकर पूना छोड़ के चला गया और बाजीराव फिर से पेशवा हुआ। बाजीराव ऊपर से तो अङ्गरेज़ों से मेल रखता था पर भीतर से बड़ाही बैर रखता था और दूसरे राजों को बहकाने सिवा आप भी छिपी २ फौज भरती करता जाता था। सन् १८१५ में गङ्गाधर शास्त्री पट्टवर्द्धन जो गाइकवाड़ का वकील हो कर सर्कार अङ्गरेज़ की सलाह से बाजीराव के दरबार में गया था, उस को बाजीराव ने त्र्यम्बक डेङ्गला नाम के एक अपने मुंहलगे हुये सरदार से मरवा डाला, जो सर्कार के और बाजीराव के बैर का मुख्य कारण हुआ और सर्कार ने उस त्र्यम्बकल को सन् १८१८ में पकड़ कर चुनार के किले में क़ैद किया। सर्कारी फ़ौज इस समय गवर्नर जेनरल की आज्ञा से पिंडारों को शमन करती फिरती थी कि इसी बीच में बाजीराव ने भी किसी बहाने से सर्कार से लड़ाई करनी आरम्भ करदी और बापू गोखला को सेनापति नियत किया, पर अन्त में हार कर सन् १८१८ ई० ३ जून को

मालकम साहेब के शरण में जाकर आठ लाख रुपया साल लेकर बिट्ठूर में रहना अङ्गीकार किया। और इसी बीच में अष्ट गांव पर छापा मार के सितारा के राजा को पकड़ लिया और इसी लड़ाई में बापू मारा गया। जब बाजीराव भागा फिरता था उन्हीं दिनों में भीमा के किनारे कारै गांव में मरहटों की फ़ौज से और सर्कारी फ़ौज से एक बड़ा घोर युद्ध हुआ, जिस में सर्कारी ३०० सिपाही और बीस अङ्गरेज मारे गये, पर इन लोगों ने बहादुरी से उन को आगे न बढ़ने दिया। सर्कार की ओर से यहां जयसूचक एक कीर्त्तिस्तम्भ बना है। सर्कार ने महाराष्ट्र देश का राज अपने हाथ में लेकर एलिफिस्तन साहेब को वहां का प्रबन्ध सौंपा और पूर्वोक्त साहब ने महाराष्ट्रों की परम्परा के मान और रीति का पालन कर के किसी की जागीर किसी के साथ बन्दोबस्त कर के वहां की प्रजा को ऐसा सन्तुष्ट किया कि वे लोग अब तक उन को स्मरण करते हैं।

भारतेन्दु की नाटकावली

नये आकार में छप कर तैयार है।

इस वार यह नाटकावली बम्बई के सुन्दर टाइपों में बहुत चिकने कागज़ पर बड़ी शुद्धता और सफाई के साथ छापी गई है। रत्नावली (प्रस्तावना भर बाबू साहब ने अनुवाद किया था) भी पूरी करा दी गई है। इस से इस की पृष्ठसंख्या पहले से बहुत बढ़ गयी है। तौ भी सर्वसाधारण की सुविधा का ख्याल कर के भारतेन्दु जी के ग्रन्थों के अधिक प्रचार की अभिलाषा से १०४८ पृष्ठों की इस बड़ी और सुन्दर कपड़े की जिल्दवाली पुस्तक का मूल्य केवल ३) रक्खा गया है। हिन्दीप्रेमियों को शीघ्र ही इसे मंगा कर लाभ उठाना चाहिए।

☞ इस नाटकावली की सब पुस्तकें अलग भी मिल सकती हैं।

मिलने का पता—मैनेजर 'खड्गविलास' प्रेस, बांकीपुर।

बूंदी का राजवंश ।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

—o—

त्रियपत्रिका सम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह संकलित.

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित ।

पटना—'खड्गविलास' प्रेस—बांकीपुर.

बाबूं रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

ह० सं० ३३—१९१८.

बूंदी का राजवंश।

बूंदी का राजवंश चौहान क्षत्रियों से है। इस वंश का मूल पुरुष अन्हल चौहान प्रसिद्ध है। भट्ट लोगों के मत से चौहान का शुद्ध नाम चतुर्भुज है। अन्हल अनल शब्द का अपभ्रंश है, क्योंकि अनल अग्नि को कहते हैं और आबू के पहाड़ पर जो चार क्षत्री वंश उत्पन्न किए गए वे अग्नि से उत्पन्न किए गए थे। जेम्स-प्रिंसिप साहब को संदेह है कि पार्थिअन* (पार्थिव ?) Parthian Dynesty से यह वंश निकला है। उन्हीं के मत के अनुसार ईसा-मसीह से ७०० वर्ष पूर्व्व अनल ने गढ़मंडला में राज स्थापन किया। अनल के पीछे सुवाच और फिर मल्लन हुआ (जिस ने मल्लनी वंश चलाया ?) फिर गलन सूर हुआ। यहां तक कि ईस्वी सन् १४५ में (विराट का सं० २०२) अजयपाल ने अजमेर बसा कर राज किया। इस के पूर्व्व ८०० बरस और पीछे ५०० बरस ठीक ठीक नामावली नहीं मिलती। विल्फर्ड साहब के मत के अनुसार सन् ५०० ई० के अन्त तक सामन्तदेव, महादेव, अजयसिंह [अजयपाल ?] बीरसिंह, बिन्दुसूर और बैरी बिहंड इन राजाओं के नाम क्रम से मिलते हैं। यदि अजय-पाल से मिला कर यह क्रम माना जाय तो बैरिबिहंड तक एक प्रकार का क्रम मिलैगा, किन्तु दोलाराय [दुर्ल्लभराय ?] जिस से सन् ६८४ ईस्वी में मुसल्मानों ने अजमेर छीना उस के पूर्व्व दो सौ बरस के लगभग कौन राजे हुए इस का पता नहीं। दोला-राय के पीछे माणिक्य राय (सन् ६६५ ई०) हुआ, जिस ने सांभर का शहर बसाया और सांभरी गोत स्थापन किया। फिर महा-

* और पठान शब्द भी इसी से निकला हुआ मालूम होता है, क्योंकि जो हिन्दुस्तानी के पास के क्षत्रियधर्म्मा मुसल्मान हैं वेही पठान कहलाते हैं।

सिंह, चन्द्रगुप्त [१] प्रतापसिंह. मोहनसिंह, सेतराय, नागहस्त, लोहधार. बीरसिंह [२] बिबुधसिंह और चन्द्रराय ये नाम क्रम से मिलते हैं। Bombay Government selection Vol. III. P. 193 टाड साहब लिखते हैं कि भट्ट लोगों ने दूसरे ग्यारह नाम यहां पर लिखे हैं। परन्तु प्रिंसिप साहब के क्रम से दोलाराय के पीछे हरिहरराय [टाड साहब के मत से हर्षराय] सन् ७७४ ई० में हुआ और इस ने सुबुकतगीं को लड़ाई में हराया, फिर बली अगराय (बेलनदेव Tod) हुआ जो सुल्तान महमूद के अजमेर के युद्ध में मारा गया। उस के पीछे प्रथमराय और उस को अंग-राज (अमिल्लदेव) हुआ। अमिल्लदेव के बाद विशालदेव राजा हुआ। (विल्फर्ड १०१६ ई०, लिपि १०३१ से १०६५ ई० तक टाड साहब के मत में चन्द के राय के अनुसार सम्बत् ८२१ में और फीरोज की एक लिपि से १२२० सम्वत्) फिर सिरंगदेव [सारंगदेव वा श्रीरंगदेव] अन्हूदेव [जिस ने अजमेर में अन्हू-सागर खुदवाया], हिसपाल [हंसपाल] जयसिंह तारीख फिरिश्ता का जयपाल [जो प्रिंसिप साहब के मत से सन् ६७७ ईस्वी में हुआ,] आनन्ददेव [आनन्दपाल वा अजयदेव सन् १००० ईस्वी] सोमेश्वर [जिस ने दिल्ली के राजा अनङ्गपाल की बेटी से ब्याह किया] पृथीराय [लाहोर का जिसे शाहाबुद्दीन ने कत्ल किया ११७६] रायनसी (रायनृसिंह जो ११६२ में दिल्ली के युद्ध में मारा गया) विजयराज और उस के पीछे लकुनसी (लक्ष्मणसिंह) हुआ जिस की सत्ताईसवीं पीढ़ी में वर्त्तमान समय के नीमरान के राजा हैं।

अब टाड साहब का मत है कि हाड़ालागा का वंश माणिक्य-देव की शाखा में वा विशाल देव के पुत्र अनुराज से यह वंश चला है। प्रिन्सिप साहब अनुराज ही से हाड़ा लोगों की वंशा-वली लिखते हैं। किन्तु बूंदी के भट्ट संगृहीत ग्रन्थों में और तरह

से इस वंश की उत्पत्ति लिखी है। ये लिखते हैं* "बशिष्ट जी ने आबू पहाड़ पर यज्ञ किया। उस से चार उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए. उन में से चतुर्भुज जी (चौहान वा चहुमान) से १५६ पीढ़ी में भोमचन्द्र राजा हुआ। उस का पुत्र भानुराज राक्षसों (यवनों) की लड़ाई में मारा गया। तब आशापुरा देवी ने कृपा कर के भानुराज की अस्थि एकत्र कर के जिला दिया और तब से भानुराज का नाम अस्थिपाल हुआ। अस्थिपाल के पीछे क्रम से पृथ्वीपाल, सेनपाल, शत्रुशल्य, दामोदर, नृसिंह, हरिवंश, हरियश, सदाशिव, रामदास, रामचन्द्र, भागचन्द्र, रूपचन्द्र, मण्डन

---

* अग्नि कुल की उत्पत्ति पुराणों में इस तरह लिखी है। जब परशुराम जी के मारे क्षत्रिय कुल का नाश हो गया तब उन्हों ने पृथ्वी की रक्षा के हेतु चिन्ता कर के आबू पर्व्वत पर ऋषियों से इस विषय का परामर्श कर के सब के साथ क्षीरसागर पर जा कर भगवान की स्तुति किया। आज्ञा हुई कि चार कुल उत्पन्न करो। फिर ऋषियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आबू पहाड़ पर आये; और वहां यज्ञ किया। इन्द्र ने पहले अपनी शक्ति से घास का पुतला बना कर कुंड में डाला, जिस से मार मार कहता हुआ भाला लिए हुए एक पुरुष निकला, जिस को ऋषियों ने प्रमार नाम देकर धार और उज्जैन का देश दिया। उसी भांति ब्रह्मा ने वेद और खड्ग लिए हुए एक पुरुष उत्पन्न किया, एक चुलुक (चुल्लू) जल से जी उठने से इस का नाम चालुक्य हुआ, और अन्हलपुर इस की राजधानी हुई। रुद्र ने तीसरा क्षत्री गंगाजल से उत्पन्न किया, यह धनुष लिए काला और कुरूप था, इस से इस का नाम परिहार रख कर पर्वतों और बनों की रक्षा इस को दी। अन्त में विष्णु ने चार भुजा का एक मनुष्य उत्पन्न चतुर्भुज नामक किया। इस की राजधानी अकावती (गढ़ मंडल) हुई। इन्हीं चार पुरुषों से क्रम से पंवार, सोलंखी, परिहार और चौहान वंश हुए।

प्राचीन काल में चौहान लोगों का सामवेद, पंच प्रवर, मधु (मध्य ?) शाखा वत्सगोत्र, विष्णु, (श्रीकृष्ण) वंश होने से सोमवंश, अम्बिका देवी, अर्बुद अचलेश्वर शिव, भृगुलक्षण विप्र और कालभैरव क्षेत्रपाल थे।

जी, (जिस ने दक्षिण में मांदलगढ़ बसाया) आत्माराम, आनन्द-राम, राव हमीर, राव सुमेर, राव सरदार, राव जोधराज, राव रत्न जी, राव कोल्हण जी, राव आशुपाल, राव विजयपाल और राव बङ्गदेव जी हुए।" राव बङ्गदेव से भट्टों की और प्रिन्सिप साहब की वंशावली एक है। प्रिन्सिप साहब के मत से अनु-राज ने आसी वा हांसी का राज किया। उस के पीछे इष्टपाल वा इष्टपाल (शायद अस्थिपाल यही है) ने १०२४ ई० में असीर-गढ़ में राज किया। उस का चण्डकरण वा कर्णचन्द्र, उस का लोकपाल और उस का हम्मीर हुआ। इस हम्मीर का पृथ्वीराज रायसे में भी जिक्र है और पृथ्वीराज ही के युद्ध में यह ११९३ ई० में मारा गया। हम्मीर के पीछे क्रम से कालि कालकर्ण, महा-मग्द (महामत्त) राव बच (रांववत्स) और रावचन्द्र हुए। रावचन्द्र का परिवार शहाबुद्दीन ने सन् १२९८ में मारा। केवल एक पुत्र रायिसी बच गया, जो चित्तौर में पाला गया और जिस ने भैंसरोर में राज स्थापन किया। रायन्सी के कोलन राय हुए, जिस ने मध्यदेश में पमारों का राज्य किया और उन के बङ्गदेव हुए, जो इन के राजा हुए और मैनाल लोगों पर प्रभुत्व किया, राव बङ्गदेव से वंश परम्परा में और भेद नहीं है, केवल समर सिंह के पुत्र हर राज (हाराराज जिस से हाड़ा वंश चला) प्रिन्सिप साहब वंशावली में विशेष मानते हैं। बूंदीवालों के मत से बङ्गदेव ने (सन् १३४१ ई० में) बंबावदा में राज किया और इन के पुत्र राव देव सिंह ने बूंदी में राज स्थापन किया और अपने पुत्र देव सिंह (संवत् १२९८) को बूंदी राज देकर चले गए। यही राव देव लोधी लोगों के दरबार में बुलाए गए, जो प्रिन्सिप साहब के मत से अपने पुत्र हरराज को राज दे कर चले गए। बूंदी परम्परा में हरराज का नाम नहीं है, इस से सम्भव होता है कि हरराज और समरसिंह दोनों राव देव के पुत्र हैं। हरराज ने कुछ दिन राज किया, फिर समरसिंह ने भीलों को

जीता था। समरसिंह के पीछे क्रम से ये राजा हुए। राव रन-पालसिंह (नापा जी) संवत् १३३२ राव हम्मीर (हामाजी वा हामूजी) सं० १३४३ राव बरसिंह वा बीरसिंह सं० १३६३ राव बैरीशल्य वा बैरीसाल वा बीरूंजी सं० १४५० (P. 4190. A. D. G.) राव सुभांडदेव वा बांदा जी सं० १४६० इन के समय में बड़ा काल पड़ा (ई० १४८७) और समरकन्दी अमरकन्दी नामक दो भाइयों ने इन को राज से उतार कर बारह बरस राज्य किया, राव नारायण दास ने पिता का राज्य अपने चचा लोगों से लिया। राव सूरजमल ने संवत् १५८४ (1533 A. D.) भट्ट लोगों के मत से महाराना रत्न सिंह जी का बध किया, किन्तु जेम्स प्रिन्सिप साहेब के मत से महाराना ने इन्हें मारा। इस से सम्भव होता है कि इन दोनों राजाओं में ऐसा घोर बैर हुआ कि दोनों परस्पर मृत्यु के कारण हुए। राव राजा सुरतानजी सं० १५८८ [1537 A. D.] यह पागल थे, इस से पंचों ने इन को राज से अलग कर के नारायणदास के पुत्र अर्जुनराव को राजा किया। इन के बहुत थोड़े ही समय राज के पीछे चित्तौर की लड़ाई में मारे जाने से राजावली में इन की गिनती नहीं हुई। राव राजा सुरजन जी सं० १६११ [1560 A. D.] इन्हों ने महाराजाधिराज अकबर से काशी और चुनार पाया और काशी में राजमन्दिर बसाया। राव राजा भोज सं० १६४२ इन के समय से कोटा और बूंदी का राज अलग हुआ। राव रतन जी सं० १६६४ (T. 1613 A. D.) इन के पुत्र कुंअर माधवसिंह ने जहांगीर से कोटा पाया और कुंअर गोपीनाथ युवराज हुए। कुंअर गोपीनाथ भी [सं० १६७१] युवराजत्व के समय ही में शान्त हुए। इस से उन के पुत्र रावराजा शत्रुशाल राव रत्न जी के गोद बैठे (सं० १६८८) और माधव सिंह कोटा के राजा हुए। यह राजा शत्रुशाल [प्रसिद्ध छत्रसाल] बड़ा बीर हुआ है, जिस ने कुलवर्गा जीता और उज्जैन की प्रसिद्ध लड़ाई में १८ राजाओं

के साथ मारा गया, * राव राजा भावसिंह सं० १७१५ (1660 A. D.) इन्हों ने औरङ्गजेब से औरङ्गाबाद की सूबेदारी पाया। राव राजा अनरुद्धसिंह सं० १७३८ (P. 1687 A. D.) ये भावसिंह के छोटे भाई के पौत्र थे। रावराजा बुधसिंह † सं० १७५२ (P. 1710 A. D.) इन्हों ने बहादुरशाह की सहायता की थी, किन्तु जयपुरवालों ने इन्हें राज्यच्युत कर दिया। महा-

---

* दारासाहि औरंगज़ेर हैं दोऊ दिल्ली दल एकै गए भाजि एकै रहे रूंधि चाल में।
भयो घोर युद्ध उद्ध माच्यो अति दुन्द जहां कैसहु प्रकार प्रान बचत न काल में॥
हाथी तें उतरि हाड़ा जूझ्यो लोह लंगर दै एती लाज का मैं जेती लाज छत्रसाल में।
तन तरवारन में मन परमेश्वर में प्रन स्वामि कारज में माथो हर माल में॥

† शिवसिंहसरोज में लिखा है बुद्धराव (संवत् १७५५)—

ये महाराज बूंदी के राजा औ जयसिंह सवाई आमेरवाले के बहनोई थे। बहादुरशाह बादशाह ने इन का बड़ा मान किया। इस बादशाह के यहां दूसरे की ऐसी इज्जत न थी। जब सय्यद बारहा ने बादशाह को बेदखल कर आप ही बादशाही नक्कारा बजाते हुए गली कूचों में निकलने लगा तब तो इस शूरवीर से कब रहा जाता था। शय्यदों का मुहं तरवारों की धार से फेर दिया औ तमाम उमर बादशाह के इहां रहा। कविता इन की बहुत ही अपूर्व है औ कवि लोगों का बड़ा मान दान देनेवाला था।

कीनो तुम मान मैं कियो है कब मान अब कीजै सनमान अपमान कीनो कब मैं।
प्यारी हंसि बोलु और बोलैं कैसे [illegible] बोलि हौं जू अब मैं॥
हम करि सौंहैं कोरि सौंहैं करि जानत है अब करि सौंहैं अनसौंहैं कीने कब मैं।
लीनै भरि अंक जहां आये भरि अंक हौ न काहू भरि अंक उर अंक देखे अब मैं॥१॥
ऐसी ना करी है काहू आजु लौं अनैसी जैसी सैयद करी है ये कलंक काहि चढ़ैंगे।
दूजे को नगाड़े बाजै दिली में दिलीश आगे हम सुनि भागैं तौ कबिंद कहां पढ़ैंगे॥
स्दै राव बुद्ध हमैं करने है युद्ध स्वामि धर्म्म में प्रसुद्ध जेह जान जस मढ़ैंगे।
हाड़ा कइवाय कहा हारि करि कढ़ै ताते झारि शमशेर आजु रारि करि कढ़ैंगे॥२॥

राव राजा उमेद सिंह सं० १८०५ (1745 A. D.) होलकर की सहायता से बूंदी फेर लिया (1747) और फिर विरक्त हो कर राज छोड़ कर चले गए। अजीत सिंह सं० १८२७ (1776) महाराव राजा विष्णुसिंह सं० १८३० इन्हों ने सम्वत् १८७४ में सर्कार से अहदनामा किया। महाराव राजा रामसिंह—ये वर्त्तमान बूंदी के महाराव हैं। सं० १८७८ में सावन कृष्ण ११ को इन्हों ने राज पाया और पूस सुदी ३ सं० १८६६ को इन का जन्म है। ये महाराज बड़े धर्म्मनिष्ठ और संस्कृत के अनुरागी हैं। सर्कार से इस राज्य की सलामी १७ तोप की नियत की गई है और महाराव राज श्री रामसिंह जी को जी० सी० एस० आई० और "काउन्सेलर आफ़ दी इम्प्रेस" (राजराजेश्वरी के सलाहकार) की उपाधि दिल्ली के दरबार में (1877 A. D.) मिली।

कोटा की शाखा।

राव माधोसिंह सन् १५७६ ई०
राव मुकुन्द सिंह सन् १६३० ई०
राव जगतसिंह सन् १६५७ ई०
राव किशवर (किशोर) सिंह सन् १६६६ ई०
राव रामसिंह सन् १६८५ ई०
राव भीमसिंह सन् १७०७ ई०
महाराव अर्जुनसिंह सन् १७१६ ई०
महाराव दुर्जुनशाल (निस्सन्तान)
महाराव अजीतसिंह [विष्णुसिंह के पोते]
महाराज छत्रसाल
महाराज गुमानसिंह सन् १७६५ (अपने भाई छत्रसाल की गद्दी पर बैठे) जालिम सिंह इन के फौजदार थे।
महाराव उमेदसिंह सन् १७७० ई०
महाराव किशोरसिंह सन् १८१६ ई०

रामायण का समय।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

क्षत्रियपत्रिका सम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह संकलित.

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित।

पटना—'खड्गविलास' प्रेस—बांकीपुर.
बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.
ह० सं० ३२—१९१६.

दूसरी बार।

रामायण का समय।

(रामायण बनने के समय की कौन कौन बातें विचार करने के योग्य हैं)

पुराने समय की बातों को जब सोचिये और विचार कीजिये तो उन का ठीक ठीक पता एक ही बेर नहीं लगता. जितने नये नये ग्रन्थ देखते जाइये उतनी ही नई नई बातें प्रकट होती जाती हैं। इस विद्या के विषय में बुद्धिमानों के आज कल दो मत हैं। एक तो वह जो बिना अच्छी तरह सोचें विचारे, पुराने अंग्रेज़ी विद्वानों की चाल पर चलते हैं और उसी के अनुसार लिखते पढ़ते भी हैं और दूसरे वे लोग जिन को किसी बात का हठ नहीं है. जो बातें नई ज़ाहिर होती गईं उन को मानते गये। दूसरा मत बहुत दुरुस्त और ठीक तो है, पर पहिला मत माननेवालों को ऐंटिक्वेरियन (Antiquarian) बनने का बड़ा सुभीता रहता है। दो चार ऐसी बंधी बातें हैं जिन्हें कहने ही से वे ऐंटिक्वेरियन हो जाते हैं। जो मूर्त्तियां मिलें वह जैनों की हैं, हिन्दू लोग तातार से वा और कहीं पच्छिम से आये होंगे। आगे यहां मूर्त्तिपूजा नहीं होती थी, इत्यादि, कई बातें बहुत मामूली हैं, जिन के कहने ही से आदमी ऐंटिक्वेरियन हो सकता है। जो कुछ हो, इस बात को लेकर हम इस समय हुज्जत नहीं करते, हम सिर्फ़ यहां बाल्मीकीय रामायण में से ऐसी थोड़ी सी बातें चुन कर दिखाते हैं जो बहुत से विद्वानों की जानकारी में आज तक नहीं आई हैं।

रामायण बनने का समय बहुत पुराना है, यह सब मानते हैं। इस से उस में जो बातें मिलती हैं वे उस ज़माने में हिन्दुस्तान में

बरती जाती थीं, यह निश्चय हुआ। इस से यहां वेही बातें दिखाई जाती हैं जो वास्तव में पुरानी हैं पर अब तक नई मानी जाती हैं और विदेशी लोग जिन को अपनी कह कर अभिमान करते हैं।

रामायण कैसा सुन्दर ग्रन्थ है और इस की कविता कैसी सहज और मीठी है। इस से जिन लोगों ने इस की सैर की है वे अच्छी तरह जानते हैं, कहने की आवश्यकता नहीं। और इस में धर्म्मनीति कैसी अच्छी चाल पर कही है, यह भी सब पर प्रकट ही है। इस से हम यहां पर और बातों को छोड़ कर केवल वही बातें दिखाना चाहते हैं जो प्राचीन विद्या (ऐंटीकेटी) से सम्बन्ध रखती हैं।

बालकाण्ड—अयोध्या के वर्णन में किले की छत पर यंत्र रखना लिखा है। यंत्र का अर्थ कल है * इस से यह स्पष्ट होता है कि उस जमाने में किले की बचावट के हेतु किसी तरह की कल अवश्य काम में लाई जाती थी, चाहे वे तोप हों या और किसी तरह की चीज़ (या यंत्र से दूरबीन मतलब हो)।

शतघ्नी † यह उस चीज़ को कहते हैं जिस से सैकड़ों आदमी

---

* यन्त्र उस को कहते हैं जिस से कुछ चलाया जाय। श्रीगीता जी में लिखा है "ईश्वरः सर्व्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्व्व भूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया"। ईश्वर प्राणियों के हृदय में रहता है और वह भूत मात्र को जो (मानो) कल पर बैठे हैं माया से घुमाता है। तो इस से स्पष्ट प्रकट होता है कि यन्त्र से इस श्लोक में किसी ऐसी चीज़ से मतलब है जो चरखे की तरह घूमती जाय। कल शब्द भी हिन्दी है "कल गतौ" से बना हो वा "कल प्रेरणे" से निकला होगा (कवि कल्पद्रुम कोष देखो) दोनों अर्थ से उस चीज़ को कहेंगे जो आप चलै वा दूसरे को चलावै।

† शतघ्नी को भी यन्त्र करके लिखा है। शतघ्नी कौन चीज़ है इस का निश्चय

एक साथ मारे जा सकें। कोषों में इस शब्द के अर्थ यह दिए हैं कि शतघ्नी उस प्रकार की कल का नाम है जिस से पत्थर और लोहे के टुकड़े छूट कर बहुत से आदमियों के प्राण लेते हैं और इसी का दूसरा नाम वृश्चिकाली है। (सर राजा राधाकान्त देव का शब्दकल्पद्रुम देखो।) इस से मालूम होता है कि उस समय में तोप या ठीक उसी प्रकार का कोई दूसरा शस्त्र अवश्य था।

नहीं होता। तीन चीज़ में इस का सन्देह हो सकता है, एक तोप, दूसरे मतवाले—तीसरे जम्हीरे में। इस के वर्णन में जो २ लक्षण लिखे हैं उन से तोप का तो ठीक सन्देह होता है, पर यह मुझे अब तक कहीं नहीं मिला कि ये शतघ्नियां आग के बल से चलाई जाती थीं, इसी से उन के तोप होने में कुछ संदेह हो सकता है। मतवाले से शतघ्नी के लक्षण कुछ नहीं मिलते, क्योंकि मतवाले तो पहाड़ों वा किलों पर से कोल्हू की तरह लुड़काये जाते हैं और इस के लक्षणों से मालूम होता है कि शतघ्नी वह वस्तु है जिस से पत्थर छूटैं। जहमीरा वा जम्हीरा एक चीज़ है, उस से पत्थर छुट छुट कर दुश्मन की जान लेते हैं (हिन्दुस्तान की तवारीख़ में मुहम्मद क़ासिम की लड़ाई देखो) इस से शतघ्नी के लक्षण बहुत मिलते हैं। पर रामायण में लिखा है कि लोहे की शतघ्नी होती थीं और फिर सुंदरकाण्ड में टूटे हुए वृक्षों की उपमा शतघ्नी की दी है। इस से फिर संदेह होता है कि हो न हो यह तोप ही हो। रामायण के सिवा और पुराणों में भी किले पर शतघ्नी लगाना लिखा है। (मत्स्य-पुराण में राजधर्म्म वर्णन में) दुर्गेयन्त्राः प्रकर्त्तव्याः नाना प्रहरणान्विताः। सहस्र-घातिनो राजंस्तैस्तुरक्षाविधीयते ॥ १ ॥ दुर्गञ्च परिखोपेतं वप्राट्टालसंयुतं। शतघ्नी यन्त्र मुख्यैश्च शतशश्च समावृतं ॥ २ ॥ इस में ऊपर के श्लोक में शतघ्नी के बदले सहस्र-घाती शब्द है (यहां शत और सहस्र शब्दों से मुराद अनगिनत से है)। तोप की भांति सुरंग उड़ाना भी यहां के लोग अति प्राचीन काल से जानते हैं। आदि पर्व का ३७८ श्लोक देखो। सुरंग शब्द ही भारत में लिखा है।

अयोध्या के वर्णन में उस की गलियों में जैन फ़कीरों का फिरना लिखा है, इस से प्रकट है कि रामायण के बनने से पहिले जैनियों का मत था।

जिस समय राजा दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ किया उस समय का वर्णन है कि रानी कौशिल्या ने अपने हाथ से घोड़े को तलवार से काटा। इस बात से प्रगट होता है कि आगे की स्त्रियों को इतनी शिक्षा दी जाती थी कि वह शस्त्रविद्या में भी अति निपुणता रखती थीं।

अभी एशियाटिक सोसाइटी के जनरल में पण्डित प्राणनाथ एम० ए० ने इस का खण्डन किया है कि बराहमिहर के काल में श्रीकृष्ण की पूजा ईश्वर समझ के नहीं करते थे और बराहमिहर के श्लोकों ही से श्रीकृष्ण की पूजा और देवतापन का सबूत भी दिया है। और भी बहुत से विद्वान इस बात में झगड़ा करते हैं। और योरोप के विद्वानों में बहुतों का यह मत है कि श्री कृष्ण की पूजा चले थोड़ेही दिन हुए, पर ४० सर्ग के दूसरे श्लोक में नारायण के वास्ते दूसरा शब्द वासुदेव लिखा है और फिर पच्चीसवें श्लोक में कपिलदेव जी को वासुदेव का अवतार लिखा है; इस से स्पष्ट प्रगट है कि उस काल से श्रीकृष्ण का लोक नारायण कर के जानते और मानते हैं। *

अयोध्याकाण्ड— २० वें सर्ग के २६ श्लोक में रानी कैकेयी ने राम जी को बन जाते समय आज्ञा दिया कि मुनियों की तरह तुम भी मांस न खाना, केवल कंद मूल पर अपनी गुज-

---

* भारत के भी आदि पर्व का २४७ से २५३ श्लोक तक और २४२७ से [illegible] श्लोक तक देखो। श्रीकृष्ण को परब्रह्म लिखा है। और भी भारत में सभी स्थानों में हैं उदाहरण के हेतु एक पर्व मात्र लिखा।

रान करना। इस से प्रगट है कि उस समय मुनि लोग मांस नहीं खाते थे *।

३० वें सर्ग के २१ श्लोक में गोलोक का वर्णन है। प्रायः नये विद्वानों का मत है कि गोलोक इत्यादि पुराणों के बनने के समय के पीछे निकाले गए हैं और इसी से सब पुराणों में इन का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु इस वर्णन से यह बात बहुत स्पष्ट हो गई कि गोलोक का होना हिन्दू लोग उस काल से मानते हैं जब कि रामायण बनी। †

३२ वें सर्ग में तैत्तिरीय शाखा और कठकालाप शाखा का नाम है। इस से प्रगट होता है कि वेद उस काल तक बहुत से हिस्सों में बट चुके थे।

रामजी के बन जाने की राह इस तरह बयान की गई है। अयोध्या से चल कर तमसा अर्थात् टौंस नदी के पार उतरे। फिर वेदश्रुति, ‡ गोमती, स्यन्दिका § और गंगा पार होते हुए प्रयाग आये। और वहां से चित्रकूट (जोकि रामायण के अनुसार १० कोस है) ᔓ गए। यह बिल्कुल सफर उन्हों ने पांच दिन

---

* यहां मांस से बिना यज्ञ के मांस से मुराद होगी।

† वेद में ब्रह्म के धाम के वर्णन में लिखा है कि वहां अनेक सींगों की गऊ हैं।

‡ वेदसा नाम की एक छोटी नदी गोमती में मिलती है, शायद उसी का नाम वेदश्रुति लिखा है।

§ जिस को अब सई कहते हैं।

ᔓ यह बड़े सन्देह की बात है अब जो चित्रकूट माना जाता है वह प्रयाग से तीन चार मंजिल है पर यहां दस कोस लिखा है। इस दस कोस से यह आशय है कि वहां से उस पर्ब्बत की श्रेणी (लाइनें) आरम्भ होती है, पर जहां डेरा किया था वह स्थान दूर होगा।

में किया। और सुमन्त उन को पहुंचा कर शृङ्गवेरपुर अर्थात् सिंगरामऊ से दो दिन में अयोध्या पहुंचा। पहली बात से प्रकट हुआ कि पुराने जमाने के कोस बड़े होते थे। और दूसरी बात से विदित हुआ कि सड़क उस समय में भी बनाई जाती थी, नहीं तो इतनी दूर की यात्रा का पांच दिन में तै करना कठिन था।

भरत जी जब अपने नाना के पास से, जो कि केकैय अर्थात् सक्कर देश का राजा था, आने लगे तो उस ने कई बहुत बड़े और बलवान कुत्ते दिये और तेज़ दौड़नेवाले गदहों (खच्चर) के रथ पर उन को बिदा किया। वे सिन्धु और पंजाब होते हुए इक्षुमती को पार कर अयोध्या आये। इस से दो बात प्रकट हुई; एक तो यह कि उस काल में कैकय देश में गदहे और कुत्ते अच्छे होते थे, दूसरे यह कि वहां की हिंदुस्तान से राह सिन्धु देकर थी।

७७ वें सर्ग में मूर्त्तियों का वर्णन है, इस से दयानन्द सरस्वती इत्यादि का यह कहना कि रामायण में कहीं मूर्त्तिपूजन का नाम नहीं है अप्रमाण होता है।

इसी स्थान में निषाद का लड़ाई की नौकाओं के तैयार करने का वर्णन है, जिस से यह बात प्रमाणित होती है कि उस काल के लोग स्थल की भांति पानी पर भी लड़ सकते थे।

दक्षिण के लोगों की सिर में फूल गूंधने की बड़ी प्रशंसा लिखी है। इस से यह बात झलकती है कि उत्तर के देश में फूल गूंधने का विशेष रिवाज नहीं था।

१०८ सर्ग में जावालि मुनि ने चार्वाक का मत वर्णन किया है। और फिर १०९ सर्ग में बुध का नाम और उन के मत का वर्णन है। इस से प्रगट है कि ये दोनों वेद के विरुद्ध मत उस समय में भी हिन्दुस्तान में फैले हुये थे। अभी हम ऊपर बाल-

काण्ड में जैनियों के उस काल में रहने का ज़िक्र कर चुके हैं तो अब ये सब बातें रामायण के बनने के समय, बुध के जन्म का और बौद्ध और जैन मत अलग होने के समय की विवेचना में कितनी हलचल डालैंगी प्रगट है।

आरण्यकाण्ड—चौथे सर्ग के २२ श्लोक में लिखा है कि असुरों की यह पुरानी चाल है कि वे अपने मुर्दे गाड़ते हैं। इस से प्रगट है कि वेद के विरुद्ध मत माननेवालों में यह रीति सदा से चली आती है।

किष्किन्धाकाण्ड—१३ वें सर्ग के १६ श्लोक में कलम अर्थात् जोंधरी के खेत का बयान है, और कोष में "लेखनी कलमिइत्यपि" लिखा है इस वाक्य से प्रगट होता है कि क़लम लिखने की चीज़ का नाम संस्कृत में भी है और वह और चीज़ों के साथ जोंधरी का भी होता था; और इसी से यह भी साफ़ हो जाता है कि सिवा ताड़ के पत्र के कागज़ पर भी आगे के लोग लिखते थे, क्योंकि ताड़ पर मिटने के डर से सिर्फ़ लोहे की क़लम से लिखा जा सकता है जैसा कि अब तक बंगाले और ओड़ीसे में रिवाज है। *

६२ वें सर्ग के ३ श्लोक में पुराणों का वर्णन है, जिस से नई तबियत और नई तलाश (लाइट) के लोगों का यह कहना कि पुराण सब बहुत नए हैं कहां तक ठीक है आप लोगों पर आप से आप विदित होगा।

इस कांड में और बातों की भांति यह भी ध्यान करने के योग्य है कि रामजी ने बालि से मनु के २ श्लोक कहे हैं और यह भी कहा है कि मनु भी इस को प्रमाण मानते हैं। इस से प्रगट

---

* इस विषय के लिये "सज्जनबिलास" देखो।

हुआ कि मनु की संहिता उस काल में भी बड़ी प्रामाणिक और प्रतिष्ठित समझी जाती थी। *

सुन्दरकाण्ड—तीसरे सर्ग के १८ श्लोक में क़िले के शस्त्रालय (सिलहगाह) के वर्णन में लिखा है कि जिस तरह से स्त्री गहनों से सजी रहती है वैसे ही बुर्ज यंत्रों से सजे हुए थे। इस से स्पष्ट प्रगट होता है कि तोप या और किसी प्रकार का ऐसा हथियार जिस से कि दूर से गोले की भांति कोई वस्तु छूट कर जान लें उस समय में अवश्य था।

चौथे सर्ग के १८ श्लोक में फिर क़िले पर शतघ्नी रखने का वर्णन है।

५ वें सर्ग के पहिले श्लोक में लिखा है कि चन्द्रमा सूर्य्य के प्रकाश से चमकता है। इस से स्पष्ट प्रकट हो सकता है कि उस समय में ज्योतिषविद्या की बड़ी उन्नति थी।

९ वें सर्ग के १२ श्लोक में लिखा है कि पुष्पक-विमान के चारों ओर सोने के झुंडार बने थे और खाने पीने की सब वस्तु उस में रक्खी रहा करती थीं और वह बहुत से लोगों को बिठला कर एक स्थान से दूसरी स्थान पर ले जाता था। इस से सोचा जाता है कि यह विमान निस्सन्देह कोई बेलून की भांति की वस्तु होगी। और झुंडार उस में पहचान के हेतु लगाये गये होंगे।

९ वें सर्ग के २५ और २६ श्लोकों में वर्णन है कि लंका में जो [illegible] बिछे थे उन में घर, नदी, जंगल, इत्यादि बुने हुये थे। [illegible] विलायत का कोई ग़लीचा आता है, जिस में मकान

* भारत में भी कई स्थान पर मनु का नाम है। उदाहरण के हेतु आदि पर्व का [illegible] श्लोक देखो।

उद्यान इत्यादि बने रहते हैं तो देख कर हम लोग कैसा आश्चर्य्य करते हैं। कैसे सोच की बात है कि हमलोग नहीं जानते कि हमारे हिन्दुस्तान में भी इस प्रकार की चीज़ें पहिले बनती थीं। यहीं पर जब हनुमान जी ने रावण के मन्दिरों को जा कर देखा है तो उस में भोजन के अनेक प्रकार के धातुओं के मणियों के और कांच के पात्रों को भी देखा है। चिमचा कांटा आदि भी उस समय होता था और बड़ी शोभा से खाना चुना जाता था। और भी अङ्गरेजी चाल के पात्र और गहने भुवनेश्वर के मन्दिर में भी बहुत प्राचीन काल के बने हैं। बाबू राजेन्द्र लाल मित्र का उड़ीसा प्रथम भाग देखो।

इसी स्थान में अशोक बन में जानकी जी के शिंशिपा के दरखूत के नीचे रहने का वर्णन है।

हिन्दुस्तान के बहुत से पण्डितों का निश्चय है कि शिंशिपा शीशम वृक्ष को कहते हैं। किन्तु हमारी बुद्धि में शिंशिपा सीताफल अर्थात् शरीफ़े के वृक्ष को कहते हैं। इस के दो बड़े भारी सबूत हैं। प्रथम तो यह कि यदि जानकी जी से शरीफ़े से कुछ संबंध नहीं तो सारा हिन्दुस्तान उस को सीताफल क्यों कहता है। दूसरे यह कि महाभारत के आदि पर्व में राजा जन्मेजय की सर्पयज्ञ की कथा में एक श्लोक है जिस का अर्थ यह है कि आस्तिक की दोहाई सुन कर जो सांप न हट जायगा उस का सिर शिंश वृक्ष के फल की तरह सौ टुकड़े हो जायगा * शिंश और शिंशपा दोनों एकही वृक्ष के नाम हैं यह कोषों से और नामों के सम्बन्ध से स्पष्ट है। शीशम के वृक्ष में ऐसा कोई फल

---

* आस्तीक बचनं श्रुत्वा यः सर्प्पो न निवर्त्तते।
शतधाभिद्यतेमूर्द्धा शिंशिवृक्ष फलंयथा ॥

नहीं होता जिस में कि बहुत से टुकड़े हों। और शरीफ़े का फल ठीक ऐसाही होता है जैसा कि श्लोक में लिखा है। इस से लोग निश्चय करें कि सीता जी शरीफ़े ही के वृक्ष के नीचे थीं।

१८ वें सर्ग के १२ श्लोक में गुलाब पाश का वर्णन है। इसलिए हमारे भाई लोग यह न समझें कि यह निधि हम को मुसल्मानों से मिली है, यह हिन्दुस्तान ही की पुरानी वस्तु है।

३० वें सर्ग के १८ श्लोक में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य प्रायः संस्कृत बोलते थे, किन्तु जब छोटे लोगों से बात करते थे तो ये संस्कृत से नीच भाषा में बोलते थे। इस से बहुत लोगों का यह कहना कि संस्कृत कभी बोली ही नहीं जाती थी खंडित होता है। हां, इस में कोई सन्देह नहीं सब से इस को काम में नहीं लाते थे।

६४ वें सर्ग के २४ श्लोक में लिखा है कि हनुमान जी राक्षसों के सिर इस तरह से तोड़ २ कर फेंकते थे जैसे यंत्र से ढेले छूटैं इस से ऊपर जहां हम यंत्रों का वर्णन कर आए हैं उस से लोग समझैं कि वह निस्सन्देह कोई ऐसी वस्तु थी जिस से गोली या कंकड़ पत्थर छोड़े जाते थे।

लंकाकाण्ड—(३ सर्ग १२ श्लोक) (३ सर्ग १३ श्लोक) (३ सर्ग १६ श्लोक) (३ सर्ग १७ श्लोक) (४ सर्ग २३ श्लोक) (२१ सर्ग श्लोक अन्त का) (३९ सर्ग २६ श्लोक) (६० सर्ग २४ श्लोक) (६१ सर्ग ३२ श्लोक) (७६ सर्ग ६८ श्लोक) (८६ सर्ग २२ श्लोक) इन श्लोकों में यंत्र और शतघ्नी का वर्णन है।

यंत्र और शतघ्नी ये रामायण में किस २ प्रकार से वर्णन की गई हैं यह ऊपर के श्लोकों के देखने से प्रगट होगा। इन दोनों के विषय में हमें कुछ विशेष कहना नहीं है, क्योंकि हमारे

पाठकों पर आप से आप यह प्रगट होगा कि यंत्र और शतघ्नी का कोई रूप रामायण से हम ठीक नहीं कर सकते।

पत्थर ढोने की कल किसी चाल की बाल्मीकि जी के समय में अवश्य रही होगी। और किंवाड़ भी किसी चाल की कल से बंद किये जाते होंगे।

यंत्र बहुत ऊंचे २ भी होते थे, जैसा कि कुम्भकर्ण की उपमा में कहा गया है। शतघ्नी फ़ौलाद की बनती थी और वृक्षों की तरह लम्बी होती थी और केवल क़िले ही पर नहीं रहती थी, परन्तु लड़ाई में भी लाई जाती थी। इन बातों से हमारा यह कहना तो ठीक ज्ञात होता है कि आगे कल * अवश्य थी पर शतघ्नी किस चाल का हथियार था यह हम नहीं कह सकते। †

११५ सर्ग ४२ श्लोक में राजा भोज के बेटे के नाम से जो सिंह और रीछ की कहानी प्रसिद्ध है वह ठीक २ यहां कही गई है।

(१५ सर्ग २७ श्लोक) राम जी से ब्रह्मा ने कहा है कि सीता लक्ष्मी हैं और आप कृष्ण हैं। (इस से हमारा बासुदेव शब्द-

---

* महाभारत की टीका में युद्ध में नीलकंठ चतुर्धर ने यंत्र का अर्थ अग्नि यंत्र लिखा है, पर राजा राधाकान्त ने अग्नियंत्र और अग्नयस्त्र इन दोनों शब्दों का अर्थ बन्दूक किया है ('' कामान बन्दूक इतिभाषा '') और दारुयंत्र का अर्थ कल लिखा है। महाभारत में एक जगह और लिखा है '' यंतस्यगुण दोषौ न विचार्य्यौ मधसूदन। अहं यंत्रो भवान् यंत्री न मे दोषी न मे गुणः।

† विजय रचित ग्रन्थ में लिखा है ''अयः कंटक संछन्ना शतघ्नी महती 'शिला' अर्थात् लोहे के कांटों से छिपाई हुई शिला का नाम शतघ्नी है। मेदिनीकोष में करंज भी इस का नाम है

वाला पहिला प्रमाण और भी दृढ़ होता है) । *

(१२९ सर्ग ३ श्लोक) पुराणों का वर्णन है ।

(१३० सर्ग) जब राजा लोग राज पर बैठते थे तब नज़र खिलअत इत्यादि आगे भी ली और दी जाती थीं । इसी सर्ग में लिखा है कि रामायण बाल्मीकि जी ने जो पहिले से बनाया है वह जो सुनता है सो सब पापों से छूट जाता है । इस में (पुराकृतं) पद से जैसे मनु का शास्त्र भृगु ने एकत्र किया वैसे ही बाल्मीकि जी की कविता भी किसी ने एकत्र किया है यह संदेह होता है । इसी सर्ग के १२० श्लोक में लिखा है कि जो रामायण लिखते हैं उन को भी पुण्य होता है । इस से उस काल में पोथियां लिखी जाती थीं, यह भी स्पष्ट है ।

उत्तरकाण्ड—उत्तरकाण्ड में बहुत सी बातें अपूर्व और कहने सुनने के योग्य हैं, पर अंगरेज़ विद्वानों ने उस के बनने का काल रामायण से पीछे माना है, इस से हमारा उन बातों के लिखने का उत्साह जाता रहा तब भी जो बातें विशेष दृष्टि देने के योग्य हैं यहां लिखी जाती हैं ।

(४४ सर्ग श्लोक ४२।४३) रावण शिव जी की पूजा करता था † इस से दयानन्द स्वामी का यह कहना कि रामायण में मूर्तिपूजा नहीं है खंडित होता है । हां, यदि वे भी यह कह दें कि यह कांड क्षेपक है या नया बना है तो इस का उत्तर नहीं ।

(५३ सर्ग श्लोक २०, २१, २३) श्रीकृष्णावतार का वर्णन

* पाणिनि के सूत्रों में भी वासुदेव आदि शब्द मिले हैं । इस विषय का विचार हमारे प्रबन्ध वैष्णवता और भारतवर्ष में देखो ।

† यत्रयत्रस्मयातीह रावणोराक्षसेश्वरः जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्रस्मनीयते ॥ ४२ ॥
वालुका वेदि मध्येतुतल्लिङ्गस्थाप्य रावणः अर्चयामासगन्धैश्चपुष्पैश्चमृतगन्धिभिः ॥४३॥

है ❋ विदित हो कि तीसरे सर्ग के १२ श्लोक में भी एक जगह विष्णु का नाम गोबिन्द कहा है "गोबिन्द कर निस्मृता" और गोबिन्द श्रीकृष्ण का नाम तब पड़ा है जब गोवर्द्धन उठाया है, यह विष्णुपुराणादिक से सिद्ध है, यथा "गोविन्द इतिचाभ्यधात्" तो इस से भी हमारी बालकांड वाली युक्ति सिद्ध हुई।

(६४ सर्ग श्लोक ८) छन्दोविदः पुराणज्ञान् इस वाक्य में पुराणों का वर्णन किया है। पुराणज्ञैश्च महात्मभिः इत्यादि वाक्यों में और भी कई स्थानों पर पुराणों का वर्णन है और पुराणों की अनेक कथा भी इस काण्ड में मिलती हैं। इस से यह निश्चय होता है कि उत्तरकाण्ड के बनने के पहले पुराण सब बन चुके थे।

पुराणों के विषय की बहुत सी शंकाएं काल क्रम से मिट गईं। जिन पुराणों को विलायती विद्वानों ने चार पांच सौ बरस का बना बतलाया था उन की सात सात सौ बरस की प्राचीन पुस्तकें मिलीं। लोग भागवत ही को बोपदेव का बनाया कहते थे, किन्तु चन्द के रायसे में भागवत का वर्णन मिलने से और प्राचीन पुस्तकों से यह सब बातें खंडित हो गईं।

उत्तरकाण्ड से मालूम होता है कि अयोध्या, काशी और प्रयाग ये तीनों राज्य उस समय अलग थे और उस समय हिन्दुस्तान में तीन सौ राज्य अलग २ थे।

❋ उत्पत्स्यतेहिलोकेऽस्मिन् यदूनां कीर्तिवर्द्धनः ।
वासुदेव इति ख्यातो विष्णुःपुरुष विग्रहः ॥ २० ॥
सते मोक्षयिता शापात् राजंस्तस्माद्भविष्यसि ।
कृताच तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ॥ २१॥ ॥
भारावतरणार्थंहि नरनारायणावुभौ । उत्पत्स्येते महावीर्यौकलौयुगउपस्थि

इसी काण्ड के चौरानबे सर्ग में यह लिखा है कि उत्तरकाण्ड भार्गव ऋषि ने बनाया है। यह भी एक आश्चर्य्य की बात है। इस वाक्य से तो अंगरेज़ी विद्वानों का सन्देह सिद्ध होता है।

॥ इति ॥

एकश्लोकी रामायणम् ।

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनम्,
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम् ।
वालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनम्,
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननम् एतद्धि रामायणम् ॥

अगरवालों की उत्पत्ति ।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

क्षत्रियपत्रिका सम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह सङ्कलित.

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.

पटना—'खड्गविलास' प्रेस, बांकीपुर.
बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.
ह० सं० ३२—१९१६.

दूसरी वार ।

यह वंशावली परम्परा की जन श्रुति और प्राचीन लेखों से संगृहीत हुई है परन्तु इसका विशेष भाग भविष्य पुराण के उत्तर भाग में के श्रीमहालक्ष्मी व्रत की कथा से लिया गया है, इस में वैश्यों में मुख्य अगरवालों की उत्पत्ति लिखी है। इस बात का महाराज जय सिंह के समय में निर्णय हुआ था कि वैश्यों में मुख्य अगरवाले ही हैं, इन अगरवालों का संक्षेप वृत्तान्त इस स्थान पर लिखा जाता है। इनका मुख्य देश पश्चिमोत्तर प्रान्त है और इनकी बोली स्त्री और पुरुष सब की खड़ी बोली अर्थात् उर्दू है, इन के पुरोहित गौड़ ब्राह्मण हैं और इनका व्यवहार सीधा और प्रायः सच्चा होता है और इस जाति में एक विशेषता यह है कि इन में कोई ऊंचे नीचे नहीं होते और न किसी को कोई अल्ल (उपाधि) होती है। बनारस और मिरजापुर में तो पुरवियों का नाम भी सुनाता है पर जो देश में पूछो कि तुम पुरविए हो कि पछांही तो वे लोग बड़ा आश्चर्य्य करते हैं और कहते हैं कि पुरबिए शब्द का क्या अर्थ है। बनारस के पछांही लोगों में भी ठीक अगरवालों की रीतें नहीं मिलतीं और उनकी बोली भी वैसी नहीं है। केवल जो घर दिल्ली वाले लोगों के हैं उन में वे बातें हैं। इन लोगों में जैसा विवाहादिक में उत्साह होता है वैसा ही मरने में बरसों दुःख भी करते हैं परन्तु जो बूढ़ा मरता है तब तो विवाह में भी धूमधाम विशेष कर देते हैं!!!

देश में तो जामा पगड़ी पहन के सब दाल भात खाते हैं पर इधर वह व्यवहार नहीं करते और केवल पूरी खाने में जाति का साथ देते हैं। एक बात यह भी इस जाति में उत्तम है कि

वालों में मांस और मदिरा की चाल कहीं नहीं है पर हुक्का इनके पुरोहित और ये दोनों पीते हैं यों जो लोग नेमी हों वे न पियें पर जाति की चाल है। विवाह के समय इन का बहुत व्यय करना सब में प्रसिद्ध है और इसी विपत से कई घर बिगड़ गए पर यह रीति छोड़ते नहीं। इन में कुछ लोग जैनी भी होते हैं और देस में सब जनेऊ पहिरते हैं पर इधर पूरब में कोई कोई नहीं भी पहिरते, इन के पुरुषों का पहिरावा पगड़ी पायजामा या धोती और अंगा है और स्त्रियों का पहिरावा ओढ़ना घँघरा या छोटे पन में सुथना है। और दशो संस्कार होने की चाल इन में अब तक मिलती है। पुरबियों के अतिरिक्त मारवाड़ी अगरवाले भी होते हैं पर इनका ठीक पता नहीं मिलता कि कब से और कहां से हैं। जैसे पछांही अगरवालों की चाल खत्रियों से मिलती है वैसे ही इन मारवारियों की महेशरियों से मिलती है पर पुरबियों की चाल तो इन दोनों से विलक्षण है।

अगरवालों की उत्पत्ति की भूमिका में यह बात लिखनी भी आनन्द देने वाली होगी कि श्रीनन्दरायजी जिन के घर साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र प्रगट हुए वैश्यही थे और यह बात श्रीमद्भागवतादि ग्रंथों से भी निश्चय की गई है, जो हो इस कुल में सर्व्वदा से लोग बड़े धनवान और उदार होते आए पर इन [illegible]नों वे बातें जाती रहीं थीं, मुगलों के समय से इनकी वृद्धि फिर हुई और अब तक होती जाती है।

मैंने इस छोटे से ग्रन्थ में संक्षेप से इनकी उत्पत्ति लिखी है। निश्चय है कि इसे पढ़ के वे लोग अपनी कुल परम्परा जानेंगे और मुझे भी अपने दीन और छोटे भाइयों में स्मर्ण रक्खेंगे।

वैशाख शुद्ध ५ सं १९२८ }
काशी } श्री हरिश्चन्द्र।

वैश्यवंशावतंसाय भगवते श्रीकृष्णचन्द्राय नमः ।

अगरवालों की उत्पत्ति ।

दोहा ।

विमल वैश्य वंशावली, कुमुदवनी हित चन्द ।
जयजय गोकुल गोप को, गोपी पति नन्दनन्द ॥ १ ॥

भगवान ने अपने मुख से ब्राह्मण और भुजा से क्षत्री और जांघ से वैश्य और चरण से शूद्रों को बनाया—उसमें वैश्य को चार कर्म्म का अधिकार दिया पहिला खेती दूसरा गऊ की रक्षा तीसरा व्यापार और चौथा ब्याज, जैसे वेद और यज्ञादिक का स्वामी ब्राह्मण और राज्य और युद्ध का स्वामी क्षत्री वैसेही धन का स्वामी वैश्य है और ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनों की द्विज संज्ञा है और तीनों वर्ण वेद कर्म्म के अधिकारी हैं। पहिला मनुष्य जो वैश्यों में हुआ उस का नाम धनपाल था जिसे ब्राह्मणों ने प्रतापनगर में राज पर बिठा कर धन का अधिकारी बनाया, उस के यहां आठ पुत्र और एक कन्या हुई। उस कन्या का नाम मुकुटा था और वह याज्ञवल्क्य ऋषि से ब्याही गई। उन आठ पुत्रों के ये नाम थे—शिव, नल, अनिल, नन्द, कुन्द, मुकुन्द, बल्लभ और शेखर। इन पुत्रों को अश्वविद्या शालिहोत्र के आचार्य्य विशाल राजा ने अपनी आठ बेटियां ब्याह दी थीं। उन कन्या लोगों के ये नाम थे और यही वैश्य लोगों की मात्रिका हैं—पद्मावती, मालती, कान्ती, शुभा, भव्या, भवा, रजा और सुन्दरी।

से ब्याह किया और फिर कर दिल्ली के पास के देशों में आबा और पंजाब के सिरे से आगरे तक अपना राज स्थापन किया और इन्हीं देशों में अपना वंश फैलाया। जब इन्द्र ने राजा के बर का सामचार सुना तब तो घबड़ाया और उससे मित्रता करनी चाही। और इस बात के हेतु नारद जी को भेजा और एक अप्सरा जिसका नाम मधुशालिनी था देकर मेल कर लिया। इसके पीछे राजा अग्रसेन ने जमुना जी के तट पर श्रीमहालक्ष्मी का बड़ा तप किया और श्रीलक्ष्मीजी ने प्रसन्न होकर ये बर दिये कि आज से यह वंश तेरे नाम से होगा और तेरे कुल की मैं रक्षा करने वाली और कुलदेवी हूंगी और इस कुल में मेरा दीवाली का उत्सव सब लोग मानैंगे—यह बर देकर श्री महालक्ष्मी चली गईं। तब राजाने आकर अपना राज बसाबा उस राज की उत्तर सीमा हिमालय पर्व्वत और पंजाब की नदियां थीं और पूर्व्व और दक्षिण की सीमा श्रीगंगा जी और पश्चिम की सीमा जमुनाजी से लेकर माड़वार देशं के पास के देश थे—इनके वंश के लोग सर्व्वदा इन्हीं देशों में बसे इससे मुख्य अगरवाले लोग वेही हैं जो पंजाब प्रान्त से इधर मेरट आगरे तक के बसने वाले हैं। अगरवालों के मुख्य बसने के नगर ये हैं १—आगरा जिस का शुद्ध नाम अग्रपुर है यह नगर राजा अग्र के पूर्व्व दक्षिण प्रदेश की राजधानी था। २ दिल्ली· जिसका शुद्ध नाम इन्द्रप्रस्थ है। ३—गुड़गांवां जिस का शुद्ध नाम गौड़ ग्राम है, यह नगर अगरवालों के पुरोहित गौड़ ब्राह्मणों को मिला था इसी से प्रायः अगरवाले लोग वहीं की माता को पूजते हैं *। ४ मेरट जिस का शुद्ध नाम महाराष्ट्र है। ५ रोहतक जिसका शुद्ध नाम रोहिताश्व है। ६ हांसीहिसार जिसका शुद्ध नाम हिंसारि देश है। ७ पानीपत इस का शुद्ध नाम पुन्यपत्तन· जाना जाता है। ८-करनाल। ९ कोट

* इसको कोई मथरा भी कहते हैं।

कांगड़ा जिस का शुद्ध नाम नगर कोट है। अगरवालों की कुलदेवी महामाया का मन्दिर यहीं है और ज्वाला जी का मन्दिर भी इसी नगर की सीमा में है। १० लाहोर इस नगर का शुद्ध नाम लवकोट है। ११ मंडी इसी नगर की सीमा में रैवालसर तीर्थ है। १२ बिलासपुर इसी नगर की सीमा में नयना देवी का मन्दिर बसा है। १३ गढ़वाल। १४ जींदसपीदम। १५ नाभा। १६ नारनौल इस का शुद्ध नाम नारिनवल है। ये सब नगर उस राजधानी में थे, और राजधानी का नाम अग्र नगर था जिसे अब अगरोहा कहते हैं। आगरा और अगरोहा * ये दोनों नगर राजा अग्रसेन के नाम से आज तक प्रसिद्ध हैं। राजा अग्रसेन ने अपनी राजधानी में महालक्ष्मी का एक बड़ा मंदिर किया था।

राजा अग्रसेन ने साढ़े सत्रह यज्ञ किये—इसका कारण यह है कि जब राजाने अट्ठारवां यज्ञ आरम्भ किया और आधा हो भी चुका तब राजा को यज्ञ की हिंसा से बड़ी ग्लानि हुई और कहा कि हमारे कुल में यद्यपि कहीं भी कोई मांस नहीं खाता परन्तु दैवी हिंसा होती है सो आज से जो मेरे वंश में हो उसको यह मेरी आन है कि दैवी हिंसा भी न करै अर्थात् पशु यज्ञ और बलिदान भी हमारे वंश में न होवै और इससे राजा ने उस यज्ञ को भी पूरा नहीं किया। राजा को १७ रानी और एक उपरानी थीं। उनसे एक एक को तीन तीन पुत्र और एक एक कन्या हुई और उसी साढ़े सत्रह यज्ञ से साढ़े सत्रह गोत्र हुए। कोई लोग ऐसा भी कहते हैं कि किसी मनुष्य का ब्याह जब गोत्र में हो गया तो बड़े लोगों ने एकही गोत्र के दो भाग कर दिये इससे साढ़े सत्रह गोत्र हुए पर यह बात प्रमाण के योग्य नहीं है। राजा अग्र के उन ७२ बहत्तर पुत्र और कन्याओं के बेटा अग्रवाल कहाए। अग्रवाल का अर्थ अग्र के बालक हैं। अग्रवालों के साढ़े सत्रह

---

* अब यह एक गांव सा बच गया है।

गोत्रों के ये नाम हैं—१ गर्ग २ गोइल ३ गावाल ४ बातूसिल ५ कासिल ६ सिंहल ७ मंगल ८ भद्दल ६ तिंगल १० ऐरण ११ टैरण १२ ठिंगल १३ तित्तल १४ मित्तल १५ तुन्दल १६ तायल १७ गोभिल, और गवन अर्थात् गोइन आधा गोत्र है, पर अब नामों में के कुछ अक्षर उलट पुलट भी हो गए हैं। राजा अग्र ने अपने सहायक गर्ग ऋषि के नाम से अपना प्रथम गोत्र किया और दूसरे गोत्रों के नाम भी यज्ञों के अनुसार रक्खे। राजा अग्र ने अपने कुल पुरोहित गौड़ ब्राह्मण बनाए और उस काल में सब अगरवाले वेद पढ़नेवाले और तृकाल साधनेवाले थे। राजा अग्र बूढ़ा होकर तप करने चला गया—और उसका पुत्र विभु राज पर बैठा और उसके कई वंश तक राजा लोग अपने धर्म्म में निष्ठ हो कर राज करते रहे। इस वंश में दिवाकर एक राजा हुआ जो वेदधर्म्म छोड़कर जैनी हो गया और उस ने बहुत से लोगों को जैनी किया और उसी काल से अगरवालों में वेदधर्म्म छूटने लगा परन्तु अगरोहा और दिल्ली के अगरवालों ने अपना धर्म्म नहीं छोड़ा। इस वंश में राजा उग्रचन्द्र के समय से राज घटने लगा और जब शहाबुद्दीन ने चढ़ाई किया तब तो अगरोहा सब भांति नाश कर दिया—शहाबुद्दीन की लड़ाई में बहुत से लोग मारे गए और उनकी बहुतसी स्त्री सती हुईं जो हम लोगों के घर में अब तक मानी और पूजी जाती हैं। यह अगरवालों के नाश का ठीक समय था इसी समय से इन में से बहुतों ने धर्म्म छोड़ दिये और यज्ञोपवीत तोड़ डाले। उस समय जो अगरवाले भागे वे मारवाड़ और पूर्व में जा बसे। और उनके वंश में पुरबिये और माड़वारी अगरवाले हुए, और उतराधी और दखिनाधी लोग भी इसी भांति हुए, पर मुख्य अगरवाले पछांही वेही कहलाए जो दिल्ली प्रान्त में बच गए थे। जब मुगलों का राज हुआ तब अगरवालों की फिर बढ़ती हुई और अकबर ने तो अगरवालों को

अपना वज़ीर बनाया—उसी काल से अगरवालों की विशेष वृद्धि हुई—अकबर के दो मुख्य और प्रसिद्ध अगरवाले वज़ीर थे जिन का नाम महाराज टोडरमल और मद्धशाह था, मद्धूसाही पैसा इन्हीं के नाम से चला है ॥

खत्रियों की उत्पत्ति ।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

क्षत्रियपत्रिका सम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह सङ्कलि

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित

पटना—'खड्गविलास' प्रेस, बांकीपुर·
बाबू रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित·
ह० सं० ३२—१९१७.

दूसरी बार ।

खत्रियों की उत्पत्ति ।

मेरी बहुत दिन से इच्छा थी कि इस जाति का पुरावृत्त संग्रह करूं परन्तु मुझे इस में कोई सहायक न मिला और जिन २ मित्रों ने मुझ से पुरावृत्त देने कहा था वे इस विषय में असमर्थ हो गए और इसी से मेरा भी उत्साह बहुत दिनों तक मन्द पड़ा रहा परन्तु मेरे परम मित्र ने इस विषय में मुझे फिर उत्साहित किया और कुछ मुझे ऐसी सहायता भी मिल गई कि मैं फिर से इस जाति के समाचार अन्वेषण में उत्सुक हुआ।

लाहोर निवासी श्रीपण्डित राधाकृष्ण जी ने इस विषय में मुझे बड़ी सहायता दी और वैसी ही कुछ कुछ सहायता श्री मुनशी बुधसिंह के मिहिर प्रकाश और श्रीयुत शेरिङ्ग साहब के जातिसंग्रह से मिली।

इस समय में प्रायः बहुत जाति के लोग अपनी अपनी उन्नति दर्शन में प्रवृत्त हुए हैं जैसा दूसरे (जिन के वैश्यत्व में भी सन्देह है क्योंकि उनके यहां फिर से कन्या का पति होता है) अपने को कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं कायस्थ (जो शूद्रधर्म्म कमलाकर की रीति से संकर शूद्र हैं) कहते हैं कि हम क्षत्रिय हैं और जाट लोगों में भी मेरे मित्र बेसवां के राजा श्री ठाकुर गिरिप्रसाद सिंह ने निश्चय किया है कि वे क्षत्रिय हैं तो इस दशा में इस आर्य्य जाति का पुरावृत्त संग्रह होना भी अवश्य है, जो मुख्य आर्य जाति के निवास स्थल पंजाब और पश्चिमोत्तर देश म फैली हुई है और जिस में सर्वदा से अच्छे लोग होते आए

हैं। हमारे पूर्वोक्त आर्य्य शब्द के दो बेर के प्रयोग से कोई यह शंका न करे कि देश के पक्षपात से मैंने यह आग्रह से आदर का शब्द रक्खा है क्योंकि आर्य्य जाति के निवास का मुख्य यही देश है और यहीं से आर्य्य जाति के लोग सारे भारतवर्ष में फैले हैं यह अङ्गरेजी हिन्दुस्तान के इतिहासों के पाठ से स्पष्ट हो जायगा। हमारे एक मित्र से इस बात का मुझ से बड़ा विवाद उपस्थित हुआ था, वह कहते थे कि पंजाब देश अपवित्र है क्योंकि महाभारत में कर्ण पर्ब्ब के आरम्भ में शल्य राजा से कर्ण ने पंजाब देश की बड़ी निन्दा की है और वहां के बहुत बुरे आचरण दिखाये हैं परन्तु वह निन्दा निन्दा की भांति गृहीत नहीं होती क्योंकि पश्चिम में गुजराती या मध्य देश के वासियों की भांति सोला पामरी का प्रचार नहीं है और न ऊपर से वे लोग स्वच्छ रहते हैं परन्तु यह मैं निस्सन्देह कह सक्ता हूं कि यहां के काले चित्तवाले मनुष्यों से उनका चित्त कहीं उजला है। इसके अतिरिक्त कर्ण शल्य का शत्रु है इससे शत्रु की की हुई निन्दा निन्दा नहीं कहाती हां इस बात का हम पूर्ण रूप से प्रमाण देते हैं कि भारतवर्ष में पहिले पहिले आर्य्य लोग केवल पंजाब से लेकर प्रयाग तक बसते थे, श्रीमान जानम्योर साहब ने लाहौर के चीफपण्डित पण्डित राधाकृष्ण को जो पत्र लिखा है उसमें मुक्त कंठ से उन्हों ने स्थापन किया है कि जहां तक मैंने प्राचीन वेदादिक पुस्तकें पढ़ीं उनसे मुझे पूरा निश्चय है कि आर्य्य लोग पहले इन्हीं देशों में बसते थे। "ऋग्वेद संहिता दशम मंडल ७५ सू० ५ ऋक् इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रृणुह्यासुषोमया। ६ मंडल सू० ४५ ऋ० ३१ अधिवृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात उरुकक्षो न गांग्यः। १० मंड० सू. ७५ ऋ. और ५ मं ७२ सू. ऋ १७ सप्तमे सप्तशाकिन एकमेकाशता ददुः यमुनायामश्रुतमुद्राधो

गव्यं मृधे निराधो अशव्या मृधे मंड ३. ३३ ऋ. १ प्रपर्वतानामुशत उपस्था दश्वे इव विषिते हासमाने गावेव शुभ्रे मातरारिहाणे विपाद् छुतुद्री पयसा जवेते ३ मंड ३३ सू० ४ ऋ० नित्वाद्धेव आपृथिव्या इलायास्पदे सुदिनत्वे अम्ह्राम् दृषद्वत्यां मानुष आप यायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ६ मंड ६१ ऋ. २ इयंशुष्मेभिर्बि सखाइवारुजत् सानुगिरीणां तविषेभिरुर्म्मिभिः पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेमधीतिभिः" इत्यादि श्रुतियों में गङ्गा यमुना व्यासा सतलज सरस्वती इत्यादि नदियों की महिमा कही है और ऋग्वेद में पहले और दूसरे मं० में कई ऋचाओं में सरस्वती की महिमा कही है, यास्क ने अपने निरुक्त में इन ऋचाओं के अर्थ में विश्वामित्र ऋषि के सतलज और व्यासा के मुहाने पर यज्ञ करने का और इन नदियों के स्तुति करने का प्रकरण लिखा है *। और कीकट देश तथा अन्य प्रदेश और इत्यादि प्रदेश और गोमती इत्यादि नदियों के जो कहीं श्रुतियों में नाम आगये हैं वे परस्पर विरुद्ध होने के कारण तादृश प्रमाणी भूत नहीं होते इससे इस बात को हम पूर्ण रूप से प्रमाण प्रमित कर चुके कि आर्य्य लोगों के निवास का स्थान पंजाब से लेकर यमुना के किनारे तक के देश हैं तो इससे वहां के प्राचीन निवासियों को यदि हम परम आर्य्य कहें तो क्या हानि है।

अब इस बात का झगड़ा रहा कि ये कौन वर्ण हैं? तो हम साधारण रूप से कहते हैं कि ये क्षत्री हैं, क्षत्री से खत्री कैसे हुए इस में बड़ा विवाद है। बहुत लोगों का तो यह सिद्धान्त है कि पंजाब के लोग क्ष उच्चारण नहीं कर सके इससे ये क्षत्री से खत्री

---

* मनु ने भी इन्हीं को पुण्य देश कहा है "सरस्वती दृषद्वत्योदवनद्योर्यन्तर" "कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनकाः"

कहलाये, कोई कहते हैं कि जब परशुराम जी ने निक्षत्र किया तब पंजाब देश में कई बालक खत्री कहकर बचा लिये गये थे वे ब्राह्मण वैश्य और शूद्रों के घरों में पले थे और अब उन्हीं से खत्री अरोड़े भाटिये इत्यादि अनेक उपजाति बन गईं और उनके आचरण भी अपने २ पालकों के अनुसार अलग २ होगये, तीसरे कहते हैं कि क्षत्री और खत्री से भेद राजा चन्द्रगुप्त के समय से हुआ क्योंकि चन्द्रगुप्त शूद्री के पेट से था और जब उसने चाणक्य ब्राह्मण के बल से नन्दों को मारा और भारतवर्ष का राजा हुआ तो सब क्षत्रियों से उसने रोटी और बेटी का व्यवहार खोलना चाहा तब से बहुत से क्षत्री अलग होकर हिमालय की नीची श्रेणी में जा छिपे और जब उसने क्षत्रियों का संहार करना आरम्भ किया तब से ये सब क्षत्री खत्रियों के नाम से बनिये बन कर बच गये, कोई कहते हैं कि ये लोग हैं तो क्षत्री पर कलजुग के प्रभाव से वैश्य हो गये हैं क्योंकि कलजुग के प्रकरण में लिखा है कि " वैश्य वृत्यातु राजानः " । कोई ऐसा भी निश्चय करते हैं कि किसी समय सारे भारतवर्ष में जैनों का मत फैल गया था ? तब सब वर्ण के लोग जैन हो गये थे विशेष करके वैश्य और क्षत्री उन में से जो क्षत्री आबू के पहाड़ पर ब्राह्मणों ने संस्कार देकर बनाये वे तो क्षत्री हुए और उन लोगों से सैकड़ों वर्ष पीछे जो क्षत्री जैन धर्म छोड़ कर हिंदू हुए वे खत्री कहाये और क्षत्रियों के पंक्ति से न मिले, गुरु गोविन्द सिंह ने अपने ग्रन्थ नाटक के दूसरे तीसरे चौथे पांचवे अध्याय में लिखा है कि " सब खत्री मात्र सूर्य्यवंशी हैं. रामजी के दो पुत्र लव और कुश ने मद्र देश के राजा की कन्या से विवाह किया और उसी प्रान्त में दोनों ने दो नगर बसाये कुश ने कसूर लव ने लाहौर, उन दोनों के वंश में कई सौ वर्ष लोग राज्य करते चले आये एक समय में कुशवंश में कालकेत नामा राजा हुआ और लव वंश में कालराय, इन दो

राजाओं के समय में दोनों वंशों से आपुस में बड़ा विरोध उत्पन्न हुआ। कालकेतु राजा बलवान था उसने सब लववंशी क्षत्रियों को उस प्रान्त से निकाल दिया, राजा कालराय भाग कर सनौड देश में गया और वहां के राजा की बेटी से विवाह किया और उससे जो पुत्र हुआ उस का नाम सोढीराय रक्खा, उस सोढीराय के वंश के क्षत्री सोढ़ी कहाये। कुछकाल बीते जब सोढियों ने कुश बंशवालों को जीता तो कुश वंश के भाग कर काशी में चले आये और वे लोग यहां रह कर बेद पढ़ने लगे और उन में प्रायः बड़े २ परिडत हुए, बहुत दिनों पीछे जब सोढियों ने सुना कि हमारे दूसरे भाई लोग काशी में वेद पढ़कर परिडत हुए हैं तो उनको काशी से बुलाया और वेद सुनकर अपना सब राज्य उन लोगों को दे दिया जिनकी वेद पढ़ने से 'वेदी' संज्ञा होगई थी, काल के बल से इन दोनों वंश के राज्य नष्ट हो गये और बेदियों के पास केवल बीस गांव रह गये और उन्हीं बेदियों के वंश में सम्बत १५२६ में कालू चोणे के घर बाबा नानक का जन्म हुआ और सोढियों के वंश में गुरु गोविन्द सिंह हुए" गुरु नानक साहब अपने ग्रन्थ साहब में जहां चारो वर्णों का नाम लिखते हैं वहां ब्राह्मण खत्री बैश्य शूद्र लिखते हैं।

कोई कहते हैं कि बाबर के पहिले की किसी पुस्तक में खत्री का शब्द नहीं मिलता इससे निश्चय होता है कि बाबर ने जिन क्षत्रियों को अपने सेना में नौकर रक्खा था उनका नाम खत्री रक्खा।

परंतु कोई कहते हैं कि पञ्जाब में नाग भाषा का बहुत प्रचार था और अब भी पंजाबी भाषा में उनके बहुत शब्द मिलते हैं और क्षत्री खत्री की नाग भाषा है॥

ऊपर के लेख से हम सिद्ध कर चुके कि खत्री क्षत्रिय हैं और उस में लोगों के जो अनेक बिकल्प हैं वे भी लिखे गए परंतु हम

कोई विकल्प नहीं करते क्योंकि नीचे लिखे हुए वाक्य पुराणोपपुराण सारसंग्रह में दशावतार प्रकरण में परशुराम जी के दिग्विजय में मिले हैं जिन से इनका क्षत्रिय होना स्पष्ट है यथा—

यदा श्रीमत्परशूरामो गतो दिग्विजयेच्छया ॥
सकलाभूस्तदाजाता पूर्णं मोदान्विता यतः ॥ २४ ॥
दुष्टसंहारकृद्धीमान् दुष्टभाराकुला रसा ।
पर्यटन् सकलां पृथ्वीं जयन् बाहुबलेन च ॥ २५ ॥
गतः पंचनदान्देशान्यद्राज्ञा क्रूरसंगरं ।
कृतं परशुरामेण महाविक्रमशालिना ॥ २६ ॥
एकाकिनापि तद्राज्ञः सैन्यं सर्वं विनाशितं ।
कतिचिद्दुद्रुवुर्वीरा हतास्तु बहवोऽभवन् ॥ २७ ॥
असृङ्मेदवती भूमिः शुशुभे रणमंडले ।
धुनी लोहितपंकाढ्या बभूवातिभयंकरा ॥ २८ ॥
धूलिः सैन्यस्य यस्यां सा मग्ना पंकीबभूव ह ।
जन्यभूमिगता यत्र वीराणां मृतमस्तकाः ॥ २९ ॥
कमलाभां वहन्ती या कल्लोलैरावृताप्यभूत् ।
राजानं संनिहत्यासौ रामस्तत्र तरोः पदे ॥ ३० ॥
श्रान्तोऽतिष्ठत् क्षणं यावद्रिपुनार्यः समागताः ।
अन्वेषयन्त्यः संग्रामभूम्यां स्वीयान् पतीन् मृतान् ॥ ३१ ॥
आक्रोशंत्योभिधेयेर्न पुत्रवृत्तगृहादिना ।
विलपन्, योमुहुर्दुःखाद्घातयन्त्य उरःस्थलं ॥ ३२ ॥
लक्ष्मीविलास नामैको वैश्यस्तावत्समागतः ।
करुणापूर्ण हृदयो दृष्ट्वा तासां हि दुर्गतिम् ॥ ३३ ॥
पत्युर्नाशं महद्दुःखं ज्ञात्वा ताः शीलशालिनीः ।
दानशौण्डोधनाढ्यश्च सद्बुध्या ताः सुदुःखिताः ॥ ३४ ॥
बालाननाथान् मत्वा ऽसौ वनयत् स्वगृहं प्रति ।
सान्त्वयित्वा विवेकेन परेण परमाः सतीः ॥ ३५ ॥

लालनं पालनं तेषां पोषणं तत्स्त्रिया सुत ।
बालानां क्षत्रवंश्यानामकरोत् स्नेहभावतः ॥ ३६ ॥
एवमेव ततो रंग भूम्याः काश्चित् स्त्रियो हृता ।
दुष्टैः काश्चिद्विड्गिभश्चै दयालुभिरुपाहृता ॥ ३७ ॥
लक्ष्मीविलास अंशे न विशा ते बालका यदा ।
व्रतबंधार्हतां प्राप्ताः समकार्युं, पनायनं ॥ ३८ ॥
स्वधर्माचरणे चैवं विशा ते सुनियोजिताः ।
एवमेवापरे बालाः स्त्रियो येन सुरक्षिताः ॥ ३६ ॥
पोषिताः स्वीयदस्तेन अंशेनैव तथैव ते ।
मत्वा तमेव चाचारं वर्वर्तुस्तेन सन्मुदा ॥ ४० ॥
इमे लक्ष्मीविलासेन रक्षिताः क्षत्रवंशजाः ।
शुद्धाः सदाचारयुक्ताः अभूभाग्यशालिनः ॥ ४१ ॥
येषां कलियुगेप्यामे चत्वारो वंशजा स्मृताः ।
अग्निः सोमश्च सूर्यश्च नाग एते चतुर्विधाः ॥४२॥
अद्यापि भूमौ वर्तते चतुस्सन्तानवर्द्धकाः ।
दानशूराः सदाचारा भाग्यवतः सुविक्रमाः ॥४३॥

अर्थ—जब परशुराम जी दिग्विजय करने निकले तब सब पृथ्वी आनन्दपूर्ण होगई क्योंकि दुष्टों के भार से पृथ्वी व्याकुल हुई थी और इन्हों ने दुष्टों का संहार किया। जब पृथ्वी पर घूमते और बाहुबल से जय करते हुए पंचनद देशों में गए और वहां के राजा से बड़ा संग्राम किया यद्यपि भगवान् अकेले थे तथापि वहां के राजा की सब सेना मार डाली—इत्यादि।

उन हत वीरों की स्त्रियां और बालकों को लक्ष्मीविलास नामक वैश्य ले गया और धर्मपूर्वक रक्षण किया और उनके पुत्रों का लालन पालन और यज्ञोपवीतादि संस्कार किया। इसी भांति उन मृत वीरों की स्त्रियां और बालक ब्राह्मण वा शूद्रादि जिन

वर्णों के घर गए उन के ऐसेही आचरण हुए और लक्ष्मीविलास का पालित क्षत्रियों का समूह जो अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और नागवंश का था क्षत्रियसंस्कार पाकर भी वैश्यधर्म में निष्ठ हुआ इत्यादि।

इनका विशेष वर्णन भविष्यपुराण के पूर्वार्द्ध में जो लिखा है उस से और भी निश्चय होता है कि ये सब क्षत्रिय हैं ० इन श्लोकों की संस्कृत ऐसी सहज है कि अर्थ लिखने की आवश्यकता नहीं। सिद्धान्त यह है कि वैश्यों की वा दूसरी वृत्ति करनेवाले क्षत्रिय जो पंजाब देश में हैं वे क्षत्रिय ही हैं किन्तु परशुराम जी के समय से वहां के क्षत्रियों का युद्ध संस्कार छूट गया है और ऐसे लोगों की एक पृथक जाति, खत्री, रोड़े, भाटिये इत्यादि हो गई है। इस विषय के दोनो अध्याय यहां प्रकाशित किए जाते हैं।

—:o:—

सूतउवाच।

एवं बहुविधे देशे स हत्वा क्षत्रियर्षभान्।
गतो पञ्चनदे देवो क्षत्रियान्वयसूदनः॥ १॥
तत्र प्राप्तान् महाशूरान् क्षत्रियान् रणदुर्मदान्।
युयुधेऽतिबलो रामः साक्षान्नारायणांशजः॥ २॥
जनन्या जनितो लोके कः शूरो यस्तु पार्थिवान्।
पाञ्चालान् जयते युद्धे विना नारायणं स्वयं॥ ३॥
सर्व्वान् हत्वा महाराजान् क्षत्रियान् स द्विजोत्तमः।
रुरुधे पङ्कज वने यथा मत्त द्विपाधिपः॥ ४॥
एवं हत्वा रणे शूरान्, तरुणान् रणदुर्म्मदान्।
प्रवृत्तो वृद्धबालेषु हन्तुं क्रोधाकुलेक्षणः॥ ५॥
हाहाकारो महानासीत् तत्र क्षत्रिय पर्य्यये।

हतेषु तेषु शूरेषु बालवृद्धेषु च क्रमात्।
अनाथाश्चाभवन् सर्व्वाः क्षत्रियाण्यो हतान्वयाः ॥ ७ ॥
तत्र कश्चिन् महावैश्यः सुधर्म्मा नामकः प्रभुः।
आसीन् नागान्वये जातः क्षत्रियाणां प्रियंकरः ॥ ८ ॥
हतेषु सर्वबालेषु व्याकुलाश्रुकुलेक्षणः।
चतुःपञ्चावशेषेषूपायं समकरोत्तदा ॥ ९ ॥
नीत्वा स बालान् तान् सर्व्वान् स्वप्रियायै प्रदत्तवान्।
तस्य भार्य्या माहाप्राज्ञी सुशीला नाम नामतः ॥
वात्सल्यमकरोत्तेषु यथा स्वोदरजे भृशं ॥ १० ॥
यदा निवर्तितो देवो निःक्षत्रकृत्य पार्थिवान्।
ऊचुस्तस्मै समागत्यं तद्वृत्तं पिशुनास्तदा ॥ ११ ॥
अस्ति कश्चिन् महावैश्यो क्षत्रियाणां प्रियंकरः।
रक्षितास्तेन बालास्ते क्षत्रियाणां नरोत्तम ॥ १२ ॥
तच्छ्रुत्वा स द्विजो धावन्नुश्वसन्नुरगो यथा।
उद्यम्य परशुं तत्र गतः क्रोधाकुलेन्द्रियः ॥ १३ ॥
तं दृष्ट्वा स महान् वैश्यः प्राप्तं कालानलोपमं।
दुर्निवारं मनुष्येभ्यो भक्त्या बुध्या ह्यपूजयत् ॥ १४ ॥
सारस्वतास्तु ये विप्राः क्षत्रियाणां पुरोहिताः।
तेपि तत्रागमन् सर्व्वे यजमानहितेप्सवः ॥ १५ ॥
ऊचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रणामानतकन्धराः।
वैश्यः सुधर्म्मा तत्पत्नी भार्गवं भर्गविक्रमं ॥ १६ ॥

सर्व्वे ऊचुः

नमो नमस्ते श्रितविग्रहाय। नमो नमस्ते हृत विग्रहाय।
नमो नमस्ते कृत विग्रहाय। नमो नमस्ते धृत प्रग्रहाय।
नमस्ते पूर्णकामाय दुष्ट बामाय ते नमः।
नमो रामाभिरामाय रूपश्यामाय ते नमः ॥ १८ ॥
क्षात्रद्रुम कुठाराय चाकूपाराय ते नमः।

नमस्तेऽकृतदाराय चाकूपाराय ते नमः ॥ १९ ॥
नमो नमस्ते सर्व्वार्याचितशर्व्वाय ते नमः ।
हृतराजन्य गर्व्वाया पूर्व्वखर्व्वाय ते नमः ॥ २० ॥
मीन कच्छप वाराह नृसिंह वटु रूपिणे ।
कृत लीलावताराय बिष्णवे प्रभविष्णवे ॥ २१ ॥
रेणुका गर्भ रत्नाय च्यवनानन्द दायिने ।
भार्गवान्वय जाताय नमो रामाय विष्णवे ॥ २२ ॥
नमः परशुहस्ताय खङ्गिने चक्रिणे नमः ।
गदिने शार्ङ्गिणे नित्यं शौरिणे ते नमोनमः ॥ २३ ॥
नमस्तेऽद्भुत विग्राय धरा भारापहारिणे ।
शरणागत पालाय श्रीरामाय नमोनमः ॥ २४ ॥

इति श्री भविष्यपुराणे पूर्वखण्डे वर्णाचारनिर्णये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

सूतउवाच—इत्थं स्तुतः स भगवान् उवाच श्लक्ष्णया गिरा ।
वरं ब्रणीध्वं भद्रं वो मा भैष्ट विगत ज्वराः ॥ १ ॥
सारस्वता ऊचुः—नाशिता भवता देव राजन्या भूरिविक्रमा
संन्ति तेषान्दयासिन्धो बाला दीनास्त्रियस्तथा ॥ २ ॥
तेभ्योऽभयं वयं त्वत्तो देव वाञ्छामहे सदा ।
सुधर्म्मोवाच—मया संरक्षिता ये तु मामकीं वृत्तिमाश्रिताः ॥ ३ ॥
त्यक्तक्षत्रियधर्म्मास्ते सम्भविष्यन्ति बालकाः ।
वैश्यस्तु भवताऽवध्यः सदा त्वत्पाद सेवकः ।
अनुकंप्यो दया सिन्धो दीनोऽहं बन्धु वञ्चितः ॥ ४ ॥
परशुरामउवाच—अत्राऽगतोहं नाशार्थं तेषामेव न संशयः ।
किन्तु तत् स्तवनात्प्रीतो विरक्तोहं वधात्प्रति ॥ ५ ॥
मत्प्रसादाद्भविष्यन्ति बाला विट धर्म्ममाश्रिताः ।
लक्ष्मीवन्तः प्रज्ञावन्तो नानाशास्त्रविचक्षणाः ॥ ६ ॥
पण्यचर्थीषु चतुरा राजसेवाविधायिनः ।
पुरुषाश्च स्त्रियः सर्व्वा सुभगाः कुलमाश्रिताः ॥ ७ ॥

यूयं सारस्वता विप्राः प्रतिगृह्णन्तु बालकान् ।
कुर्व्वन्तु चापि सर्व्वेषां संस्कारं क्षत्रियोचितम् ॥ ८ ॥

सूतउवाच—इति संस्थाप्य भगवान् प्रजावीजं प्रजापतिः ।
जगाम तपसे शैलं गौतमाचलमुत्तमं ॥ ९ ॥

ततः प्रभृति ते सर्व्वे क्षत्रिया द्विजपालिताः ।
त्यक्तक्षत्रियधर्म्माणो वणिग्वृत्तं समाश्रिताः ॥ १० ॥

ते सूर्य्य शशि वंशीया अग्निवंशसमुद्भवाः ।
उत्तमाः क्षत्रियाः ख्याताः इतरे मध्यमाः स्मृताः ॥ ११ ॥

भोठ भिल्ल निवारादि महिषावत्त कोटकाः ।
दैत्यवंशसमुद्भपन्नाःक्षत्रियास्तेपि विश्रुताः ॥ १२ ॥

टिक्कसेल इति ख्याता प्रेतवंशोद्भवाः श्रुताः ।
उन्नाइवंशसंभूतास्तेतु कायस्थ पूर्वजाः ॥ १३ ॥

विसेना बर वाराश्च अवस्थास्तवस्थास्तथा ।
अङ्कश कामर गौडाद्या सूतवंशसमुद्भवाः ॥ १४ ॥

कङ्कान कनवाराश्च मोरभंजास्तु वैश्यकाः ।
सेंगराख्या सोनगृहावत्सा ब्राह्मणवंशजाः ॥ १५ ॥

भरां भद्रा भार्गवाश्च मुण्डिता नाकुलन्धराः ।
एवमन्येपि बहुशो क्षत्रियत्वं समाश्रिताः ॥ १६ ॥
नागवंशोद्भवा दिव्याः क्षत्रिया स्समुदाहृताः ।
ब्रह्मवंशोद्भवाश्चान्ये तथाऽरूद्वंशसम्भवाः ॥ १७ ॥
एतेषु भविता ह्येको महात्मा विगतज्वरः ।
उदासीनः कुलगुरुः कलौ सार्द्धे चतुर्गते ॥ १८ ॥
इत्येतत् कथितं तात क्षत्रियाणां विनाशनं ।
पालनं चापि मद्रेषु किं मन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १९ ॥
इति पूर्व्वभविष्ये एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।
श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र महाशयेषु सविनय निवेदनम् ।

खत्री के उत्पत्ति विषय में मेरे मित्र पंडित चराडीप्रसाद जी वर्णन करते हैं कि जब परशुराम श्री दशरथ जी के समय में क्षत्रियों को मारते थे तौ वे सब खत्री कहि के बचि गये। तब से वे खत्री कहलाये अद्यावधि उसी नाम से प्रकट हैं। कोई कहते हैं कि (ख) आकाशनिवासी (त्रि) तीन ऋषियों के सन्तान हैं अतएव खत्री शब्द से प्रसिद्ध हैं। और जो परशुराम जी को शिरोनमन पूर्वक प्रणाम करि बद्धांजलि हो गये तब तो परशुराम जी ने प्रसन्न हो कर कहा, धन्य हौ तुम निर्भय रहो क्योंकि तुम अरुट् हो अर्थात् क्रोध बिना हौ सोई अब अरोड़ा कहलाते हैं। और मेरे मित्र पंडित गोकुलचन्द्र जी के पास एक पुस्तक थी। तिस में लिखा है कि लव जी के वंश में एक राजा थे तिन्ह के दो स्त्री थीं जो कि छोटी थीं वह राजा को परम प्यारी थी जो दूसरी बड़ी थी उस में कुछ रुचि कम थी एक एक पुत्र दोनों में प्रकट भये। छोटी स्त्री ने स्वामी से कहा कि राज्य मेरे पुत्र को देवो। राजा ने न माना अंत में मंत्री को भी उस राणी ने स्ववशवर्ति करि के कहवाया कि छोटे को राज्य देना चाहिये। मंत्रियों ने कहा कि राजन ! एक को समस्त धन दे दो। एक को केवल राज्य दे दो। सुनि के राजा ने बड़े पुत्र को समस्त धन दे दिया। छोटे पुत्र को स्वकीय राज्य दे दिया। छोटे पुत्र ने राज्य पाय के बड़े भ्राता से कहा कि तुम मेरे देश तें निकल जावो, तब तो वह तिलाचार होकर मूलत्राण नगर अर्थात् मुलतान के पास में चला आया। और उस के और २ जातियों के मित्र जो थे वे भी चलि आये तब तो उसने कहा कि हम सब एक जाति कहलावैं और एक अपने नाम पर ग्राम बसावैं जहां हमारी जाती सब सुखपूर्वक निवास करें। इस सलाह को सब ने माना तब उस राजकुमार ने सब को कहा कि हम सब रुट् (कोप) कभी करैं नहीं आपस में अतएव अरुट् हमारा नाम हुआ। सब ने

प्रसन्न होके माना। परंच जो जो पुरुष आये थे उनके नाम से अरुट् में भी कई जाति हो गई सो सब इस पंचनद देश में विस्तृत हैं। उसी समय उस राजकुमार ने उक्त नगर के निकट में एक अरुट् कोट नाम ग्राम बनवाय कर निवास किया जिस को आज काल आरोड़कोट कहते हैं। वह ग्राम अरोड़ों का पूर्व निवास भूमि है। आज काल भी कई एक पुरुष उसी स्थान में जाय के विवाहादि करि आते हैं। जिन्हों को इस देश में कन्या नहीं मिलती है। अब देश प्रभाव से उस देश के लोक आचार से हीन होते हैं दूसरे गदहा को अनेकही पुरुष रखते हैं उसपर निःसंक सवार भी हो जाते हैं अतएव नीच गिने जाते हैं नहीं तो जाति में अच्छे हैं। जो लघुराजकुमार क्षत्री था उस को इस पांचाल देश के लोगों ने खत्री शब्द से प्रसिद्ध किया क्योंकि जो श्री गुरु अंगद जी ने गुरुमुखी अक्षर बनाये उस में केवल मूर्द्धन्य खकार है और (क्ष) अक्षर नहीं है अतएव देश बोली से सब खत्री कहलाने लगे। सोई रीति अद्यावधि चली आती है। इत्यादि प्रकार से प्रसिद्ध है। जो आकाश निवासी ३ ऋषि हैं उनका नाम १ आकर्ष २ पद्माख्य ३ खर्विंश इत्यादि सुदर्शन संहिता में लिखा है। खर्विंश की सन्तान खत्री कहलाते हैं। यह आख्यायिका उक्त संहिता के द्वादश अध्याय में विदित है। इत्यलम्बहुना।

(शालिग्रामदास)

....

आज कल बहुधा लोग श्रेष्ठ वर्ण बनने के अधिकारी हुये हैं उनमें एक खत्री भी हैं। ये लोग अपने को क्षत्री कहते हैं इस बात को मैं भी मानता हूं कि इनके आद्य पुरुष क्षत्री थे। क्योंकि जो जो कहानियां इस विषय में सुनी गई हैं उस से स्पष्ट मालूम होती है कि वे लोग क्षत्री वंश में हैं।

लोग कहते हैं कि खत्री हयहो वंश के वंश में हैं। सहस्त्रार्जुन से और परशुराम से जब युद्ध ठनी तो परशुराम ने उस वंश के क्षत्रियों को मार डाला और यह प्रतिज्ञा किया कि इस वंश के क्षत्री को निर्वंश कर डालेंगे। यह प्रतिज्ञा सुनकर उस वंश के दूषण कुलकलंक कई एक कायरों ने यह कह कर बच गये कि हम बनियों के बालक हैं। और जब परशुराम जी चले गये तो ये जाकर हयहोवंशियों से कहने लगे कि भाई हम लोग विपत्ति में ऐसा कहकर बच गये यह सुन कर इन सबों ने बहुत प्रकार से धिक्कार दिया और कहा कि रे चांडाल तुम सबों ने यह क्या किया अपनी जननी को कलंक लगाया। हाय! तुम सब क्षत्री कुल में कलंक पैदा हुए। जाओ यहां से भागो दूर हटो न तो अभी शिर काट लेंगे क्या तुम सब हम लोगों के तुल्य हो सकते हो? अपने वंश के लोगों की रक्षा क्या करोगे अपने बाप के माथे पाप चढ़ाये अब हम लोग तुम लोगों के साथ कोई व्यवहार न रक्खेंगे तुम लोगों ने अपने माता पिता को कैसा कलंक लगाया। यह सुनकर वे सब अपनी श्री गवांकर वहां से आके वैश्यों से कहा कि भाई तुम लोग अपनी जाति अर्थात् वैश्य हम लोगों को बनाओ। कारण हम लोग बनियां के बालक कहकर बच गये हैं और अपनी सारी व्यवस्था कह गये। बनियांओं ने भी इस बात को अस्वीकार किया अर्थात् कहा कि आज विपति पड़ने पर तुम लोग बनियां के बालक कहकर बच गये कल विपति पड़ने पर शूद्र के बालक कहोगे इस से हम लोग तुम लोग को वैश्य अर्थात् बनियां न बनावेंगे इस बात को सुनकर ये लोग बड़े विपद में पड़े और आपस में सलाह कर के न क्षत्री न वैश्य एक विचित्र जाति खत्री बन गये।

कोई कोई कहते हैं कि खात नामक राजपूत के वंश में एक वेश्या से इन लोगों की उत्पत्ति है और कोई २ कहते हैं कि नहीं

ये लोग बढ़ई के वंश में हैं अर्थात् बढ़ई को खाति कहते हैं काल प्रभाव से कुछ द्रव्य पाकर वैश्यों के गिनती में होगये। जो हो कोई ऐसा भी कहते हैं कि खेचर नामक राजपूत के वंश में खत्री हैं कोई कहते हैं कि ये लोग त्त्री हई नहीं है क्योंकि परशुरामजी से जो लोग अभय पाये हैं वे लोग वैश्य त्त्री है जो वैश्यवारे में रहते हैं। और खत्रियों की दास की पदवी अब तक प्रचलित है इस से ये लोग शूद्र हैं परन्तु बड़े अपसोस की बात है कि जिनका बाप दास उनके बेटा अपने को त्त्री लिखते हैं ठीक है "श्वार सुत सेर होत निधन कुबेर होत दीनन की फेर होत मेरु होत माटि को"। कोई कहते हैं कि यदि इन के मूल पुरुष त्त्री थे तौ भी ये अब त्त्री नहीं हो सके कारण खानपान बैठब उठब सब त्त्रियों से न्यारी है और मूल्य पुरुष तो पैठान के भी त्त्री हैं क्योंकि प्राथियन से पैठान शब्द बना है और बेणु वंश के कोल भील खेरो आदि हैं तो क्या अब वे त्त्री हो सके कदापि नहीं। कोई कहते हैं कि चीनी लवण आदि का व्यापार करने से ब्राह्मण शूद्र होजाता है तो त्त्री होकर लवणादि बेचे तो क्या रहा इसी भांति से लोग अनेक प्रकार से खत्रियों की उत्पत्ति वा वर्णनिर्णय बतलाते हैं परन्तु मैं इन बातों को छोड़ कर नृपबंशावली से पता देता हूं कि ये लोग त्त्री के वंश में हैं।

दोहा—एक समय वसुधा भई, कामधेनु को रूप।
पुलक गात रोमांच युत, झारि दियो तन कूप। १।
तेहि रोमांच के मूल ते, प्रगटेउ छत्री खानि।
ताको निज निज नाम सभ, बिधिवत कहों बखान। २।
जादव वैश निशेन नृप, खत्री खाति बिजवान।
अगरवार सुरवार भौ, पंचगोतिया नृप जान। ३।
महीदहार कठिहार पुनि, धाकर और सिरमौर।
लकारिहार जनवास पुनि, बड़ गुंजर मड़िमौर। ४।

भद्वरिया प्रगटे बहुरि, काश्यप और सोमवंश ।
मंडवालिया गाहृ सहित, पाछिल भौ अवतंश । ५ ।
कठहरिया उत्पन्न भौ, मलन हांस करिहार ।
पोड पुंडर बुंदेल पुनि, गौरवार भिलवार । ६ ।
हाडा भए नरवनी, छत्री अति रणधीर ।
षङ्ग दान वर्णन करी, विरदावलि अति बीर । ७ ।
सोनकी और जगार भौ, बहुरि तरेढ गरेर ।
ठकुराई सांवत कहौ, खीची और धंधेर । ८ ।
पुनि भौ प्रगट सिहोगिया, छत्री नृपति कुलीन ।
किनवार सिंघेल नृप, कुलपालक अघहीन । ६ ।
पुनि प्रगटेउ महरौठ नृप, कामधेनु ते जानि ।
करचोलिया छत्री भएउ, येहि प्रकार सभ खानि ॥ १० ॥
नागवंशी छत्री भए, गडवरिया सकसेल ।
जाति वंश कुल उत्तम, पुनि प्रगटेउ रकसेल ॥ ११ ॥
अनटैया अगरेढ नृप, कुश भौ नाम निहार ।
अपर वंश कहँ लगि कहौं, भए धेनु औतार ॥ १२ ॥

[शिवराम सिंह]

बादशाहदर्पण

अर्थात्

हिन्दुस्तान के मुसल्मान बादशाहों के समय और जन्म आदिक मुख्य बातों के वर्णन का चक्र।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

क्षत्रियपत्रिकासम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह सङ्कलित.

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.
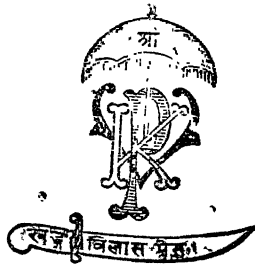
'खड्गविलास' प्रेस, बांकीपुर, पटना.
बाबू रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.
इ० सं० ३२—१९१७.

दूसरी बार।

भूमिका।

रामायण में भगवान् बाल्मीकिजी ने कहा है जो वस्तु हुई हैं नाश होंगी, जो खड़ी हैं गिरैंगी, जो मिले हैं बिछुड़ैंगे, और जो जीते हैं अवश्य मरैंगे। सच है, इस जगत की गति पहिये की आर की भांति है। जो आर अभी ऊपर थी नीचे गई और जो नीचे थी ऊपर हो गई। आधीरात को सूर्य का वह प्रचंड तेज कहां है जो दो पहर को था? दिन को ठंढी किरनों से जी हरा करनेवाला चन्द्रमा कहां है? संसार की यही गति है। जो भारतवर्ष किसी समय में सारी पृथ्वी का मुकुटमणि था, जिस की आन सारा संसार मानता था और जो विद्या वीरता और लक्ष्मी का एक मात्र विश्राम था वह आज हीन दीन हो रहा है—यह भी काल का एक चरित्र है।

जब से यहां का स्वाधीनता सूर्य अस्त हुआ उस के पूर्व समय का उत्तम शृङ्खलावद्ध कोई इतिहास नहीं है। मुसल्मान लेखकों ने जो इतिहास लिखे भी हैं उन में आर्यकीर्त्ति का लोप कर दिया है। आशा है कि कोई माई का लाल ऐसा भी होगा जो बहुत सा परिश्रम स्वीकार कर के एक बेर अपने 'बाप दादों' का पूरा इतिहास लिख कर उन की कीर्त्ति चिरस्थायी करैगा।

इस ग्रन्थ में तो केवल उन्हीं लोगों का चरित्र है जिन्हों ने हम लोगों को गुलाम बनाना आरम्भ किया। इस में उन मस्त हाथियों के छोटे छोटे चित्र हैं जिन्हों ने भारत के लहलहाते हुए कमलबन को उजाड़ कर पैर से कुचल कर छिन्न भिन्न कर दिया। मुहम्मद, महमूद, अलाउद्दीन, अकबर और औरंगज़ेब आदि इन में

प्यारे भोले भाले हिन्दू भाइयो ! अकबर का नाम सुन कर आप लोग चौंकिए मत। यह ऐसा बुद्धिमान शत्रु था कि उस की बुद्धि बल से आज तक आपलोग उस को मित्र समझते हैं। किंतु ऐसा है नहीं। उस की नीति (policy) अङ्गरेज़ों की भांति गूढ़ थी। मूर्ख औरङ्गज़ेब उस को समझा नहीं, नहीं तो आज दिन आधा हिन्दुस्तान मुसल्मान होता। हिन्दू मुसल्मान में खाना पीना व्याह शादी कभी चल गई होती। अंङ्गरेज़ों को भी जो बात नहीं सूझी वह इस को सूझी थी।

यद्यपि उस उर्दू शेर के अनुसार 'बाग़बां आया गुलिस्तां में कि सैयाद आया। जो कोई आया मेरी जान को जल्लाद आया।' क्या मुसल्मान क्या अङ्गरेज़ भारतवर्ष को सभी ने जीता, किन्तु इन में उन में तब भी बड़ा प्रभेद है। मुसल्मानों के काल में शत सहस्र बड़े बड़े दोष थे किन्तु दो गुण थे। प्रथम तो यह कि उन सबों ने अपना घर यहीं बनाया था इस से यहां की लक्ष्मी यहीं रहती थी। दूसरे बीच बीच में जब कोई आग्रही मुसल्मान बादशाह उत्पन्न होते थे तो हिन्दुओं का रक्त भी उष्ण हो जाता था इस से वीरता का संस्कार शेष चला आता था। किसी ने सच कहा कि मुसल्मानी राज्य हैज़े का रोग है और अङ्गरेज़ी क्षयी का। इन की शासनप्रणाली में हमलोगों का धन और वीरता निःशेष होती जाती है। बीच में जाति पक्षपात, मुसल्मानों पर विशेष दृष्टि आदि देख कर लोगों का जी और भी उदास होता है। यद्यपि लिबरल दल से हमलोगों ने बहुत सी आशा बांध रक्खी है पर वह आशा ऐसी है जैसे रोग असाध्य हो जाने पर विषवटी की आशा। जो कुछ हो, मुसल्मानों की भांति इन्हों ने हमारी आंख के सामने हमारी देवमूर्तियां नहीं तोड़ीं और स्त्रियों को बलात्कार से छीन नहीं लिया, न घास की भांति सिर काटे गए और न जबरदस्ती मुंह में थूक कर मुसल्मान किए गए।

अभागे भारत को यही बहुत है। विशेष कर अङ्गरेज़ों से हम लोगों को जैसी शुभ शिक्षा मिली है उस के हम इन के ऋणी हैं। भारत कृतघ्न नहीं है। यह सदा मुक्तकंठ से स्वीकार करैगा कि अङ्गरेज़ों ने मुसलमानों के कठिन दंड से हम को छुड़ाया और यद्यपि अनेक प्रकार से हमारा धन ले गए किन्तु पेट भरने को भीख मांगने की विद्या भी सिखा गए।

मेरे प्रमातामह राय गिरधरलाल साहब जो यावनी विद्या के बड़े भारी पंडित और काशीस्थ दिल्ली के शहज़ादों के मुख्य दीवान थे, उन की इच्छा से दिल्ली के प्रसिद्ध विद्वान सैयद अहमद ने एक ऐसा चक्र बनाया था जिस में तैमूर से ले कर शाहआलम तक सब बादशाहों के नाम आदि लिखे थे। उस फारसी ग्रन्थ से इस में बहुत सी बातैं ली गई हैं इस कारण तैमूर के पूर्व के बादशाहों का वर्णन इतना पूरा नहीं है जितना तैमूर के पीछे है। फिर मेरे मातामह राय खीरोधरलाल ने बहादुरशाह के काल के आरम्भ तक शेष वृत्त संग्रह किया। और और बातैं और स्थानों से एकत्र की गई हैं। इस में परंपरागत बहुत से बादशाहों के नाम हैं जो और इतिहासों में नहीं मिलते।

यद्यपि इस से कुछ विशेष उपकार नहीं है किन्तु हम लोगों का इस से बहुत सा कौतूहल शान्त होगा जब हमलोग इस में बादशाहों की माता आदि के नाम जो अन्य इतिहासों में नहीं है पढ़ैंगे।

नम्बर	नाम बादशाहों का	बाप का नाम	जाति	राज्यपाने का समय	अवस्था	मरने का समय	मृत्यु का कारण	विवरण ।
								इसी चांडाल ने तोड़ा। बड़ा ही क्रूर और उपद्रवी था।
१३	कुतुबुद्दीनमुबारकशाह	अलाउद्दीन	तथा	१३१६	०	१३२१	हिन्दू गुलाम के हाथ मारा गया	बाप की भांति गोतहन्ता और क्रूर था। विशेषता यह थी कि आप विषयी और नीच भी थे। इस के पीछे चार महीने इस के गुलाम खुसरो ख़ां ने सिक्का चलाया।
१४	गयासुद्दीन	०	तुगलक	१३२१	०	१३२५	काठ के मकान के नीचे दब कर मरा	अच्छा था।
१५	फखरुद्दीनमहम्मद तुगलक (अलगू ख़ां)	गयासुद्दीन	तथा	१३२५	०	१३५१	स्वाभाविक	राजा शिवप्रसाद के लिखने के अनुसार बड़ा दाता बड़ा पंडित बड़ा बुद्धिमान बड़ा भाग्यवान बड़ा वीर बड़ा मूर्ख बड़ा क्रूर बड़ा झक्की और बड़ा पागल था।
१६	फ़ीरोजशाह	मुहम्मद	तथा	१३५१	९०	१३८८	तथा	अच्छा था। बहुत से धर्मार्थ काम किए।
१७	गयासुद्दीन	फ़ीरोज शाह	तथा	१३८८	०	१३८९	मारा गया	पांच महीने राज्य किया। मूर्ख था।
१८	अबूब कर	तथा (पोता)	तथा	१३८९	०	०	कैद में मरा	एक वर्ष भी पूरा राज्य न किया।
१९	नासिरुद्दीन मुहम्मद	तथा	तथा	१३९०	०	०	स्वाभाविक	
२०	हुमायूँ सिकन्दर शाह	नासिरुद्दीन	तथा	१३९४	०	१३९४	तथा	केवल ४५ दिन बादशाह था।
२१	नासिरुद्दीन महमूद	सिकन्दर शाह	तथा	१३९४	०	१४१२	तथा	

मुसल्मान राज्यत्व का संक्षिप्त इतिहास।

सन् ५७० में महम्मद का जन्म हुआ। ४० बरस की अवस्था में उन्हों ने मुसलमान धर्म्म का प्रचार किया। सन् ६३२ में इन की मृत्यु हुई। इन के उत्तराधिकारियों में वलीद खलीफ़ा ने अपने भतीजा क़ासिम को ६००० फ़ौज के साथ सिन्धु देश जय करने को भेजा। सिन्धु का राजा दाहिर युद्ध में मारा गया और इस की दो बेटियों के कौशल से क़ासिम को भी वलीद ने मार डाला।

सन् ८१२ में मामूं ने हिन्दुस्थान पर फिर चढ़ाई किया किन्तु चित्तौर के राजा खुमान ने २४ बेर युद्ध कर के उस को भगा दिया।

बुखारा के पांचवें बादशाह अब्दुलमालिक का अलप्तगीन नामक एक गुलाम था जो मालिक के मरने पर बादशाह हुआ। सुबुक्तगीन इस का एक दास था। स्वामीपुत्र के मरने पर यही खुरासान का राजा हुआ और ग़ज़नी को अपनी राजधानी बनाया। सन् ९७० में इस ने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई किया और लाहोर के राजा जैपाल को जीता। सन् ९९९ में इस के मरने के पीछे अपने भाई को क़ैद कर के सुलतान महमूद बादशाह हुआ। सन् १००१ में महमूद ने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई किया और अपने पुराने शत्रु जैपाल को क़ैद कर लिया। सन् १००४ में भटनेर के राजा को जीतने को महमूद की दूसरी चढ़ाई हुई। मुलतान के गवर्नर अबुलफतह लोदी को जीतने को वह तीसरी बेर हिन्दुस्तान में आया (१००५ ई०)। चौथी चढ़ाई इस ने जयपाल के पुत्र आनन्दपाल के जीतने को की। आनन्दपाल भी असंख्य हिन्द

सैन्य ले कर उस से भिड़ा, किन्तु ठीक युद्ध के समय उस के हाथी के बिचलने से वह लड़ाई भी महमूद जीता और नगरकोट लूट कर भारतवर्ष को अनन्त लक्ष्मी ले गया। इस में २० मन तो केवल जवाहिर था (१००८ ई०)। अबुलफतह के बागी होने से मुलतान पर उस की पांचवीं चढ़ाई हुई (१०१०)। छठीं बेर उस ने थानेश्वर लूटा (सन् १०११)। सातवीं और आठवीं चढ़ाई इस ने सन् १०१३ और १०१४ में कश्मीर पर किया, किन्तु वहां के राजा संग्रामदेव ने इस को हटा दिया। नवीं बार यह सन् १०१७ में बड़ी धूम से कन्नौज पर चढ़ा, किन्तु कन्नौज के राजा के दासत्व स्वीकार करने से मथुरा नाश करता हुआ लौट गया। १० वीं चढ़ाई इस की सन् १०२२ में कालिंजर पर हुई और उसी बरस ११ वीं चढ़ाई इस की फिर लाहौर पर हुई। १२ वीं बेर गुजरात पर चढ़ाई कर के सन् १०२४ में सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर तोड़ा। इस के पीछे वह हिन्दुस्तान में नहीं आया और सन् १०३० में मर गया। इस के वंश वालों का हिन्दुस्तान में केवल पंजाब पर कुछ अधिकार रहा।

ग़ज़नी राज्य निर्बल होने पर जगतदाहक अलाउद्दीन गोरी ने ग़ज़नी के अन्तिम राजा बहराम को मार कर अपने को बादशाह बनाया और कुछ दिन पीछे उस के भतीजे शहाबुद्दीन महम्मद गोरी ने बहराम के पोते को मार कर ग़ज़नी के राज्य का नाम भी शेष नहीं रक्खा। यही महम्मद हिन्दुस्थान में मुसल्मानों के राज्य का मूल है। इस ने सन् ११७६ से लेकर १६ बरस तक कई बेर हिन्दुस्थान पर चढ़ाई किया किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। कन्नौज के राजा जयचन्द के बहकाने से इस ने सन् ११९१ में दिल्ली के चौहान राजा पृथ्वीराज पर बड़ी धूम से चढ़ाई किया था, किन्तु तरौरी नामक स्थान में घोर युद्ध के पीछे पृथ्वी-राज से हार कर वह अपने देश को लौट गया। सन् ११९३ में

वह बड़ी धूम और कौशल से फिर दिल्ली पर चढ़ा। हिन्दुओं की सेना भी बड़ी धूम से इस के मुक़ाबिले को बाहर निकली। चित्तौर के समर सिंह इस सेना के सेनापति थे। युद्ध के डेरे पड़ने पर सुलह की बातचीत होने लगी। शहाबुद्दीन ने कहा हम ने अपने भाई को सब वृत्तान्त लिखा है, उत्तर आने तक लड़ाई बन्द रहै। हिन्दू सेना इस बात पर विश्वास कर के शिथिल हो गई थी कि धोखा देकर एकाएक शहाबुद्दीन ने लड़ाई आरम्भ की। बहुत से हिन्दू बीर मारे गए। समरसिंह भी बीर गति को गए। पृथ्वीराज और उन के कवि चन्द को क़ैद कर के ग़ज़नी भेज दिया। कहते हैं कि शब्दभेदी बान से अन्धे होने की अवस्था में एक दिन पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन के भाई ग़यासुद्दीन का प्राण विनाश किया और उसी समय पूर्व संकेतानुसार चन्द कवि ने उन को मारा और उन्हों ने चन्द * को। भारतवर्ष से हिन्दुओं के स्वाधीनता का सूर्य सदा के हेतु अस्त हो गया। पीछे शहाबुद्दीन ने कन्नौज का राज भी ले लिया और बनारस को भी ध्वंस किया।

भाई के मरने पर शहाबुद्दीन सन् १२०२ में पूरा बादशाह हुआ, किन्तु आठ बरस भी राज्य करने नहीं पाया था कि बदमाशों के हाथ से (१२१०) मारा गया। उस समय हिन्दुस्तान उस के दास कुतबुद्दीन ऐबक के हाथ में था क्योंकि इसी को वह यहां का प्रबन्ध सौंप गया था। यों भारतवर्ष के राजेश्वरों का राज्य एक दास के आधीन हुआ।

कुतबुद्दीन ऐबक को शहाबुद्दीन के भतीजे महमूद गोरी ने बादशाह का ख़िताब भेज दिया और तब से हिन्दुस्थान का राज्य निष्कण्टक इस के अधिकार में आया। चार बरस राज्य कर के

---

* चन्द की उक्ति=' अब की चढ़ी कमान को जानै फिरि कब चढ़ै।
जिनि चुक्कै चौहान इक्कै मारय इक्क सर॥ '

यह मर गया। इस का पुत्र आरामशाह साल भर भी राज्य करने न पाया था कि इस के बहनोई शमसुद्दीन ने जो पहिले एक गुलाम था इस को सिंहासन से उतार कर मुकुट अपने सिर पर रक्खा। इस के समय में बंगाला मुलतान कच्छ सिन्धु कन्नौज बिहार मालवा और ग्वालियर तक दिल्ली के राज्य में मिल चुका था। इस के मरने के पीछे इस का बेटा रुकुनुद्दीन फीरोज़ बादशाह हुआ किन्तु यह ऐसा नष्ट था कि इस को उतार कर लोगों ने इस की बहिन रज़िया बेगम को बादशाह बनाया। साढ़े तीन बरस राज्य कर के बलवाइयों के हाथ से यह भी मारी गई। इस का भाई मुईजुद्दीन बहराम दो बरस दो महीना बादशाह रहा फिर लोगों ने इस को क़ैद कर के इस के भतीजे अलाउद्दीन मसउद को बादशाह बनाया। किन्तु चार बरस बाद यह भी मारा गया और इस का चाचा नसीरुद्दीन महमूद बादशाह हुआ। अलितमश का दास और दामाद बलबन इस के समय में मन्त्री था और इस ने नरवर और चन्देरी का क़िला तथा ग़ज़नी का राज्य जय किया था। सन् १२६६ में नसीर के मरने पर बलबन बादशाह हुआ और बीस बरस राज कर के ८० बरस की अवस्था में मर गया। इस का पोता कैकुबाद राजा हुआ किन्तु यह ऐसा विषयी था कि दो बरस भी राज्य न करने पाया कि लोगों ने इस को मार डाला और दिल्ली का राज्य गुलामों के वंश से निकल कर खिलजियों के हाथ में आया।

पंजाब से आकर सत्तर वर्ष की अवस्था में जलालुद्दीन खिलजी तख्त पर बैठा। मालवा और उज्जैन उस के समय में विजय हुए। इस के भतीजे अलाउद्दीन ने सन् १२९४ में देवगढ़ भी जीत लिया। किन्तु दुष्ट अलाउद्दीन ने इस विजय के पीछे ही अपने वृद्ध चाचा को प्रयाग में मिलने के समय कटवा दिया और आप बादशाह हुआ। (१२९५) बादशाह होते ही इस ने जलालु

द्दीन के दो लड़के और उस के पक्षपाती कई सर्दारों को क़त्ल किया और फिर बड़ी निर्दयता से गुजरात जीता। अनेक प्रकार के दुखदाई कर प्रचलित किए। १३०० में रणथम्भौर का प्रसिद्ध क़िला एक बरस की लड़ाई में टूटा और शरणागतवत्सल परम बीर हम्मीर * राजा सकुटुम्ब बीरों की गति को गया। १३०३ में इस ने चित्तौर पर चढ़ाई की। राजा रतनसेन से प्रथम मित्रता दिखला कर फिर विश्वासघात कर के उन को बन्दी किया किन्तु रानी पद्मावती अपनी बुद्धि और वीरता से राजा को छुड़ा ले गई। फिर तो क्षत्रियों ने जीवनाशा छोड़ कर बड़ा युद्ध किया और सब के सब बीरगति को गए। छत्रानियां सब चित्ता पर बैठ कर भस्म हो गईं। १३०६ में देवगढ़ के राजा के कर न देने से फिर से उस पर चढ़ाई हुई और क़िला तोड़ा। १३१० में कर्णाटक में द्वार समुद्र के राजा बल्लालदेव को और तैलंग के राजा लक्षधर को जीता। १३११ में विद्रोह के कारण एक दिन में इस ने अपने पन्द्रह हज़ार मुग़ल सिपाही कटवा दिए। यह अति उग्र अभिमानी और निष्ठुर था। इस के मृत्यु के वर्ष १३१६ में देवगढ़ के राजा के जामाता राजा हरपाल ने देवगढ़ और गुजरात को जीत कर स्वतंत्र कर दिया। इस के मरने पर मालिक काफ़ूर नामक एक इस के गुलाम ने जिसे इस ने सर्दार बनाया था इस के दो बड़े बेटों को अन्धा कर दिया और तीसरे मुबारक को अन्धा करते समय आप ही मारा गया। कुतुबुद्दीन मुबारक

---

* मीर मुहम्मदशाह मंगोल नामक एक सर्दार पर अपनी एक उपपत्नी से व्यभिचार के सन्देह से अलाउद्दीन ने क्रोध करके उस के बध की आज्ञा दी थी। वह हम्मीर की शरण गया बादशाह ने हम्मीर से मंगोल को मांगा किन्तु धीर वीर हम्मीर ने अपने शरणागत को नहीं दिया इसी पर अलाउद्दीन चढ़ दौड़ा राजा हम्मीर के विषय में यह दोहा जगतप्रसिद्ध है, सिंह सुवन सुपुरुष बयन, कदलि फलै इक बार। तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार॥

ने बादशाह हो कर (१३१७) अपने छोटे भाई को अन्धा किया और बहुत से सर्दारों को मार डाला। यह अति विषयी और मूर्ख था। इस के एक हिन्दू गुलाम ने जिस का मुसल्मान होने पर खुसरो नाम हुआ था १३१६ में मलाबार जीता और १३२० में मुबारक को सकुटुम्ब काट कर आप राज पर बैठा। दिल्ली में चार महीने तक इस का सिक्का चलता रहा। इस के समय में हिन्दुओं ने मुसल्मान सर्दारों की स्त्रियों को दासी और वेश्या बनाया मसाजिदों में मूरतें बिठा दीं और कुरान की चौकी बना कर उस पर बैठते थे। यह उपद्रव सुन कर पंजाब का सूबेदार ग़ाज़ी खां सेना लेकर दिल्ली में आया और खुसरो को मार कर आप बादशाह बना।

ग़ाज़ी खां ने बादशाह होकर अपना नाम गयासुद्दीन तुग़लक़ रक्खा (१३२१) इस का बाप बलवन का गुलाम था। बीडर और वारंगोला जीता। तुग़लक़ाबाद का क़िला बनाया। तिरहुत जीत कर जब लौटा, तो नगर के बाहर इस के बेटे जूना ने एक काठ का नाचघर जो इस के लौटने के आनन्द में बनाया था उस के नीचे दब कर मर गया। (१३२५) जूनाखां ने गद्दी पर बैठ कर अपना नाम मुहम्मद तुग़लक़ रक्खा। (१३२५) इसका प्रकृत नाम फ़ख़रुद्दीन अलगखां था। पहिले यह बड़ा बुद्धिमान और बड़ा दानी था। हज़ार दर का महल बनाया। मुग़लों से सुलह किया। और दक्षिण में अपना अधिकार फैलाया। पर पीछे से ऐसे काम किये कि लोग उसे पागल समझने लगे। हुकुम दिया कि दिल्ली की प्रजा मात्र दिल्ली छोड़ कर देवगढ़ में रहै, जिसको दक्षिण में दौलताबाद नाम से बसाया था। इस का फल यह हुआ कि देवगढ़ तो न बसी किन्तु दिल्ली उजड़ गई। अन्त में फिर दिल्ली लौट आया। फारस और खुरासान जीतने के लिये तीन लाख सतरह हज़ार सवार इकट्ठे किए, इन में से एक लाख

को चीन लेने के लिये भेजा, ये सब के सब हिमालय में नष्ट हो गये, कोई न बचा। बहुत से कर प्रचलित किये। लोग शहर छोड़ कर जंगलों में भाग गये पर वहां भी पीछा न छोड़ा और जानवरों की भांति उन लोगों का शिकार किया गया। काग़ज़ का सिक्का चलाया। बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। लाखों मनुष्य मरे। चारो ओर विद्रोह हो गया। बंगाल और तैलंग स्वाधीन हो गये। मालवा पंजाब और गुजरातवाले विद्रोही हो गये। कर्नाटक में विजयपुर नाम का एक नया राज्य हो गया, हुसैन बामनी ने मध्यप्रदेश में एक नया राज्य बनाया। अन्त में विद्रोह शान्ति के लिये स्वयं सब जगह घूमा किन्तु मालवा और पंजाब छोड़ कर कहीं शांत न हुआ, रास्ते में सिन्धु के पास ठट्ठा में इसकी मृत्यु हुई (१३५१)। मुहम्मद का भाई फ़िरोज़शाह बादशाह हुआ (१३५१)। इस ने स्थान स्थान पर हम्माम, चिकित्सालय, सराय, पुल, तालाव, पाठशाले और सुन्दर महल बनवाये थे। कर्नाल से हांसी हिसार तक जमुनाजी नहर निकाली। इस ने अपने को अति वृद्ध समझ कर नसीरुद्दीन को राज्य दिया किन्तु इस के दो बरस पीछे नसीरुद्दीन के दो भाइयों ने बलवा करके इस को निकाल दिया और फ़िरोज़ शाह के पोते गयासुद्दीन को तख्त पर बैठाया। १३८८ में नब्बे बरस की अवस्था में फ़िरोज़ मरा, और उस के पांच ही महीने बाद १३८८ में इन्हीं बलवाइयों ने गयासुद्दीन को भी मार डाला और उस के भाई अबूबकर को बादशाह किया। अबूबकर साल भर भी राज्य नहीं करने पाया था कि नसीरुद्दीन उस को जीत कर आप बादशाह बन बैठा। चार बरस राज्य करके यह मर गया और इस का बड़ा बेटा हुमायूं अपने को सिकदर शाह प्रसिद्ध करके बादशाह हुआ। वह केवल ४५ दिन जीआ और इसी के पीछे इस का छोटा भाई महमूद तुग़लक़ बादशाह हुआ (१३९४)। इस का अवस्था छोटी

होने के कारण राज्य में चारों ओर अप्रबंध हो गया और गुज़रात मालवा, और खांदेश के सूबे स्वतंत्र हो गये और वज़ीर बिगड़ कर जौनपुर का स्वतंत्र राजा बन बैठा। इसी समय अमीर तैमूर-लंग जो कि परमेश्वर की मानो मूर्त्तिमयी संहारशक्ति थी बहुत से तातारियों को लेकर हिन्दुस्तान में आया (१३९८)। यह लंगड़ा था। इस के नाम तैमूर साहबाकिरां और गोरकां थे और जगद्दाहक चंगेज़ खां के वंश में था। पंजाब के रास्ते में भटनेर इत्यादि जितने नगर या गांव मिले उनको प्रलय की तरह लूटता और जलाता हुआ दिल्ली को भी खूब लूटा और जलाया। लाख मनुष्य जो रास्ते में पकड़ गये थे क़तल किये गये। १५ बरस से छोटे लड़के गुलामी के लिये नहीं मारे गये। महमूद गुजरात में भाग गया और तैमूर के नाम का खुतबा गढ़ा गया। सन् १३९९ में मेरट लूटता हुआ यह अपने देश चला गया। महमूद फिर आया और ६ बरस राज्य कर के मर गया। और दौलत खां लोदी ने १५ महीने तक राज्य किया। तैमूर के सूबेदार ख़िज्र खां सैयद ने इस से राज्य छीन लिया। सैयद अहमद ने अपने जामेजम नामक चक्र में नसीरुद्दीन आदि दो तीन बादशाह और लिखे हैं जो और तवारीखों में नहीं हैं। १४१४ से १४२१ तक ख़िज़्र खां बादशाह रहा और उस के मरने पर उस का बेटा मुबारकशाह बादशाह हुआ। १४३६ में उस के मंत्री अबदुल सैय्यद और सदानन्द खत्री ने उस को मार कर उस के भतीजे मुहम्मद को बादशाह बनाया। १४४४ ई० में इस के मरने पर इस का बेटा अलाउद्दीन बादशाह हुआ। उस समय की बादशाहत नाम मात्र को थी। १४५० ई० में बहलूल लोदी ने पंजाब से आकर तख़्त छीन लिया और अला-उद्दीन बदाऊं चला गया।

बहलूल के बादशाह होने से पंजाब दिल्ली में मिल गया। जौनपुर-वालों से छब्बीस बरस तक लड़कर उस ने वह बादशाहत भी

दिल्ली में मिलाली। १४८८ म इस के मरने पर इस का बेटा सिकंदर बादशाह हुआ। इस ने हिन्दुओं को अनेक कष्ट दिए। तीर्थ बंद कर दिए। पोर्चुगीज़ लोग पहले पहल इसी के काल में यहां आए। १५१६ में इस के मरने पर इस का बेटा इबराहीम बादशाह हुआ। यह ऐसा नीच और दुष्ट और अभिमानी था कि सब सूबेदार इस से फिर गए। पंजाब का सूबेदार सिकंदर लोदी जो इस का गोती था इस से ऐसा दुखी हुआ कि इस ने काबुल के बादशाह बाबर जो तैमूर से छठीं पुश्त में था उस को अपनी सहायता को बुलाया। बाबर ने आतेही पहले सिकन्दर ही का राज नाश किया, फिर १५२६ में पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध में इबराहीम को जीत कर आप हिन्दुस्तान का बादशाह हुआ।

बाबर ने बड़ी सावधानी से राज्य करना आरम्भ किया। दिल्ली के अधीनस्थ जो सूबे फिर गये थे सब जीते गए। १५२७ में मेवार के राजा संग्राम सिंह ने बहुत से देश जीत लिए थे, इस से कई बेर इन से घोर संग्राम हुआ, १४२८ में चन्देरी का क़िला टूटा। सब राजपूत बड़ी वीरता से खेत रहे। इसी साल राणा संग्राम सिंह ने रंतभंवर का क़िला ले लिया। १५२६ में बिहार, लाहोर, बंगाल आदि में अफ़गानों को बाबर ने पराजित किया। १५३० सन् में २६ दिसम्बर को बाबर की मृत्यु हुई। कहते हैं कि हुमायूं बहुत बीमार हो गया था। बाबर ने इस बात का इतना शोच किया कि आप ही बीमार होकर मर गया। बाबर में कई गुण सराहने के योग्य थे। हुमायूं ने राज्य पर बैठ कर अपने तीनों भाई कामरान्, हिन्दाल और अस्करी को यथाक्रम काबुल, सम्भल और मेवार का देश दिया। पहले जौनपुर का विद्रोह निवारण करके फिर वह गुजरात पर चढ़ा और वहां के बादशाह बहादुर शाह को बड़ी बहादुरी से जीत लिया। १५३७ में शेरशाह ने बंगाला जीत लिया और जब इधर हुमायूं शेरशाह

से लड़ने को आया तो बहादुर शाह फिर स्वतंत्र हो गया। शेरशाह पहले बाबर का एक सैनाध्यक्ष था। हुमायूं ने पहले तो चुनार शेरशाह से जीता, किन्तु पीछे शेरशाह ने विश्वासघात करके रोहतासगढ़ के राजा को मार कर उस के किले में अपना परिवार रख कर हुमायूं पर एकबारगी ऐसा धावा किया कि बनारस और कन्नौज तक जीत लिया। १५३६ में फिर एक बेर शेरशाह ने हुमायूं का पीछा किया और गंगा में कूद कर हुमायूं ने अपने को बचाया। सन् चालीस में फिर हुमायूं शेरशाह से हारा और गंगा में तैर कर किसी तरह फिर बच गया। दिल्ली पहुंच कर अपना परिवार लेकर वह लाहौर गया, किन्तु वहां भी शेरशाह ने पीछा न छोड़ा, इस से वह सिन्ध होता हुआ राजपुताने में आया। यहीं इसी आपत्ति के समय अमरकोट में १५४२ में अकबर का जन्म हुआ। डेढ़ बरस अमरकोट के राजा के आश्रय में रह कर हुमायूं ईरान में चला गया और वहां के बादशाह की सहायता से वहीं रहने लगा।

शेरशाह ने (१५४०) हुमायूं के अधीनस्थ सब राज्य अधिकार करके रायसेन, माड़वार और मालवा जीता। (१५४५) चित्तौर जीतने का दृढ़ संकल्प करके मार्ग में कालिंजर का क़िला घेरे हुए पड़ा था कि रात को मेगज़ीन में आग लगने से झुलस कर प्राण त्याग किया। यह बड़ा धीर और बुद्धिमान् था। घोड़े की डांक, राजस्वकर, सराय, तहसीलदार आदि कई नियम उस ने उत्तम बांधे थे। बंगाले से मुलतान तक एक राजमार्ग इस ने बनवाया था। इस के मरने पर इस का छोटा बेटा जलालखां सलीमशाहसूर नाम रख कर बादशाह हुआ। १५५३ में इस के मरने पर इस के बेटे फिरोज़शाह को मार कर इस का साला मुहम्मदशाह अदली बादशाह हुआ। यह राज्य का सब भार हेमूं नामक एक बनिये के ऊपर छोड़ कर आप अति विषय में प्रवृत्त

हुआ। चारो ओर बलवा हो गया। इसी वंश के इबराहीम सूर ने दिल्ली, आगरा, सिकंदर सूर ने पंजाब और मुहम्मद सूर ने बंगाला जीत लिया। हुमायूं, जो हिन्दुस्तान जीतने का अवसर देख ही रहा था, इस समय को अनुकूल समझ कर पंद्रह हज़ार सवार ले कर सिन्ध उतर कर हिन्दुस्तान में आया और (१५५५) पंजाब जीतता हुआ दिल्ली में पहुंच कर फिर से भारतवर्ष के सिंहासन पर बैठा। जितने देश अधिकार से निकल गए थे सब जीते गए। किन्तु मृत्यु ने उस को राज भोगने न दिया और एक दिन संध्या को महल की सीढ़ी पर से पैर फिसल कर गिरने से (१५५६) परलोक सिधारा।

इस की मृत्यु पर इस का पुत्र जगद्विख्यात अबुलमुज़फ्फ़र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह साढ़े तेरह बरस की अवस्था में बादशाह हुआ। बैरम खां खानखाना राज्य का प्रबन्ध करता था। बदख़शां के बादशाह सुलैमान शाह ने काबुल दख़ल कर लिया है, यह सुन कर बैरम अकबर को ले कर पंजाब के मार्ग से काबुल गया। इधर हेमूं * बनियां ने तीस हजार सैन्य ले कर दिल्ली और आगरा जीत लिया और पंजाब की ओर अकबर के जीतने को आगे बढ़ा। बैरम खां ने यह सुन कर शीघ्रही दिल्ली को बाग मोड़ी और पानीपत में हेमूं से घोर युद्ध हुआ, जिस में हेमूं मारा गया और बैरम की जीत हुई। इस जय से बैरम को इतना गर्व हो गया कि वह अकबर को तुच्छ समझने लगा। परिणामदर्शी अकबर उस की यह चाल देखकर बहाने से निकल कर दिल्ली चला आया और वहां (१५६०) यह इश्तिहार जारी किया कि सल्तनत का सब काम उस ने अपने हाथ में ले लिया है। बैरम इस बात से खिसिया कर बाग़ी हुआ, किन्तु बादशाही

* इस का वास्तव में बसन्तराय नाम था। कई तवारीखों में इस की जाति दूसरी लिखी है। किन्तु अगरवालों के भाट इस को अगरवाला कहते हैं।

फ़ौज से हार कर बादशाह की शरण में आया। अकबर ने उस के सब अपराध क्षमा किए और भारी पिनशन नियत कर दी। किन्तु बैरम को उसी वर्ष मक्का जाती समय मार्ग में एक पठान ने मार डाला। इसी बैरम का पुत्र अबदुलरहीम खां खानखाना संस्कृत और हिन्दी भाषा का बड़ा पंडित और कवि हुआ है। यों अट्ठारह बरस की अवस्था में अकबर इतने बड़े राज्य का स्वतंत्र कर्त्ता हुआ। इस ने अपनी परंपारगामिनी बुद्धि से यह बात सोच लिया कि बिना हिन्दुओं का जी हाथ में लिए उस की राज्यश्री स्थिर नहीं रह सकती। इस ने हिन्दू मुसल्मान दोनों को बड़े बड़े काम दिए। योधपुर और जयपुर के राजाओं की बेटियों से ब्याह किया। मत का आग्रह छोड़ दिया। यहां तक कि कई हिन्दुओं के तोड़े हुए मन्दिर इस ने फिर से बनवा दिए। लखनऊ, जौनपुर, ग्वालियर, अजमेर इत्यादि इस के राज्य के आरम्भ ही में इस के आधीन हो गए थे। १५६१ में मालवा भी, जो अब तक राजा बाजबहादुर के अधिकार में था, इस के सेनापति ने जीत लिया। राजा के पहले ही पकड़ जाने पर उस की रानी दुर्गावती बड़ी शूरता से लड़ी। दो बेर बादशाही फौज को इस ने भगा दिया, किन्तु तीसरी लड़ाई में जब हार गई तो आत्मघात कर के मर गई। इस पवित्र स्त्री का चरित्र अब तक बुंदेलखंड में गाया जाता है। अकबर ने बाजबहादुर को अपना निज मुसाहिब बना कर अपने पास रक्खा। १५६८ में अकबर ने चित्तौर का क़िला घेरा। राणा उदयसिंह पहाड़ों में चले गए, किन्तु उन के परम प्रसिद्ध बीर जयमल्ल नामक सैनाध्यक्ष ने दुर्ग की बड़ी सावधानी से रक्षा किया। एक रात जयमल्ल क़िले के बुर्जों की मरम्मत करा रहा था कि अकबर ने दूरबीन से देख कर गोली का ऐसा निशाना मारा कि जयमल्ल गिर पड़ा। इस सैनाध्यक्ष के मरने से क्षत्री लोग ऐसे उदास हुए कि सब बाहर निकल आए।

गए। उस युद्ध में जितने क्षत्री मारे गए उन सब का जनेऊ अकबर ने तौलवाया तो साढ़े चौहत्तर मन हुआ। इसी से चिट्ठियों पर ७४॥ लिखते हैं, अर्थात् जिस के नाम की चिट्ठी है उस के सिवा और कोई खोले तो चित्तौर तोड़ने का पाप हो। यद्यपि चित्तौर का क़िला टूटा किन्तु वह बहुत दिन तक बादशाही अधिकार में नहीं रहा। राणा उदयसिंह के पुत्र राणा प्रतापसिंह सदा सर्वदा लड़भिड़ कर बादशाही सेना को नाश किया करते थे। जहां बरसात आई और नदी नालों से बाहर से आने का मार्ग बन्द हुआ कि वह क्षत्रियों को ले कर उतरे और बादशाही फौज को काटा। मानसिंह का तिरस्कार करने से अकबर की आज्ञा से १५७६ में जहांगीर और महाबत खां के साथ बड़ी सैना लेकर मानसिंह ने राणा पर चढ़ाई की। प्रताप सिंह ने हल्दीघाट नामक स्थान पर बड़ा भारी युद्ध किया, जिस में बाईस हज़ार राजपूत मारे गए। इस पर भी राणा ने हार नहीं माना और सदा लड़ते रहे। अपने बाप के नाम से उदयपुर का नगर भी बसाया और बहुत सा देश भी जीत लिया। १५७३ में गुजरात, ७६ में बंगाला और बिहार, ८६ में कश्मीर, ९२ में सिंध और ९५ में दक्खिन के सब राज्य अकबर ने जीत लिए। अहमदनगर के युद्ध में [१६००] चांद सुल्ताना नामक वहां के बादशाह की चाची ने बड़ी शूरता प्रकाश की थी। इसी समय युवराज सलीम बाग़ी हो गया और इलाहाबाद आदि अपने अधिकार में कर लिया। किन्तु अकबर जब दक्खिन से लौटा तो जहांगीर इस के पास हाज़िर हुआ। अकबर ने अपराध क्षमा करके बंगाला और बिहार इस को दिया। १५८३ में युसुफ़ज़ाइयों की लड़ाई में अकबर के प्रिय सभासद महाराज बीरबल मारे जा चुके थे और अबुलफ़ज़ल को जहांगीर के विद्रोह के समय ऊरछा के राजा ने मार डाला

तथा उस का दूसरा लड़का मुराद भी अति मद्यपान करके मर चुका था। अब (१६०५) में अकबर को उस के तीसरे लड़के दानियाल के भी अति मद्यपान से मर जाने का समाचार पहुंचा। इतने प्रियवर्ग के मर जाने से इस का चित्त ऐसा दुखी हुआ कि बीमार हो कर ६३ वर्ष की अवस्था में आगरे में अकबर ने इस असार संसार को त्याग किया।

अकबर अति बुद्धिमान और परिणामदर्शी था। आलस्य तो इस को छू नहीं गया था। प्रथमावस्था में तो कुछ भोजन पानादि का व्यसन भी था किन्तु अवस्था बढ़ने पर यह बड़ा ही सावधान हो गया था। बरस में तीन महीना मांस नहीं खाता था। आदित्य वार को मांस की दूकानें बन्द रहती थीं। जिजिया नामक कर और प्रत्यक्ष गोहिंसा उस ने उठा दिया था और सती होना भी बन्द कर दिया था। कर का भी बन्दोबस्त अच्छा किया था। महाराज टोडर मल्ल (टण्डन खत्री) अबुलफ़जल, ख़ानख़ाना, मानसिंह, तानसेन गंग, जगन्नाथ पंडितराज और महाराज बीरबल आदि सब प्रकार के चुने हुए मनुष्य इस की सभा में थे। कागज़, हुंडी बही आदि का नियम इन्हीं टोडर मल्ल का बांधा हुआ है। विधवाविवाह के प्रचार में भी इस ने उद्योग किया था और तीर्थों का कर भी छूट गया था। भूमि की उत्पत्ति से तृतीयांश लिया जाता था और पन्द्रह सूबों में राज बंटा हुआ था।

अकबर के मरने पर सलीम नूरुद्दीन जहांगीर के नाम से सिंहासन पर बैठा। इस ने बहुत से कर जो अकबर के समय भी बच गए थे बन्द कर दिये। नाक कान काटने की सजा, बादशाही फौज का जमींदार या प्रजा से रसद लेना और अफीम और मद्य का प्रचार इस ने बन्द कर दिया। महल में एक सोने की जंजीर लटकाई थी कि किसी दीन दुखी की पुकार जो कोई राजपुरुष न सुने तो वह जंजीर हिला दे। जंजीर की घंटी के शब्द पर वह

आप बाहर निकल आता था और न्याय करता था। किन्तु १६०६ में जब उस का लड़का खुसरो पंजाब में बागी हो गया था तब जहांगीर ने उस के सात सौ साथियों को बड़ी निर्दयता से उस के आंख के सामने मरवा डाला। १८१० से चार बरस तक मलिक अम्बर और अहमद से लड़ाई होती रही। १६१४ में खुर्रम (शाहजहां) के साथ एक बड़ी सेना इस ने उदयपुर जीतने को भेजी थी, किन्तु राजा ने मेल कर लिया। १६११ में जहांगीर ने नूरजहां से व्याह किया। नूरजहां का पिता गयासबेग ईरान का एक धनी था किन्तु विपत्ति पड़ने से वह व्यापार को हिन्दुस्तान आता था। मार्ग में नूरजहां का जन्म हुआ। गयास यहां आ कर अकबर के दरबार में भरती हो गया था। उसी समय से जहांगीर की नूरजहां पर दृष्टि थी, किन्तु अकबर के डर के मारे कुछ कर न सका और शेर अफगन नामक एक पठान अमीर के साथ, जिसे अकबर ने बंगाला और बिहार में जागीर दी थी, नूरजहां का व्याह हो गया था। बादशाह होते ही जहांगीर ने बंगाले के सूबेदार को नूरजहां को किसी प्रकार भेज देने को लिखा। शेर अफ़गन बड़ी वीरता से मारा गया और नूरजहां बादशाद के पास भेज दी गई। चार बरस तक जहांगीर ने इस की शुश्रूषा कर के इस के साथ विवाह किया। फिर तो नूरजहां ही सारी बादशाहत करती थी; जहांगीर नाममात्र को बादशाह था। यह स्त्री चतुर भी अतिशय थी। १६२१ में जहांगीर का बड़ा बेटा खुसरो मर गया। परवेज़ मूर्ख था, इस से जहांगीर ने खुर्रम शाहजहां को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा। किन्तु नूरजहां की बेटी जहांगीर के चौथे पुत्र शहरयार को व्याही थी इसलिये नूरजहां ने उसी को बादशाह बनाने की इच्छा से जहांगीर का मन शाहजहां से फेर दिया। पिता का मन फिरा देख शाहजहां बागी हो गया। दक्षिण में और बंगाले में यह बराबर लड़ता रहा और बादशाही फ़ौज इस

का पीछा किए फिरती थी। अन्त में एक अर्ज़ी भेज कर बाप से इस ने अपराध की क्षमा चाही और अपने दो लड़कों को दरबार में भेज कर आप दक्षिण की सूबेदारी पर चला गया। नूरजहां ने एक बेर बंगाले के सूबेदार प्रसिद्ध बीर महाबतखां को हिसाब देने को बुला भेजा। महाबतखां इस आज्ञा से शंकित हो कर आया सही, किन्तु पांच हज़ार चुने हुए राजपूत अपने साथ लाया। इस समय जहांगीर काबुल जाता था। ज्योंहीं झेलम पार इस की सैना उतर चुकी थी कि महाबत खां ने बादशाह और बेगम को घेर कर अपने अधिकार में कर लिया। किन्तु नूरजहां की चालाकी से कुछ दिन पीछे (१६२६) जहांगीर महाबतखां के अधिकार से निकल आया। १६२७ में कश्मीर में जहांगीर ऐसा रोगग्रस्त हुआ कि लाहौर में आकर साठ बरस की अवस्था में मर गया। आसिफ़खां नामक नूरजहां के भाई ने जिस के हाथ में सारा राज्यचक्र था खुसरो के बेटे दाविरबख़्श को नाममात्र बादशाह कर के आप काम काज करने लगा और शाहजहां को दक्खिन से बुला भेजा। शाहजहां के पहुंचने पर आसिफखां ने दाविरबख़्श को मार डाला। कहते हैं कि चौदह महीने यह नाम मात्र को बादशाह था। इंग्लिस्तान के बादशाह जेम्स (१) का एलची सर टामसरो जहांगीर की सभा में आया था।

शाहजहां १६२८ में बड़ी धूमधाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा। डेढ़ करोड़ रुपया उसी दिन व्यय हुआ था। महाबतखां और आसिफ़खां इस के मुख्य मंत्री थे। दिल्ली फिर से बसाई गई। सात करोड़ दस लाख रुपया लगा कर तख़्तेताऊस (मोर का सिंहासन) बनवाया। आगरे में ताजगंज नामक प्रसिद्ध स्थान इसी बादशाह का बनवाया है। नूरजहां जहांगीर के पीछे २० बरस जीती रही और शाहजहां पच्चीस लाख रुपया साल इस को देता था। शाहजहां ने जैसा राज भोगा और सुख किया और

हिन्दुस्तान की बादशाहत को चमकाया, पहले कभी ऐसा किसी और ने नहीं किया था। बत्तीस करोड़ साल इस की आमदनी थी। प्रति वर्ष सालगिरह में डेढ़ करोड़ व्यय होता था। मकानों में सोना और हीरा जड़ा जाता था। इस पर भी मरने के समय यह बयालीस करोड़ रुपया नकद छोड़ गया था। १६३२ में कन्दहार के ईरानी सूबेदार अलीसर्दारखां के शाहजहां से मिलजाने से कन्दहार फिर हिन्दुस्तान के राज्य में मिल गया था, किन्तु इक्कीस बरस पीछे ईरानियों ने फिर जीत लिया। १६४६ में बुखारा भी बादशाह ने जीता। १६४७ में कई बरस की लड़ाई के पीछे दक्षिण में भी शान्ति स्थापन हुई और अबदुल्ला शाह गोलकुंडे के बादशाह से सन्धि हो गई। इसी सन्धि में कोहनूर नामक प्रसिद्ध हीरा बादशाह के हाथ लगा। शाहजहां को चार पुत्र थे। दाराशिकोह, शुजा, औरंगज़ेब और मुराद। दाराशिकोह बड़ा बुद्धिमान, नम्र और उदार था, किन्तु औरंगज़ेब इस के विरुद्ध दीर्घदर्शी और महा छली था। शुजा बीर था, परन्तु अव्यवस्थित था और मुराद चित्त का बड़ा दुर्बल था। १६५७ में शाहजहां बहुत ही अस्वस्थ हो गया। दारा के हाथ में राज का शासन था। औरंगज़ेब ने इस अवसर को उत्तम समझ कर मुराद को बहकाया कि बादिन दारा से बादशाहत तुम ले लो, हम तुम्हारी सहायता करेंगे और तुम को तख़्त पर बैठा कर मक्के चले जायंगे। मुराद दारा से लड़ने चला। औरंगज़ेब भी आगे बढ़ कर उस से मिल गया। १६६२ में बंगाल से शाहशुजा भी फौज ले कर चढ़ा, किन्तु सुलैमांशिकोह (दाराशिकोह के बेटे) से बनारस के पास लड़ाई हार कर फिर बंगाले चला गया। मुराद और औरंगज़ेब इधर यशवन्तसिंह को जीतते हुए आगरे से एक मंज़िल श्यामगढ़ में आ पहुंचे। दारा एक लाख सवार लेकर इन से युद्ध करने को निकला। राजा रामसिंह, राजा रूपसिंह, छत्रसाल आदि कई

राजे उस की सहायता को आए थे और बड़ी वीरता से मारे गए। परमेश्वर को मुसलमानों का राज्य स्थिर नहीं रखना था इस से हाथी विचलने से दारा की फौज भाग गई और औरंगज़ेब ने आगरे में प्रवेश कर के विश्वासघातकता से मुराद को क़ैद कर के १६५८ में अपने को बादशाह बनाया। अन्त में एक दिन मुराद को भी मरवा डाला और सुलैमांशिकोह को भी, जो कश्मीर से पकड़ आया था, मरवा डाला। शुजा लड़ाई हार कर अराकान भागा और वहीं सवंश मारा गया। दारा ने सिंध की राह से अजमेर आकर बीस हज़ार सैना एकत्र कर के औरंगज़ेब पर चढ़ाई किया, किन्तु युद्ध में हार गया और औरंगज़ेब ने बड़ी निर्दयता से उस को मरवा डाला। उस के पुत्र सिपहशिकोह को ग्वालियर के क़िले में क़ैद किया और फिर बहुत से शाहज़ादों को, जिन को बादशाह से दूर का भी संबंध था, कटवा डाला। कहते हैं कि दाराशिकोह बादशाह होता तो लोग अकबर को भी भूल जाते। इस के पीछे शाहजहां सात बरस जिया था।

औरंगज़ेब के राज्य के आरम्भ ही से मुसल्मानी बादशाहत का वास्तविक ह्रास समझना चाहिए। जिज़िया का कर फिर से जारी हुआ। हिन्दुओं के मेले और त्योहार बन्द किए। तीर्थ और देवमन्दिर ध्वंस किए गए। इसी से 'तीन पुश्त की कमाई' स्वरूप हिन्दुओं की जो दिल्ली के बादशाहों से प्रीति थी वह नाश हो गई। इधर दक्षिण में महाराष्ट्रों का उदय हुआ। शिवाजी नामक एक वीर पुरुष ने, जो यादवराव का नाती और मालूजी का पुत्र था, दक्षिण में अपनी स्वतंत्रता का डंका बजाया। पहले विजयपुर के राज में लूट-पाट कर के अपनी सामर्थ्य बढ़ा कर १६६२ में बादशाही देशों को लूटना आरम्भ किया। बादशाही सैन्नाध्यक्ष शाइस्ताखां

ने इन के विरुद्ध आ कर पूने में अपना अधिकार कर लिया। किन्तु असमसाहसी शिवाजी केवल पच्चीस मनुष्य साथ ले कर एक रात उस के डेरे में घुस गए और शाइस्ता बिचारे प्राण ले कर भागे। शिवाजी ने अबकी पूने से ले कर गुजरात तक अपना प्रताप बढ़ाया और तंजौर और मन्दराज जीत कर १६६४ में अपने को राजा प्रसिद्ध किया। औरंगज़ेब शिवाजी के इस साहस से बहुत ही खिसिया गया और जयसिंह के साथ बहुत सी सैना उसे जीतने को भेजी। राजा जयसिंह और शिवाजी से सन्धि हो गई और उस से मरहठे दक्षिण में बादशाही माल-गुज़ारी की चौथ लेने लगे। १६६५ में शिवाजी दिल्ली आए और औरंगज़ेब ने जब इन को नज़रबन्द कर लिया तो कुछ दिन पीछे बड़ी सावधानी से वह दिल्ली से निकल गए। १६६७ में औरंग-ज़ेब ने शिवाजी को राजा की पदवी भेज दी और बीजापुर और गोलकुंडा के बादशाहों से लड़ने को इन को कहला भेजा। शिवाजी इन दोनों बादशाहों से लड़े और अन्त में जब सन्धि हुई तो अपने राज्य का शिवाजी ने सुप्रबन्ध किया। १६६९ में शिवाजी का प्रभुत्व दक्षिण में स्थिर हो गया था, इस से औरंगज़ेब ने क्रोध करके महावत खां को बड़ी सैना के साथ उन को दमन करने को भेजा, किन्तु (१६७०) शिवाजी ने उन को परास्त कर दिया। इसी समय सत्तनामी और सिख नामक दो दल हिन्दुओं के और औरंगज़ेब के विरुद्ध खड़े हुए। १६७८ में जोधपुर के राजा यशवन्त सिंह के सिंधुपार मारे जाने पर उन की स्त्री और पुत्र को निरपराध औरंगज़ेब ने क़ैद करना चाहा। यद्यपि दुर्गादास नामक सैनापति की शूरता से लड़के तो क़ैद नहीं हुए, किन्तु बादशाह की इस बेईमानी से राजपुताना मात्र विरुद्ध हो गया। उदयपुर के राणा राजसिंह, जयपुर के रामसिंह और सभी राजाओं ने बादशाह के विरुद्ध शस्त्र धारण किया। इधर

दुर्गादास ने औरंगज़ेब के लड़के अकबर को बहका कर बागी कर दिया और सत्तर हज़ार सैना लेकर अजमेर में बादशाही सेना से बड़ा युद्ध किया। १६८० में बिरार, खानदेश, विल्लोर, मैसूर आदि देश में अपना अधिकार, यश और प्रताप विस्तार कर के शिवाजी मर गए। शिवाजी का पुत्र शंभुजी राजा हुआ और बादशाह के पुत्र मुअज़्ज़म को जीत कर बहुत देश लूटा, किन्तु एक युद्ध में बादशाही सैना से घिर कर पकड़ा गया और औरंगज़ेब ने उस को मरवा डाला। इधर बीस बरस के रगड़े झगड़े के पीछे गोलकुंडा और बीजापुर भी औरंगज़ेब ने जीत लिया। यद्यपि इस जीत से औरंगज़ेब का गर्व बढ़ गया, किन्तु साथ ही उस का आयुष्य और प्रताप घट गया। दक्षिण की लड़ाई के मारे खज़ाना खाली हो गया। हिन्दुओं का जी अति खट्टा हो गया। अन्त में १७०७ में ८६ वर्ष की अवस्था में औरंगज़ेब मर गया और मुग़लों का सौभाग्य भी उसी के साथ क़ब्र में समाहित हुआ।

औरंगज़ेब के तीन लड़कों में से आज़म और मुअज़्ज़म दोनों ही बादशाह बन बैठे, किन्तु आज़म लड़ाई में मारा गया और कामबख़्श भी दक्खिन में मारा गया, इस से मुअज़्ज़म ही बहादुर शाह के नाम से बादशाह हुआ। इस ने उदयपुर, महाराष्ट्र आदि प्रबल राजों से सन्धि की। सिक्खों ने इस के समय में भी बड़ा उपद्रव किया। बहादुर शाह पांच बरस राज कर के मर गया। इस के पीछे सभी बादशाह बनने लगे और बहुत सा रुधिर बहने के पीछे (१७१२) जहांदार शाह बादशाह हुआ। यह भी साल भर नहीं रहा कि इस का भतीजा फरुख़सियर इस को सपरिवार मार कर आप बादशाह हो गया (१७१३) इस के समय में भाई बन्दा नामक सिख बड़ी धर्मवीरता से मारा गया। १७१६ में सैयद अब्दुल्ला और सैयद हुसैन,

जो इस के मुख्य सहायक थे, इस से बिगड़ गए और फर्रुखसियर मारा गया। सैयदों ने रफ़ीउल्दरजात और रफ़िउलशान को सिंहासन पर बैठाया, किंतु वे चार चार महीने में मर गए। जहांदार और फर्रुखसियर ने इतने शहजादे मार डाले थे कि सैयदों ने बड़ी कठिनता से रौशनअख़तर नामक एक शहजादे को खोज कर क़ैद से निकाला और मुहम्मद शाह के नाम से बादशाह बनाया। (१७१३) विद्रोह चारों ओर फैल गया। १७२० में मालवा और १७२५ में हैदराबाद स्वतंत्र हो गए। सैयद लोग इस के पूर्व ही मारे जा चुके थे। इधर भरतपुर में जाटों ने नया राज स्थापन कर के लूटपाट आरम्भ कर दी। इधर प्रतापशाली बाजीराव पेशवा ने दिल्ली के द्वार तक जीत कर चम्बल के दक्षिण का सब देश अपने अधिकार में मिला लिया। (१७३७) इस के सर्दारों में से हुल्कर ने इंदौर, सेन्धिया ने ग्वालियर, गायकवाड़ ने बड़ोदा और भोंसला ने नागपुर राज्य स्थापन किया। इसी समय ईश्वर के क्रोध का एक पंचम अवतार ईरान का बादशाह नादिरशाह हिन्दुस्तान में आया। करनाल में मुहम्मदशाह ने इस से मुक़ाबिला किया, किन्तु जब हार गया तो नादिरशाह के पास हाज़िर हुआ। नादिर ने इस का बड़ा शिष्टाचार किया। दोनों बादशाह साथ ही दिल्ली आए। उस समय दिल्ली ऐसे निकम्मे और लुच्चे लोगों से भरी हुई थी कि दूसरे ही दिन लोगों ने यह गप्प उड़ा दी कि नादिरशाह मारा गया। बदमाशों ने उस के मनुष्यों को काटना आरम्भ कर दिया। इस बात पर नादिर ने ऐसा क्रोध किया कि सारी दिल्ली को काट देने का हुकुम दिया। डेढ़ पहर तक शाक की भांति लाख मनुष्य के ऊपर काटे गए। अन्त को महम्मदशाह रोता हुआ उस के सामने गया; तब नादिरशाह ने आज्ञा दिया कि काटना बन्द हो जाय। इस की आज्ञा ऐसी मानी

के उस के प्रचार होते ही यदि किसी ने किसी के शरीर में प्राधी तलवार गड़ाई थी तो वहीं से उठा ली—दिल्ली को यों उजाड़ कर के अट्ठावन दिन वहां रह कर सत्तर करोड़ का माल साथ ले कर नादिर अपने मुल्क को लौट गया (१७३९)। कुछ दिन पीछे उस के देशवालों ने नादिरशाह को मार डाला और अहमदशाह नामक उस का एक सैन्याध्यक्ष कन्दहार, बलख़, सिन्ध और कश्मीर का बादशाह बन बैठा। लाहौर लेते हुए (१७४७) हिन्दुस्थान में भी उस ने प्रवेश करना चाहा, किन्तु मुहम्मद शाह का पुत्र अहमद शाह ने सरहिन्द में युद्ध करके उस को पीछे हटा दिया, इस के पूर्व (१७४०) बाजी राव मर गए थे, किन्तु उन के पुत्र बालाजी राव ने मालवा ले लिया था। १७४८ में मुहम्मद शाह मर गया। यह अति रागरंगप्रिय और विषयी था। इस का पुत्र अहम्मद शाह बादशाह हुआ। इस के समय में रुहेलों ने बड़ा उपद्रव उठाया था। किन्तु मरहट्टों ने इन का दमन किया। १७५४ में ग़ाज़ियुद्दीन ने अहमद शाह को अन्धा और क़ैद कर के जहांदारशाह के एक लड़के को तख़्त पर बैठाया और आलमगीर सानी उस का नाम रक्खा। ग़ाज़ियुद्दीन ने अहमदशाह दुर्रानी के पंजाब के सूबेदार की मां को क़ैद कर लिया था। इस बात से अहमदशाह ने ऐसा क्रोध किया कि बड़ी भारी सेना लेकर सीधा दिल्ली पर चढ़ दौड़ा। ग़ाज़ियुद्दीन बड़ी दीनता से उस के पास हाज़िर हुआ, किन्तु वह बिना कुछ लिए कब जाता था। (१७५५) अहमदाबाद और मथुरा लूटी और काटी गई। दिल्ली और लखनऊ के लोगों से भी रुपया वसूल किया गया। अन्त में नजीबुद्दौला को दिल्ली का प्रधान मन्त्री बना कर अपने देश को लौट गया। ग़ाज़ियुद्दीन ने मरहट्टों से सहायता चाही और पेशवा का भाई रघुनाथ राव दिल्ली पर चढ़ आया। नजीबुद्दौला भाग गया और ग़ाज़ियुद्दीन फिर वज़ीर हुआ। इधर मरहट्टों ने अहमदशाह

दुर्रानी के लड़के तैमूर को पंजाब से निकाल कर वह देश भी अधिकार में कर लिया, अर्थात् अब मरहट्टे सारे भारतवर्ष के अधिकारी हो गए। इसी समय ग़ाज़ियुद्दीन ने बादशाह को मार डाला और आप दिल्ली छोड़ कर भाग गया। अहमदशाह दुर्रानी इस बात से ऐसा क्रोधित हुआ कि बहुत बड़ी सेना ले कर फिर हिन्दुस्तान में आया। पेशवा ने यह सुन कर अपने भतीजे सदाशिवराव भाऊ के साथ तीन लाख सेना और अपने पुत्र विश्वास राव को उस से युद्ध करने को भेजा। मरहट्टों ने पहले दिल्ली को लूटा, फिर पानीपत के पास डेरा डाला। पहले कुछ सुलह की बातचीत हुई थी, किन्तु अन्त को ६ जनवरी १७६१ को दोनों दल में घोर युद्ध हुआ, जिस में दो लाख से ऊपर मरहट्टे मारे गए और अहमदशाह की जय हुई। इस हार से मरहट्टों का उत्साह, बल, प्रताप, सभी नष्ट हो गये और साथ ही मुग़लों का राज्य भी अस्त हो गया। शुजाउद्दौला ने आलमगीर के बेटे अलीगौहर को शाहआलम के नाम से बादशाह बनाया (१७६१)। यह दस बरस तक तो पहले नजीबुद्दौला के डर से इलाहाबाद में पड़ा रहा, फिर उस के मरने पर मरहट्टों की सहायता से दिल्ली में गया। थोड़े ही दिन पीछे गुलामक़ादिर नामक नजीबुद्दौला के पोते ने दिल्ली लूट कर बादशाह को पृथ्वी पर पटक कर छाती पर चढ़ कर कटार से आंख निकाल ली और हाथ बांध कर वहीं छोड़ दिया। महाजी सेन्धिया यह सुन कर दिल्ली में आया और गुलामक़ादिर को पकड़ कर बड़ी दुर्दशा से मारा और अन्धे शाहआलम को फिर से तख़्त पर बैठाया। चारो ओर उपद्रव था। १८०३ में लार्ड लेक ने अङ्गरेज़ी सेना ले कर दिल्ली को मरहट्टों के हाथ से लिया और शाहआलम को पिन्शन नियत कर दी। शाहआलम को सानी और उस को बहादुरशाह हुए। ये लोग

लाख की जागीर और पिन्शन भोगते रहे। अन्त को वह भी न रही। यों मुसल्मानों का प्रतापसूर्य आठ सौ बरस तप कर अस्ताचल को गया।

कनकपात्र रत नगजटित, फेंकत जौन उगार।
तिन की आजु समाधि पर, मूतत स्वान सियार॥
जे सूरज सों बढ़ि तपे, गरजे सिंह समान।
भुज बल विक्रम धारि निज, जीत्यो सकल जहान॥
तिन की आजु समाधि पैं, बैठ्यो पूछत काक।
'को' हौ तुम अब 'का' भए, 'कहां' गए करि साक॥

॥ इति ॥

ग्रन्थ का उपष्टम्भक।

अकबर ने काश्मीर में हिन्दुओं के हेतु एक मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था, क्योंकि उस को मुसलमान लोग तोड़ डाला करते थे। और उस पर उस की एक आज्ञा भी खुदी हुई है, जो यहां प्रकाशित होती है। इस से लोग उस का चित्त देखें।

کتابہ ابوالفضل بر لوح سنگ کلیسائے کشمیر کہ بموجب حکم اکبر تعمیر یافتہ بود و انرا اورنگزیب عالمگیر غازي مسمار ساخت * الہي بہر کجا کہ مینگرم جویاے توانہ و بہر زبان کہ میشنوم گویاے توانہ * شعر * کفر و اسلام در رہش پویان * وحدہ لاشریک لہ گویان * اگر مسجدست بہ یاد تو نعرۂ قدوس مے زنند و اگر کلیساست بشوق تو ناقوس مے جنبانند * شعر * گہہ معتکف دیرم و گہہ ساکن مسجد یعني کہ ترا مي طلبم خانہ بخانہ * گرچہ خاصاں ترا بکفر و اسلام کارے نہ پس این ہردو را در پردۂ اسرار تو باري نہ * شعر * کفر کافر را و دین دیندار را * ذرۂ درد دل عطار را * این خانہ کہ بنیت تالیف قلوب موحدان ہندوستان خصوصا معبود پرستان عرصہ کشمیر تعمیر یافتہ * شعر *

بفرمان خدیو تخت و افسر * چراغ آفرینش شاہ اکبر * هرخانه خراب که نظر بر صدق نه انداخته ایں خانه را خراب سازد باید که نخست معبد خود را بر اندازد گرچه نظر بدل است باهمه ساختني ست و اگر چشم بر آب وگل ست همه انداختني ست * شعر * خداوندا چو دارے کار دادي * مدارے کار بر نیت نهادی * توئی بر بارگاه نیت آگاه * به پیش شاه دادي نیت شاه *

हे परमेश्वर! जिस स्थान को देखता हूं वहां सब तेरे ही खोज में हैं और जिस से सुनता हूं तेरी ही बात करते हैं। धर्म्माधर्म्म सब तेरे ही मार्ग में चलते हैं और एक ब्रह्माद्वैत ही का भाषण करते हैं। यदि तेरे बन्दना के स्थान हैं तो वहां तेरे पवित्र नाम की शब्दध्वनि करते हैं और यदि देवस्थान हैं तो वहां सब तेरे ही अभिलाषा में शंखनाद करते हैं। कभी मैं मूर्तिमन्दिर की परिक्रमा करता हूं और कभी तेरे बंदनालय में रहता हूं, अर्थात् तुझी को घर घर ढूंढ़ता हूं। यद्यपि जो लोग तुझ में ही लवलीन हो रहे हैं; उन्हें इस द्वैतता से कुछ प्रयोजन नहीं और इन दोनों को तेरे अंतर भेद में गम्य नहीं। मूर्तिपूजकों को मूर्तिपूजा और बन्दना-वालों को बन्दना किसी प्रकार चित्तरोग की शान्ति है।

यह मन्दिर भारतवर्ष के ब्राह्मद्वैतवादियों के विशेष कर काश्मीर प्रान्त के प्रिय मूर्तिपूजकों के चित्त तोषार्थ सिंहासन और मुकुट के स्वामी साम्राज्य के मणिदीप महाराजाधिराज अकबर की आज्ञा से बनाया गया। जो सत्यानाशी सत्य पर दृष्टि न रखकर इस घर को गिरावेगा वह मानो अपने इष्ट का मन्दिर

ढहावेगा। यदि ईश्वर से सच्चे चित्त से सम्बन्ध है तो सब मत के स्थानों को बनाना चाहिये और मिट्टी पत्थर पर दृष्टि है तो सब को गिराना चाहिये।

हे ईश्वर! तू ही सब कर्म्मों के तत्व का समझनेवाला है और कर्म्मों की मूल मति है और तू ही हम लोगों की अन्तर मति को जानता है और तू ही ने राजा को राजा योग्य मति दी है।

किन्तु इस आज्ञापत्र पर दुष्ट औरंगजेब ने कुछ ध्यान न दिया और अपनी आज्ञा से इसे तोड़वा दिया।

औरंगज़ेब ने एक आज्ञा सन् १०६६ हिजरी में ऐसी प्रचलित की थी कि बनारस में न कोई मन्दिर तोड़े जायं, न हिन्दुओं को दुख दें। १०६८ में विश्वनाथ का मन्दिर उस ने तुड़वाया था, उस के साल भर पीछे न जानैं क्या दया आप के चित्त में आई कि यह आज्ञा प्रचलित की गई, किन्तु यह आज्ञा उस की किसी विशेष युक्ति से शून्य नहीं थी, और यह आज्ञा कार्य में परिणत भी नहीं हुई, क्योंकि १०७७ में इसी काशी में कृत्तबासेश्वर का मन्दिर इसी की आज्ञा से तोड़ा गया था। वहां जो मास्जिद है उस का लेख भी यहां प्रकाशित होता है, इसी से उस के चित्त की कुटिलता स्पष्ट होगी। मन्दिर न तोड़नेवाला असली आज्ञापत्र काशी में महादेव नामक एक ब्राह्मण के पास अद्यापि विद्यमान है।

छोड़े और ब्राह्मणों को निर्विघ्न पाठ पूजा करने दे – (इत्यादि)
१५ जमादिउस्सानी १०६६।

इस के पीछे का कृत्तवासेश्वर की मस्जिद पर का लेख।

زحکم شاہ سلطان شریعت * ذلیل زھد برحاں طریقت
شہاب آسمان سرفرازي * محمد شاہ عالم گیر غازي
سراصنام بتخانه شکسته * ظہور مسجد دلخواه
۱۰

باستصواب نورالهيه مفتي * غلام درگه پیرار چشتي
ثناء خانه زینتست پیدا * زدولتخانه تاریخ هوئیدا
۱۰۷۷ هج

अर्थ—मुसलम धर्म के स्वामी (इत्यादि) औरंगज़ेब बादशाह की आज्ञा से देमन्दिर के देवताओं के सिर तोड़ कर यह मस्जिद बनाई गई (इत्यादि) १०७७ हिजरी।

उदयपुरोदय

अर्थात्

मेवाड़ का पुरावृत्त संग्रह।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

क्षत्रियपत्रिकासम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह सङ्कलित.

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.

'खड्गविलास' प्रेस, बांकीपुर, पटना.

बाबू रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

इ० सं० ३२—१९१७.

दुसरी बार।

उदयपुरोदय।

—०※०—

मेवाड़ का शुद्ध नाम मेदपाट है। और यहां के महाराज की संज्ञा सोसौंधिया है। कहते हैं कि इन के वंश में कोई राजा बड़े धार्म्मिक थे। एक समय वैद्यों ने छल से औषध में मद्य मिला कर उन को पिला दिया, क्योंकि जिस रोग में वे ग्रस्त थे उस की औषधि मद्य ही के साथ दी जाती थी। शरीर स्वच्छ होने पर जब उन्हों ने जाना कि हम ने मद्य पीया था, तो उस के प्रायश्चित्त के हेतु गलता हुआ सीसा पीकर प्राण त्याग किया। तभी से सीसौं-धिया इस वंश की संज्ञा हुई। यही वंश भारतखण्ड में सब से प्राचीन और सब से माननीय है। इसी वंश में महात्मा मांधाता, सगर, दिलीप, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, रघु आदि बड़े बड़े राजा हुए हैं और इसी वंश में भगवान् श्रीरामचन्द्र ने अवतार लिया है। इसी वंश के चरित्र में कालिदास, भवभूति, वरश्च, ब्यास, बाल्मीकि ने भी वह ग्रन्थ बनाए हैं जो अब तक भारतवर्ष के साहित्य के स्तंभूत हैं। हिन्दुस्तान में यही वंश ऐसा बचा है जिस में लोग सत्ययुग से लेकर अब तक बराबर राज्यसिंहासन पर अचल छत्र के नीचे बैठते आए। उदयपुरवाले ही ऐसे हैं जिन्हों ने और और विलायत के बादशाहों की बेटी ली, पर अपनी बेटी मुसलमान को न दी *।

* कहते हैं कि जब औरङ्गज़ेब ने उदयपुर घेर लिया था तब राना साहब

आज हम उसी बड़े पराक्रमशाली प्राचीन वंश का इतिहास लिखने बैठे हैं। इस में हमारे मुख्य सहायक ग्रन्थ टाड साहिब का राजस्थान, उदयपुर के वंशचरित्र के भाषाग्रन्थ और प्राचीन ताम्रपत्र हैं। जैसे संसार के सब राजों के इतिहास प्रारम्भ में अनेक आश्चर्य्य घटना पूरित होते हैं वैसे ही इस के भी प्रारम्भ में अनेक आश्चर्य्य इतिहास हैं। उन से कोई इस के ऐतिहासिक इतिवृत्ति में सन्देह न करै; क्योंकि प्रायः प्राचीन इतिवृत्त अनेक अद्भुत घटना पूर्ण होते हैं और इतिहासवेत्ता लोग उन्हीं चमत्कृत इतिहासों का सारासार निस्सार पूर्वक सारा निर्णय बुद्धि बल से कर लेते हैं।

राज्यस्थान में मेवाड़ और जैसलमेर का राज्य सब से प्राचीन है। आठ सौ बरस से भारतवर्ष में विदेशियों का राज्य प्रारम्भ हुआ, तब से अनेक राज्य बिगड़े और बने पर यह ज्यों का त्यों है। गज़नी के बादशाह लोग सिन्धु नदी का गम्भीर जल पार कर के हिन्दुस्तान में आए। उस समय जहां मेवाड़ के राज्य का सिंहासन था वहीं अब भी है। बहुत से राजा लोग उस राज्य के चारो

खेलते थे और उन को बादशाह की दो बेगम फौज से बिछड़ी जंगल में भटकती हुई मिलीं, जिन को राना ने अपनी बहिन कह के पुकारा और रक्षापूर्व्वक लाकर उन को औरङ्गजेब को सौंप दिया। मुसलमान तवारीख लिखनेवालों ने अपनी क्षति इसी बहाने पूरी की और कहा कि उदयपुरवालों ने बेटी नहीं दी, तो क्या हुआ, बादशाह बेगम को अपनी बहिन बनाया तो सही। वरंच इसी हेतु उस दिन से उन बेगमों का उदयपुरी बेगम लिखा गया। भाषाग्रन्थों में इन बेगमों के नाम रंगी चंगी बेगम लिखे हैं।

ओर, बहुत से वहां से और कहीं जा बसे, पर इन के महल अब भी वहीं खड़े हैं जहां पहले खड़े थे। सतयुग से आज तक इसी वंश के सब पुरुष सिंहासन ही पर मरे।

भगवान रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र लव ने अपने राज्य-समय में लवपुर अर्थात् लाहौर बसाया था और सुमित्रायु नामक राजा लव से पचपन पीढ़ी पीछे हुआ। पुराणों में लिखा है कि सुमित्र ने कलियुग में राज्य किया और बहुत से प्रमाणों से मालूम होता है कि ये विक्रमादित्य के कुछ पहले वर्त्तमान थे। इन के पीछे कनकसेन तक राजाओं का ठीक वृत्तान्त नहीं मिलता। जहां तक नाम मिले हैं उस में पहला मङ्गरथ, उस का पुत्र अन्तरीक्ष, उस का अचलसेन और उस का पुत्र राजा कनकसेन हुआ। राजा कनकसेन ही सौराष्ट्र देश में आये, परन्तु इस का नहीं पता लगता कि उन्हों ने लाहौर किस हेतु से छोड़ा और किस पथ से सौराष्ट्र पहुंचे। यहां आकर इन्हों ने किसी पवांर वंश के राज का अधिकार जीत कर सन् १४४ में बीर नगर नामक नगर संस्थापन किया। कनकसेन को महामदनसेन, उन को शोणादित्य और उन को विजय भूप हुआ। इस ने जहां अब धोल का नगर है वहां पर विजयपुर नामक नगर संस्थापन किया और जहां अब सिहोर है तहां विदर्भ नगर बनाया। और बल्लभीपुर नामक एक बड़ा नगर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। अब धोल नगर से पांच कोस उत्तर-पश्चिम बालभी नामक जो गांव है वहीं इस प्रसिद्ध वल्लभीपुर का अवशेष है। शत्रुञ्जय माहात्म्य नामक जैन ग्रन्थ में भी इस नगर की बड़ी शोभा लिखी है। मेवाड़ के राजा लोग बल्लभीपुर से आए हैं यह प्रवाद

दिन से था, पर कोई इस का पक्का प्रमाण नहीं था। अब उदयपुर के राज्य में एक टूटे शिवालय में एक प्राचीन खोदा हुआ पत्थर मिला है, उस से यह सन्देह मिट गया, क्योंकि उस में लिखा है कि जिन महात्माओं का ऊपर वर्णन हुआ उस की साक्षी बल्लभीपुर के प्राचीर हैं। राना राज्यसिंह के समय के बने हुये एक ग्रन्थ में भी लिखा है कि सौराष्ट्र देश पर वरवरों ने चढ़ाई करके बालकानाथ को पराजय किया।

इस बल्लभीपुर के विप्लव में सब लोग नष्ट हो गये और केवल एक प्रमर की दुहिता मात्र बची। बल्लभीपुर शिलादित्य के समय में नाश हुआ। विजय भूप के पद्मादित्य, उन के शिवादित्य, उन के हरादित्य, उन के सुयशादित्य, उन के सोमादित्य, उन के शिलादित्य।

शिलादित्य वा शीलादित्य तक एक प्रकार का क्रम लिख आए हैं। अब आगे नामों में और उन के समय में कितना गड़बड़ और उस के ठीक निर्णय में कितनी विपत्ति है यह दिखाते हैं। आर्य्यमत के अनुसार चार युग में काल बांटा गया है। इस में ब्रह्मा की उत्पत्ति से सत्ययुग माना जाता है। अब अनेक पुराणों से और प्रसिद्ध विद्वानों के मत सें प्रारम्भ से काल लिखते हैं।

पुराण के मत से इक्ष्वाकु को २१८५००० वर्ष हुए। जोन्स के मत से ६८७७ और विलफर्ड के मत से ४५७८, टाड के मत से ४०७७, वेण्टली के मत से ३४०५।

श्री रामचन्द्र का समय॰ पुराण॰ ८६८१७१ वर्ष, जोन्स॰ ३१०६, विलफर्ड॰ ३२३७, वेण्टली॰ २८२७, टाड॰ ४०००।

महाराज युधिष्ठिर का समय पुराण० ४१७१, वेएटली २४५३, और जोन्स टाड ३३०७ और विलफर्ड के मत से श्री रामचन्द्र का और युधिष्ठिर का समय एक है, विल्सन के मत से ३३०७ सुमित्र का समय पुराण० ३१७७, जोन्स २१०९, विलफर्ड २५७७, विएटली १११६, विल्सन० २८०२, ब्रह्मावालों के मत से २४७७।

शिशुनाग का समय पुराण० ३८३६, जोन्स २७४७, विलफर्ड २४७७, विल्सन २६५४, ब्रह्मावाले २४७७।

नन्द का समय पुराण ३४७७, जोन्स २५७६, विल्सन २२१२, ब्रह्मावाले २२८१।

चन्द्रगुप्त का समय पुराण० ३३७१, जोन्स २४७७, विलफर्ड २२२७, विल्सन २११२, टाड २११७, ब्रह्मावाले २२६१।

अशोक का समय पुराण० ३३४७, जोन्स २५१७, विल्सन २१२७, ब्रह्मावाले २२०७।

जोन्स प्रिन्सिप साहब के मत से परशुराम जी को ३०५३ वर्ष हुए, और वेएटली साहब के मत से बाल्मीकि रामायण बने केवल १५८६ वर्ष हुए।

कलियुग का प्रारम्भ पुलोम के समय तक भागवत के मत से ३७३४, ब्रह्माण्डपुराण के मत से ३६५२, वायुपुराण के मत से ३६०६, जैनों के मत से २१५५ और चीन और ब्रह्मा के मत से २५६८ वर्ष से है। अंगरेजी विद्वानों के पुराणों के अनुसार इस समय तक पुलोम का समय जोड़ कर एक सम्मति है कि बीते ५००० वर्ष लगभग हुए, परन्तु इस मत को वे सत्य

क्योंकि फिर आप ही लिखते हैं कि स्वायंभु मनु को हुए ५८८३ वर्ष और वैवस्वतमनु को ४८२७ वर्ष हुए।

युधिष्ठिर के ३०४४ संवत् बीते विक्रम का संवत् चला और विक्रम के १३५ वर्ष पीछे शालिवाहन का शाका चला।

ऊपर जो कालनिर्णय में विद्वानों के परस्पर विरुद्ध मत वर्णन किए गए इस से यह बात प्रसिद्ध होगी कि प्राचीन समय निर्णय करना कितना दुरूह है, इस के आगे जो ब्रह्मा से लेकर सुमित्र पर्य्यन्त नामावली दी जाती है उस के मध्यगत काल का निर्णय न कर के सुमित्र के समय से जो हमारे मत के अनुसार २००० वर्ष बीते हुआ है काल का निर्णय प्रारम्भ करेंगे।

ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, विवस्वान, श्राद्धदेव, इक्ष्वाकु, बिकुक्षी १ पुरंजय, काकुस्थ, २ अनेनाल, ३ पृथु, ४ विश्वगश्व, ५ अर्द, भाद्रआर्द, युवनाश्व, ६ श्रवस्थ, वृहदश्व, ७ कुवलयाश्व, दृढ़ाश्व, हर्यश्व, निकुम्भ, ८ संकटाश्व, ९ प्रसेनजित्, युवनाश्व, १० मान्धाता, पुरुकुत्स, चित्रिशदश्व, अनारण्य, पृषदश्व, हर्यश्व, ११ बसुमान, १२ त्रिधन्वा, १३ त्रयारण्य, त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र, रोहिताश्व, हारीत, १४ चुंचु, विजय, १५ रुरुक, वृक, १६ बाहु,

---

१ नामान्तर काकुस्थ। २—३ ना० अनपृथु, ४ ना० विश्वगन्धि। ५ ना० चन्द्र। ६ ना० स्वसव या श्रव। ७ ना० धुन्धुमार। ८ संकटाश्व के पीछे वरुणाश्व और कृशाश्व दो नाम और मिलते हैं। ९ ना० सेनजित। १० ना० सुबन्धु इन को चक्रवर्ती लिखा है॥ ११ ना० महर्ण या अरुण। १२ ना० त्रिविन्धन १३ ना० सत्यव्रत। १४ ना० चम्प, किसी पुस्तक में चम्प के पीछे सुदेव तब विजय

सगर, असमञ्जस, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, श्रुत, नाभाग, अम्बरीष, सिन्धुद्विप, अयुताश्व, १७ ऋतुपर्ण, सर्वकाम, सुदास, कल्माषपाद, १८ असमक, १९ हरिकवच, २० दशरथ, इलिवथ, बिश्वासह, २१ खट्वाङ्ग, दीर्घबाहु, रघु, अज, दशरथ, श्रीराम, २२ कुश, अतिथि, निषध, नल, नाभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, २३ द्वारिक, अहीनज, कुरुपरिपात्र, २५ दल, २६ छल, उक्थ, २७ वज्रनाभि, २८ शंखनाभि, २९ व्युथिताभि, ३० विश्वासह, हिरण्यनाभि, ३१ पुष्प, ३२ ध्रुवसंधि, ३३ अपबर्म, शीघ्र, ३४ मरु, प्रसव श्रुत, ३५ सुसंध, आमर्ष, ३६ महाश्व, वृहद्बाल, वृहद्शान, उरुक्षेप, वत्स, बत्सव्यूह

लिखा है ॥ १५ ना० मरुक। १६ ना० बाहुक। १७ ऋतुपर्ण के पीछे किसी पुस्तक में नल, तब सर्व्वकाम लिखा है ॥ १८ ना० आमक। १९ ना० मूलक। २० दशरथ, और इलिबथ दो के बदले किसी पुस्तक में ऐड़ाबिड़ एक ही नाम लिखा है ॥ २१ ना० खरभङ्ग। २२ कुश के समय से अनेक ग्रन्थकार द्वापर की प्रवृत्ति मानते हैं * २३ ना० देवार्नीक। २४ ना० अहीनग। २५ ना० बल। २६ ना० रणच्छल। २७ बज्रनाभि के पीछे कोई अर्क तब शङ्खनाभि को लिखता है ॥ २८ ना० सगण। २९ ना० विधृत। ३० ना० विशिताश्व। ३१ ना० पुष्य। ३२ ध्रुवसन्धि, और अपवर्म्म के बीच में कोई, सुदर्शन नामक और एक राजा मानता है ॥ ३३ ना० अग्निवर्म्म। ३४ ना० मनु। ३५ ना० सन्धि। ३६ ना० अवस्वान, इसी महाश्व के पीछे बिश्वबाहु प्रसेन जित और तक्षक नामक तीन राजा वृहद्वाल के पहले अनेक ग्रन्थकार मानते हैं और कहते हैं कलियुग का प्रारम्भ

प्रतिव्योम, ३७ देवकर, सहदेव, ३८ बृहदश्व, ३९ भानुरत्न, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र ४०।

केशीनर, ४१ अन्तरीक्ष, ४२ सुवर्ण, अमित्रजित्, बृहद्राज, ४३ धर्म, ४४ कृतञ्जय, ४५ रणञ्जय, सञ्जय, शाक्य, ४६ क्रोधदान, शाक्य सिंह, ४७ अतुल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, कुन्दक, ४८ सुरथ, सुमित्र।

महाराज जैसिंह के ग्रन्थ के अनुसार सुमित्र के पीछे महारितु, अन्तरित, अचलसेन, कनकसेन, महामदनसेन, सुदन्त, वा प्रथम सोणादित्य, (विजयसेन, वा अजयसेन, वा विजयादित्य) पद्मादित्य, शिवादित्य, हरादित्य, सूर्य्यादित्य, शिलादित्य, ग्रहादित्य, नागादित्य, भागादित्य, देवादित्य, आशादित्य, कालभोज वा भोजादित्य, द्वितीय ग्रहादित्य और बापा। सुमित्र से महाऋतु तक चार नाम नहीं मिलते और इस क्रम से श्रीरामचन्द्र से बापा

इसी के समय से हुआ॥ ३७ प्रतिव्योम और देवकर के बीच में कोई भानु को भी जोड़ते हैं। इसी देवकर का नामान्तर दिवाकर है॥ ३८ सहदेव, तब बीर, तब वृहदश्व, यह किसी का मत है॥ ३९ ना० भानुमत, वा भानुमान, ग्रन्थकारों का मत है कि ईरान का जो प्रसिद्ध बहमन नामक हुआ था वह यही भानुमान है। इस के और सुप्रतीक के बीच में कोई प्रतिशोश्व नामक राजा मानते हैं॥ ४० ना० पुष्कर। ४१ ना० रेख। ४२ ना० सुतुपा। ४३ ना० बाढ़ि। ४४ कोई ग्रन्थकार कहते हैं कि यही कृतञ्जय प्रथम सौराष्ट्र में आया॥ ४५ ना० जयरान। ४६ ना० शुद्धोदन इसी का पुत्र प्रसिद्ध शाक्यसिंह है, जो भादो सुदी ५ को जन्मा था, और बौद्ध और जैन के नाम से जिस का मत संसार की एक तिहाई में व्याप्त है॥ ४७ ना० लाङ्गल वा सिङ्घल वा रातुल॥ ४८ ना० सुरत वा सुराष्ट्र कहते हैं, कि इसी के नाम से सौराष्ट्र देश बसा है॥

अस्सी पीढ़ी में हैं, तक्षक से ले कर के बाहुमान वा भानुमान तक आठ राजाओं का नाम कई वंशावली में नहीं मिलता, अनेक ग्रन्थकारों का मत है कि इसी तक्षक के समय से ईरान, तूरान, तुरकिस्तान इत्यादि देशों में इस का वंश राज करता था और तुरकिस्तान का प्राचीन नाम तक्षकस्थान बतलाते हैं और यूनान में जो अर्तक्षर्क नामक राजा हुआ है वह भी इसी तक्षक का नामान्तर मानते हैं।

राजा जयसिंह का मत है कनकसेन के समय में अर्थात् सन् १४४ में सौराष्ट्र देश में इस वंश का राज हुआ और वही लिखते हैं कि विजय वा अजयसेन का नामान्तर नौशेरवां था। इस ने विजयपुर वा बिराटगढ़ बसाया और सन् ३१९ में वल्लभीशक स्थापन किया। उन्हीं का मत है कि शिलादित्य को यवनों ने जीता और सौराष्ट्र से यह राज छिन्न भिन्न हो गया और इस का पुत्र केशव वा गोप वा ग्रहादित्य भांडेर के जङ्गल में रहा और उस के पुत्र नागादित्य के समय से इस वंश का गोत्र गहलौत कहलाया और फिर आशादित्य ने मेवाड़ में अपने वंश की पहली राजधानी आशापुर और आहार बसाया और इस के पीछे बापा ने सन् ७१४ में चित्तौड़ का राज्य पाया, दूसरे ग्रहादित्यक नाम द्वितीय नागादित्य भी लिखा है।

बापा तक नाम का क्रम हम पूर्व्व में लिख आए हैं, परन्तु प्राचीन ताम्रपत्रों से ले कर यदि वंशावली लिखी जाय, तो सेनापति वा भट्टारक तथा धरासेन, द्रोणसिंह (प्रथम), ध्रुवसेन, धरापति,

गृहसेन, श्रीधरसेन (प्रथम), शिलादित्य (प्रथम), चारुग्रह वा खड्ग्रह (द्वितीय), श्रीधरसेन (द्वितीय), (ध्रुवसेन तृतीय), श्रीधरसेन (तृतीय), शिलादित्य (इस के पीछे तीन नाम छूट गए हैं), शिलादित्य (तृतीय) और (चतुर्थ) शिलादित्य।

टाड साहब की वंशावली और बल्लभीपुर की वंशावली में कितना अन्तर है यह ऊपर के नामों से प्रगट होगा। पादरी अएडरसन साहब ने दो नये ताम्रपत्र पढ़ कर इस वंशावली को शोधा है और वे कहते हैं कि इस में जहां २ श्रीधरसेन लिखा है वह सब नाम धरासेन है और शिलादित्य का नाम क्रमादित्य वा विक्रमादित्य है और इन्हीं को धर्म्मादित्य भी कहते हैं (१)। और वंशावली के प्रथम पुरुष को सेनापति वा भट्टारक वा धर्म्मादित्य भी लिखा है। दोनों वंशावली में वल्लभीपुर का अन्तिम राजा शिलादित्य है और इन दोनों के संवत् भी पास २ मिलते हैं। पारसी इतिहासवेत्ताओं के मत से इसी शिलादित्य का पुत्र ग्रह वा ग्रहादित्य, जिस ने ग्रहलोत वा ममोधिया गोत्र चलाया, नौशेरवां का रक्षित पुत्र था, परन्तु महाराज जैसिंह ने राजा अजयसेन का ही नामान्तर नौशेरवां लिखा है। पारसी इतिहासवेत्ताओं के मत से नौशेरवां के पुत्र नोशीज़ाद (हमारे यहां का नागादित्य) और यज़दिजिर्द की बेटी माहवानू, जो इन्हीं राजाओं में से किसी को व्याही थी, इस बंश के मूल पुरुष हैं। विलफर्ड साहब के मत से बल्लभीशक के स्थापन कर्त्ता अजयसेन वा दूसरी वंशावली के अनुसार धरासेन

---

1 Bomb. Jour. VLIII P. 216.

को ही पुराणों में शूद्रक वा शूरक लिखा है, जिस ने ३२९० वर्ष कलियुग बीते सन् १९१ वा २९१ में प्रथम विक्रमादित्य के नाम से राज्य किया था (२) मेजर वाटसन के मत से सेनापति भट्टारक के सौराष्ट्र जीतने के दो वर्ष पीछे प्रसिद्ध स्कन्द गुप्त मरा (३), इस से गुप्त संवत के आस ही पास वल्लभी संवत् भी है और इस विषय के उन्हों ने अनेक प्रमाण भी दिए हैं। इस वल्लभी संवत् के निर्णय में इतिहासवेत्ता विद्वानों के बड़े २ झगड़े हैं, जिस से कई दरजन कागज़ के बड़े ताव रंग गए हैं। लोग सिद्धान्त करते हैं कि गुप्तवंश जब प्रवल था तब वल्लभीवंश के लोग उस के वंश के अनुगत थे, यहां तक कि भट्टारक सेनापति गुप्त वंश बिगड़ने के पीछे स्वाधीन हुआ और अपने दूसरे बेटे द्रोणसिंह को महाराज किया। पांच छः ताम्रपत्र इस वंश के जो मिले हैं उन के परस्पर नामों में बड़ा फरक है, जैसा गुहसेन धरासेन शिलादित्य धरासेन शिलादित्य वा गुहसेन के दो पुत्र शिलादित्य और खड्ग्रह, खड्ग्रह के दो पुत्र धरासेन और ध्रुवसेन वा शिलादित्य के देरभट्ट, उन के शिलादित्य खड्ग्रह और, ध्रुवसेन और शिलादित्य के बाद फिर शिलादित्य।

इन नामों के परस्पर अत्यन्त ही विरुद्ध होने से कोई निश्चित वंशावली नहीं बन सकती, अतएव इन झगड़ों को छोड़ कर राजा कनकसेन के समय से हम ने पूर्व वृत्तान्त प्रारंभ किया। कारण यह कि जब एक बड़ा वंश राज्य करता है तो उस की

---

2 as Ras VL IX pp. 135, 230.

3 In Ant VL III P. XXXIII.

शाखा प्रशाखा आस पास छोटे २ राज्य निर्माण कर के राज करती हैं। इस में क्या आश्चर्य है कि ताम्रपत्रों में ऐसे हो अनेक श्रेणियों की वंशावली का वर्णन हो जो वास्तव में सब वल्लभी वंश से सम्बन्ध रखती हैं। ऐसा ही मान लेने से पूर्वोक्त समय और वंश निर्णय की असमञ्जसता जटिलता घनता असम्बद्धता और बिरोधिता दूर होगी।

सुमित्र से लेकर शिलादित्य तक एक प्रकार का निर्णय ऊपर हो चुका और इस से निश्चय हुआ कि महाराज सुमित्र कलियुग के अन्त में हुए थे और बल्लभीपुर का नाश भए दो हजार वर्ष के लगभग हुए। कहा है कि बल्लभीपुर में सूर्य्यकुण्ड नामक एक तीर्थ था। युद्ध के समय शिलादित्य के आवाहन करने से इस कुण्ड में से सूर्य्य के रथ का सात सिर का घोड़ा निकलता था और इस अश्व के रथ पर बैठने से फिर शिलादित्य को कोई जीत नहीं सकता था। और यह भी कथित है कि सूर्य की दी हुई शिलादित्य के पास एक ऐसी शिला थी जिस को दिखा देने से वा स्पर्श करा देने से शत्रुओं का नाश हो जाता था। और इसी वास्ते इन का नाम शिलादित्य था। इन के किसी शत्रु ने इन्हीं के किसी निज भेदिये की सम्मति से उस पवित्र कुण्ड को गोरक्त द्वारा अशुद्ध कर दिया, जिस से बल्लभीपुर के नाश के समय राजा के बारम्बार आवाहन करने से भी वह अश्व नहीं निकला और राजा सपरिवार युद्ध में नियत हुआ और बल्लभीपुर नाश हुआ। जैन-ग्रन्थों के अनुसार संवत् २०५ में बल्लभीपुर नाश हुआ और श्री

महाराणा उदयपुर के राज्य कृत संग्रह के अनुसार राजा शिलादित्य का नाम सलादित्य था और बल्लभीपुर का नाम विजयपुर।

अंगरेज़ी विद्वानों का मत है कि नगरावरोधकारी शत्रुदल ने हिन्दुओं को दुःख देने के हेतु गोरक्त से बल्लभीपुर के जल कुण्डों को अशुद्ध कर दिया होगा, जिस से हिन्दू लोग घबड़ा कर एक साथ लड़ने को निकल खड़े हुए होंगे। अलाउद्दीन बादशाह ने गागरौन देश के खींची राजाओं से यही छल किया था। बल्लभीपुर के शत्रुओं का यही छल मानो इस कथा का मूल है।

बल्लभीपुर को किस असभ्य जाति ने नाश किया इस का निर्णय भली भांति नहीं होता। प्राचीन पारस निवासी लोग वृष को पवित्र समझते थे और सूर्य्य के सामने उस को बलिदान भी करते थे। इस से निश्चय होता है कि ये लोग पारसी तो नहीं थे। प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है कि ख्रिष्टीय दूसरी शताब्दी में सिन्धु नद के किनारे पारद वा पार्थियन लोगों का एक बड़ा राज्य था। विष्णुपुराण में लिखा है कि सूर्य्यवंशी सगर राजा ने म्लेच्छों को चिन्ह विशेष देकर भारतवर्ष से निकाल दिया था, जिस में यवन सर्व शिरोमुण्डित केश अर्द्ध शिर मुण्डित पारद मुक्त केश और पन्हव वा पल्हव श्मश्रुधारी बनाए गए थे। उसी काल में श्वेत वर्ण की एक हून जाति भी सिन्धु के किनारे राज्य करती थी। हून जाति नामक प्राचीन असभ्य मनुष्यों का लेख पुराणों और यूरप के इतिवृत्तों में भी पाया जाता है। सम्भावना होती है कि इन्हीं दो जातियों में से किसी ने बल्लभीपुर नष्ट किया होगा, पारद और हून दो जातियों का आदिनिवास शाकद्वीप है। महाभारत में शाक-

द्वीपी और पूर्व्वोक्त हूणादिकों को इसी प्रकार यवन लिखा है। पुराणों में इन सबों को एक प्रकार का क्षत्री लिखा है। ये सब असभ्य जाति शाकद्वीप से किस काल में यहां आए इस का पता नहीं लगता। विएटली साहब का मत है कि शाकद्वीप इङ्गलैण्ड का नामान्तर है। विशेष आश्चर्य्य का विषय यह है कि ये सब शाकद्वीपी काल पाके आर्य्य जाति में मिल गए, यहां तक कि ब्राह्मण और क्षत्रियों में भी शाकद्वीपी वर्त्तमान हैं।

यह निश्चय हुआ कि इन्हीं म्लेच्छ जाति के लोगों में से किसी जाति ने बल्लभीपुर नाश किया। सांदोराई से जो वंशपत्रिका मिली है उस में लिखा है कि बल्लभीपुर नाश होने के पीछे वहां के लोग मारवाड़ में आ कर सांदोरावाली और नांदोर नगर बसा कर रहने लगे और फिर गाजनी नामक एक नगर का और भी उल्लेख है। एक कवि अपने ग्रंथ में लिखता है "असभ्यों ने गाजनी हस्तगत किया, शिलादित्य का घर जनशून्य हुआ और जो वीर लोग उस की रक्षा को निकले वे मारे गए"।

हिन्दू सूर्य्य के वंश का यहां चौथा दिवस अवसान हुआ। प्रथम दिवस इक्ष्वाकु से श्री रामचन्द्र तक अयोध्या में बीता, दूसरा दिन लव से सुमित्र तक अन्य राजधानियों में, तीसरा सुमित्र से विजयभूप तक अंधेरे मेघों से छिपा हुआ कहां बीता न जान पड़ा और यह चौथा दिन आज बल्लभीपुर में शिलादित्य के अस्त होने से समाप्त हुआ। पांचवें दिन का इतिहास बहुत स्पष्ट है, जो गोहा और बाप्पा के विचित्र चित्रों से चित्रित होकर दूसरे अध्याय में वर्णन होगा॥

इति उदयपुरोदय प्रथम अध्याय।

दूसरा अध्याय।

बल्लभी वंश की रात्रि का अवसान हुआ। उदयपुर के इतिहास की यहां से शृङ्खला बंधी। पूर्व्व में लिख आए हैं कि बल्लभीपुर को यवनों ने घेरा और राजा शिलादित्य ने सकुटुम्ब सपरिवार बीरों की गति पाया। अब और सीमन्तिनी गण राजा की सहगामिनी हुईं, किन्तु रानी पुष्पवती (वा कमलावती) मात्र जीवित रहीं।

रानी पुष्पवती चन्द्रावती नगर (सांप्रत आबूनगर) के राजा की दुहिता थीं। बल्लभीपुर के आक्रमण के पूर्व्व ही यह रानी गर्भवती होकर अपने पिता के राज में जगदम्बा (आर्शाम्बिका) के दर्शन को गई थी और वहां से लौटती समय मार्ग में अपने प्राणबल्लभ और बल्लभीपुर का विनाश सुना और उसी समय अपना प्राण देना चाहा। परन्तु बीरनगर की एक ब्राह्मणी लक्ष्मणावती जो रानी के साथ थी उस के समझाने से प्रसव काल तक प्राण धारण का मनोरथ कर के मालिया प्रदेश के एक पर्व्वत की गुहा में काल यापन करना निश्चय किया। इसी गुहा में गुहा का जन्म हुआ और रानी ने सद्योजात सन्तान उस ब्राह्मणी को देकर आप अग्नि प्रवेश किया। मरती समय रानी ब्राह्मणी को समझा गई थी कि इस पुत्र को ब्राह्मणोचित शिक्षा दे कर क्षत्रिय कन्या से व्याह देना।

लक्ष्मणावती ब्राह्मणी उस बालक का लालन पालन करने लगी और द्वेषियों के भय से भांडेरगढ़ और पराशर बन में क्रम से

रही। गुहा में जन्म होने के कारण बालक का नाम भी गुहा (ग्रहादित्य वा केशवादित्य) रक्खा। गुहा की प्रकृति दिन दिन अति उत्कट होने लगी और बहुत से बनवासी बालकों को इन्हों ने अपना अनुगामी बना लिया। इसी वृत्तान्त पर उस देश में यह कहावत अब भी प्रचलित है कि सूर्य्य की किरण को कौन छिपा सकता है।

मेवाड़ की दक्षिण सीमा पर ईदर के राज्य पर उस समय भीलों का अधिकार था और उस समय के भीलों के राजा का नाम मण्डलिका था। प्रतिपालक शान्तिशील ब्राह्मणों के साथ गुहा का जी नहीं मिलता था। इस से मर्म स्वभाव उग्र प्रकृति वाले भीलों से अपनी उद्दण्ड प्रचण्ड प्रकृति की एकता देख कर गुहा उन्हीं लोगों के साथ बन बन घूमते थे और काल क्रम से भीलों के ऐसे स्नेहपात्र हो गए कि सबन पर्व्वत ईदर प्रदेश भीलों ने इन को समर्पण कर दिया। अबुलफ़ज़ल और भट्ट गन गुहा के भील राजप्राप्ति का वर्णन यों करते हैं। एक दिन खेल में भील बालक लोग एक बालक को राजा बनाना चाहते थे और सब ने एक वाक्य हो कर गुहा ही को राजा बनाना स्वीकार किया। एक भील के बालक ने चट से अपनी उंगली काट के ताजे लहू से गुहा के सिर में राजतिलक लगाया। यह खेल का व्यापार पीछे कार्य्यतः सत्य हो गया, क्योंकि भील राजा मंडलिका ने यह समाचार सुन कर प्रसन्न हो कर ईदर का राज्य गुहा को दे दिया। कहते हैं कि गुहा ने व्यर्थ भीलराज मण्डलिका को पीछे से मार डाला। गुहा के नाम के अनुसार उन के वंश के लोग

गोहिलोट (गहिलौत वा गिहलौट) कहलाए। टाड साहब कहते हैं कि गहिलौट ग्राहिलोत का अपभ्रंश है।

गुहा (केशवादित्य) के पुत्र नागादित्य हुए। इन्हीं ने पराशर बन में नागहृद नामक एक बड़ा हृद बनवाया। इन्हीं के नाम के कारण लक्ष्मणावती ब्राह्मणी के सन्तान वा वह बन और तालाब सब नागदहा के नाम से प्रसिद्ध है और सिसौधियों को भी नागदहा कहते हैं। नागादित्य के भोगादित्य। इन्हों ने कुटिला नदी पर पक्का घाट बनाया और इन्द्र सरोवर नामक तालाव का जीर्णोद्धार किया। पूर्वोक्त तड़ाग इन के नाम से अब तक भोडेला कहलाता है। इन के पुत्र देवादित्य, जिन्हों ने देलवाड़ा ग्राम निर्माण किया और उन के आशादित्य जिन्हों ने अहाड़पुर नगर बसा कर अपनी राजधानी बनाया। यह अहाड़पुर अब राना लोगों का समाधिस्थल है। कहते हैं कि अहाड़पुर में जो गङ्गोन्द्रव तीर्थ है वह इसी राजा का निर्माण किया है और इन्हीं की भक्ति से उस में गङ्गा जी का आविर्भाव हुआ था। उस प्रान्त में इस तीर्थ का बड़ा माहात्म्या है। यह तीर्थ उदयपुर से एक कोस पूर्व्व की ओर है। आशादित्य के पुत्र कालभोजादित्य और उन के पुत्र ग्रहादित्य (वा द्वितीय नागादित्य) घासा गांव इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। गुहा राजा से लेकर नागादित्य पर्य्यन्त छः (टाड साहब के मन से सात) राजाओं ने इसी पर्बत भूमि का राज्य किया, पर इन में से कोई अत्यन्त प्रसिद्ध न था, किन्तु नागादित्य के पुत्र बाप्पा बड़ा प्रसिद्ध और नामी मनुष्य हुआ, वरञ्च उदयपुर के राज का इसे मूलस्तम्भ कहैं तो अयोग्य न होगा। बापा का

वर्णन उदयपुर से जो लिख कर आया है उसे हम यहां पर अविकल प्रकाश करते हैं " ग्रहादित्य के बाष्प नामक पुत्र हुआ। कहते हैं कि वाष्प नन्दी गण के अवतार थे। यह कथा सविस्तर वायु पुराणांतर्गत एकलिङ्ग माहात्म्य में लिखी है। जब राजा ग्रहादित्य के एक शत्रु जंजावल नाम राजा ने घासा नगर को आन आवर्तन किया वहां राजा ग्रहादित्य बड़े पराक्रम के साथ मारे गए और घासा में जुंजावल का अधिकार हो गया तब आपत्ति काल अवलोकन कर प्रमरवंशोद्भवाग्रहादित्य की राज्ञी ने अपने पुत्र वाष्प को शिशुता के भय से निज पुरोहित वशिष्ठ के गृह में गोपन कर पिहित रहना स्वीकार किया। बहुत समय व्यतीत होने पीछे वाष्प ने वशिष्ठ की गो चारन का नियम लिया लिखा है कि उस गो निकर में एक कामधेनु नाम धेनु थी सो जब वाष्प गो चारन को जाते वहां उक्त गाय एक बेणु चय में प्रवेश करती। वहां एक स्फटिक का स्वयम्भू लिङ्ग था उस पर अपने स्तनों से दुग्ध श्रंवती इस. वास्ते गुरुपत्नी ने एक दिन वाष्प को उपालम्भ दिया कि इस धेनु के स्तनों में दुग्ध नहीं, सो कहां जाता है। द्वितीय दिवस वाष्प ने उस गाय को दृष्टि से पिहित न होने दिया। वह सुरभी तो शिव लिङ्ग पर पूर्वोक्त दुग्ध श्रवने लगी अरु वाष्प ने इस चरित्र को देख साक्षी बनाने को हारीत नामा ऋषि ज्यों भृङ्गी गण का अवतार लिखा है वहां तपस्या करते हुये को देख वाष्प ने निमन्त्रण कर वह चरित्र दिखाया तब भृङ्गी गण ने कहा कि हे वाष्प इस श्रीमदेकलिंगेश्वर के दर्शनार्थ तो मैं यहां ऐसा कठिन तप करता था अरु तू भी

इन्हीं का सेवक नन्दीगण का अंशावतार है तब वाप्प को भी स्वरूप ज्ञान हुआ। फिर श्रीशंकर की स्तुति कर बर पाय हारीत ऋषि तो कैलास सिधारे और वाप्प ने राज्य की अपेक्षा करी इस्से उन को शंकर ने बरदान दिया कि तेरा शरीर अभिन्न और महत्तर होगा और तुझे इस भर्तृहरि के पर्वत में खनन करने से बहुत द्रव्य मिलेगा जिस्से सेना एकत्र कर अरु चित्तौड़ का राज्य अपने अधिकार में कीजियो और आज से तुम्हारे नाम पर रावल पद प्रख्यात रहैगा। यह लिंग प्रादुर्भाव विक्रमार्क गताब्द २६० बैशाख कृष्ण १ को हुआ था सो उक्त महीने की इसी तिथि को अब भी प्रादुर्भावोत्सव प्रति वर्ष होता है। फिर रावल वाप्प ने इष्टाज्ञा ले द्रव्य निष्कासन कर महत्तर सेना बनाय चित्तौड़ के राजा मानमोरी को जय किया और उसी दुर्ग को अपनी राजधानी बनाया इस महिपाल ने समस्त भारतवर्ष को बिजय किया।"

वापा के विषय में ऐसे ही अनेक आश्चर्य्य उपाख्यान मिलते हैं। पृथ्वी पर जितने बड़े बड़े राजवंश हैं उन में ऐसे कोई भी न होंगे जो कवि जनों की विचित्र कल्पना से अलंकृत न हों, क्योंकि उस समय में उन के विषय में विविध दैवी कल्पनाओं का आरोप ही मानो उन के प्राचीनता और गुरुत्व का मूल था। रोम राज्य के स्थापनकर्त्ता रमूलस देवता के पुत्र थे और बाघिन का दूध पी कर पले थे। ग्रीस राज्य के हर्क्यूलिस और इङ्गलैंड राज्य के आरथर राजाओं के दैत्यों से युद्ध इत्यादि अनेक अमानुष कर्म्म प्रसिद्ध हैं। जगद्विजयी सिकन्दर को दो सींग थीं औफार के अफरासियाब ने जब देव सदृश अनेक कर्म्म किए, तो हिंदुस्तान के

बड़े बड़े उदयपुर, नैपाल, सितारा, कोल्हापुर, ईजानगर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और अलीराजपुर इत्यादि राजवंशों के मूलपुरुष वापा के विषय में विचित्र बातैं लिखी हों तो कौन आश्चर्य्य की बात है। वापा सैकड़ों राजकुल के आदि पुरुष लोकातीत संभ्रम भाजन और चिरजीवी फिर उन के चरित्र अलौकिक घटनाओं से क्यों न संघटित हों।

वापा वाल्यकाल से गोचारण करते थे, यह पूर्व्व में कह आए हैं। कहते हैं कि शरत्काल में गोचारण के हेतु बन में गमन करके वापा ने एक साथ छ सौ कुमारियों का पाणिग्रहण किया। उस देश में शरद ऋतु में बालक और बालिका गन बाहर जा कर झूला झूलते हैं। इसी रीति के अनुसार नगेन्द्रनगर के सोलङ्की राजा की क्वारी कन्या अपनी अनेक सखियों के साथ झूलने को आई थीं, किन्तु उन के पास डोरी नहीं थी कि वह झूला बांधैं। वापा को देख कर उन सबों ने इन से डोरी मांगी, इन्हों ने कहा पहिले व्याह खेल खेलो तो डोरी दें। बालिका लोगों के हिसाब सभी खेल एक से थे इस से इन लोगों ने पहिले व्याह खेल ही खेलना आरम्भ किया। राजकुमारी और वापा की गांठ जोड़ कर गीत गाकर दोनों की सब ने सात फेरी किया। कुछ दिन पीछे जब राजकुमारी का व्याह ठहरा तब एक वरपक्ष के ज्योतिषी ने हाथ देख कर कहा कि इस का तो व्याह हो चुका है। कुमारी का पिता यह सुन के बहुत ही घबड़ाया और इस की खोज करने लगा। वापा के साथी गोपाल गण यह चरित्र जानते थे, परन्तु वापा ने इस के प्रगट करने की उन से शपथ ली थी। यह शपथ भी विचित्र प्रकार की थी।

एक गड्हे के निकट बापा ने अपने सब संगियों को बैठाया और हाथ में एक एक छोटा पत्थर दे कर कहा कि तुम लोग शपथ करो कि "तुमारा भला बुरा कोई हाल किसी से न कहैंगे, तुम को छोड़ के न जायंगे, और जहां जो कुछ सुनैंगे सब आ कर तुम से कहैंगे। यदि इस में कोई बात टालैं, तो हमारे और हमारे पुरुषों के धर्म्म कर्म्म इस ढेले की भांति धोबी के गड्हे में पड़ैं" बापा के संगियों ने यही कह कह के ढेला गड्हे में फेंका और उस के अनुसार बापा का बिवाह करना उन के संगियों ने प्रकाश न किया। किन्तु छ सौ सरला कुँमारियों पर जो बात विदित है वह कभी छिप सकती है? धीरे धीरे यह विवाह खेल की कथा राजा के कान तक पहुंची। बापा को तीन वर्ष की अवस्था से भाण्डोर दुर्ग * से लाकर ब्राह्मणों ने इसी नगेन्द्र नगर † के समीप निविड़ पराशर कानन में त्रिकूट पर्व्वत के नीचे अपने घर में रक्खा था इस से बापा उसी सोलङ्की राजा के प्रजा थे।

* बापा भांडीर दुर्ग में भीलों के हाथ से पले थे। जिस भील ने बापा को पाला वह जदुवंशी था। उस प्रदेश में भीलों की दो जाति हैं। एक उजले अर्थात् शुद्ध भील वंश के दूसरे संकर भील। यह संकर भील राजपूतों से मिल कर उत्पन्न हुए हैं और पंवार चौहान रघुवंशी जदुवंशी इत्यादि राजपूतों की जाति के नाम उन की जाति के भी होते हैं। यह भाण्डीर दुर्ग मेवार में जारोल नगर से ८ कोस दक्षिण-पश्चिम है।

† नगेन्द्र नगर का नाम नागदहा प्रसिद्ध है। यह उदयपुर से पांच कोस उत्तर की ओर है। यहां से टाड साहब ने अनेक प्राचीन लिपि संग्रह किया था। इन सबों में एक पत्थर ईसवी नवम शतक का है जिस में रानाओं की उपाधि (गोहिलोट) लिखा है।

राजा ने यह समाचार सुन लिया, यह जान कर बापा नगेन्द्र नगर छोड़ कर पर्व्वतों में छिप रहे और उसी समय से उन का सौभाग्य संचार होने लगा। किन्तु इन छः सौ कुमारियों का फिर पाणिग्रहण न हुआ और बापा ही के गले पड़ीं। इसी कारण सैकड़ों राजा ज़मींदार सरदार सिपाही तक्की अपने को बापा * की सन्तान बतलाते हैं।

नागेन्द्र नगर से चलने के समय में दो भील बाप्पा के सहगामी हुए थे इन में एक उन्द्री प्रदेश वासी और इस का नाम बालव अपर † अगुणा—पानोर नामक स्थान निवासी, इस का नाम देव। इन दोनों भीलों का नाम बाप्पा के नाम के साथ चिरस्मरणीय हो रहा है। चित्तौर के सिंहासन पर अभिषिक्त होने के समय बालव ने स्वीय करांगुलि कर्तन कर के सद्यो शोणित से बाप्पा के ललाट में राजतिलक प्रदान किया था तदनुसार अद्यावधि पर्यन्त बाप्पा बंशीय राज गण के सिंहासनारोहण के दिवस इन्हीं दो भीलों के सन्तान गण आ कर अभिषेक विधि सम्पादन करते

---

* बाप्पा दुलार में लड़के को कहते हैं। एक प्राचीन ग्रन्थ में बापा का नाम शिलाधीश लिखा है, किन्तु प्रसिद्ध नाम इन का बापा ही है।

† टाड साहब कहते हैं, भारतवर्ष के मध्य अगुनापनोर प्रदेश अद्यावधि प्राकृतिक स्वाधीन अवस्था में है। अगुना एक सहस्र ग्राम में विभक्त। तत्रस्थ भीलगण जातीय जनैक प्रधान के आधीन में निर्विघ्नता से बास करते हैं। इस प्रधान की उपाधि भी राणा है, पर किसी राजा के साथ इन लोगों का विशेष कोई संस्रव नहीं। विग्रह उपस्थित होने से अगुना का राणा धनुःशर पांच सहस्र जन एकत्र कर सकता है। आगुनापनोर मिवार राजा के दक्षिण-पश्चिम प्रान्त में अवस्थित है।

हैं। अगुणा प्रदेश के भील स्वीय शोणित से राजललाट में तिलका-र्पण और राजकीय बाहु धारण कर के सिंहासन में अधिष्ठित कराते हैं। उन्द्री प्रदेश का भील तावत् काल दण्डायमान हो कर राजतिलक का उपकरण * द्रव्य का पात्र लिये रहता है। जो प्रथा पुरुषानुक्रम से इस प्रकार से प्रतिपालित होती चली आती है उस का मूल किस प्रकार से उत्पन्न हुआ था यह अनु-सन्धान कर के अज्ञात होने से अन्तःकरण कैसा विपुल आनंद रस से आप्लुत हो जाता है।

मिवार के राज्याभिषेक के समुदय प्राचीन नियम रक्षा करने में विपुल अर्थ का व्यय होता है इसी कारण उस का अनेक अंग परित्यक्त हो गया है। राणा जगतसिंह के पश्चात् और किसी का अभिषेक पूर्ववत् समारोह के साथ सम्पन्न नहीं हुआ। उन के अभिषेक में नव्वे लक्ष रुपया व्यय हुआ था। मेवार के अति समृद्ध समय में समग्र भारतवर्ष का आय ६० लक्ष रुपया था।

नगेन्द्र नगर से बाप्पा के जाने का कारण पहिले वर्णित हुआ है, वह सम्पूर्ण संगत है, परन्तु भट्ट कविगण के ग्रन्थ में उन के प्रस्थान का अन्य प्रकार का विवरण दृष्ट होता है। उन लोगों ने कविजन सुलभ कल्पना प्रभाव से दैव घटना का आरोप कर के उस की विलक्षण शोभा सम्पादन किया है। काल्पनिक विवरण

* राज टीका का प्रधान और प्राचीन उपकरण जल संयुक्त तण्डुल चूर्ण राजस्थान की चलित भाषा में उस राजटीका का नाम "खुशकी" काल क्रम से सुगन्धि मिला हुआ चूर्ण तदुपकरण मध्य परिगणित हो गया है।

से अलंकृत न हो ऐसा सम्भ्रान्त वंश भारतवर्ष में अतीव दुर्लभ है, सुतरां हम भी भट्टगण वर्णित बाप्पा के सौभाग्यसञ्चार का विवरण निम्न में प्रकटित करते हैं:—

पहले कह आये हैं कि बाप्पा ब्राह्मण गण का गोचारण करते थे * उन की पालित एक गऊ के स्तन में ब्राह्मण गण ने उपर्य्युपरि कियद्दिवस तक दुग्ध नहीं पाया इस से सन्देह किया कि बाप्पा इस गऊ को दोहन कर के दुग्ध पान कर लेते हैं। बाप्पा इस अपवाद से अति क्रुद्ध हुए, किन्तु गऊ के स्तन में स्वरूपतः दुग्ध न देख कर ब्राह्मण गण के सन्देह को अमूलक न कह सके। पश्चात् स्वयं अनुसन्धान कर के देखा कि यह गऊ प्रत्यह एक पर्वत गुहा में जाया करती थी और वहां से प्रत्यागमन करने से उस के स्तन पयःशून्य हो जाते हैं। बाप्पा ने गऊ का अनुसरण कर के एक दिन गुहा में प्रवेश किया और देखा कि उस बेतसवन में एक योगी ध्यानावस्था में उपविष्ट हैं। उन के सम्मुख में एक शिवलिंग है और उसी शिवलिंग के मस्तक पर पयस्विनी का धवल पयोधर प्रचुर परिमाण से परिवर्षित होता है।

पूर्व्वकाल के योगी ऋषिगण भिन्न यह प्राकृतिक और पवित्र देवस्थली इति पूर्व्व में और किसी को दृष्टिगोचर नहीं हुई थी। बाप्पा ने जिन योगी का ध्यान अवस्था में दर्शन किया था उन का

* सूर्य्यवंशियों में ब्राह्मण की गोचारण करना प्राचीन प्रथा है। रघुवंश में दिलीप का इतिहास देखो।

नाम हारीत * जन समागम से जोगी का ध्यान भंग हुआ, बाप्पा का परिचय जिज्ञासा करने से बाप्पा ने आत्म वृत्तान्त जहां तक अवगत थे सब निवेदन किया। योगी के आशीर्वाद ग्रहणान्तर उस दिन गृह में प्रत्यागत भए। अतः पर बाप्पा प्रत्यह एक वार योगी के निकट गमन कर के उन का पादप्रक्षालन, पानार्थ पयः-प्रदान और शिवप्रीति काम होकर धतूरा अर्क प्रभृति शिव-प्रिय बन पुष्प समूह चयन किया करते। सेवा से तुष्ट होकर योगी वर ने उन को क्रम क्रम से नीति शास्त्र में शिक्षित और शैव मन्त्र से दीक्षित किया और स्व कर से उन के कण्ठ में पवित्र यज्ञसूत्र समर्पण पूर्व्वक "एक लिङ्ग को देवान" यह उपाधि प्रदान किया।

तत्पश्चात् बाप्पा का यह क्रम था कि नित्य प्रति योगी का दर्शन करना और तत्कथित मन्त्र का अनुष्ठान करना। काल पा कर भगवती पार्व्वती ने मन्त्र प्रभाव से बाप्पा को दर्शन दिया और राज्यादिक के वरप्रदान पूर्व्वक दिव्य शस्त्र से बाप्पा को सुसज्जित किया।

कियत् कालानन्तर ध्यान से योगी ने अपने परमधाम जाने का समय निकट जान कर बाप्पा को तद्वृत्तान्त विदित कर बोले

---

* हारीत के वंशीय ब्राह्मण लोग अद्यावधि एक लिङ्ग के पूजक पद में प्रतिष्ठित हैं। टाड् साहब के समकालीन पुरोहित हारीत-से षष्ठाधिक षष्ठितम पुरुष थे उन के निकट में राणा के मध्य वर्त्तिता से शिवपुराण प्राप्त हो कर टाड् साहब ने इंग्लैण्ड के रायल एशियाटिक सोसाइटी (Royal Asiatic Society) समाज को प्रदान किया था।

"कल तुम अति प्रत्यूष में उपस्थित होना?" बाप्पा निद्रा के वशीभूत होकर आदेशानुरूप प्रत्यूष में उपस्थित हो नहीं सके और बिलम्ब कर के जब वहां गए तो देखा कि हारीत ने आकाश-पथ में कियद् दूर तक आरोहण किया है। उन का विद्युत-निभ विमान उज्ज्वलांग अप्सरागण बहन करती हैं। हारीत ने बिमान गति स्थगित कर के बाप्पा को निकटस्थ होने का आदेश किया। उस विमान तक पहुंचने के उद्यम से बाप्पा का कलेवर तत्क्षणात् २० हाथ दीर्घ हो गया। किन्तु तथापि उन को गुरुदेव का रथ प्राप्त नहीं हुआ। तब योगी ने उन को मुख व्यादान करने को कहा। तदनुसार बाप्पा ने बंदन व्यादित किया। कथित है योगीबर ने उन के मुख विवर में उगाल परित्याग किया था। *
बाप्पा ने उस से घृणा कर के इस नीष्ठीवन का पदतल में निक्षेप किया और इसी अपराध से उन को अमरत्वलाभ नहीं हुआ। केवल उन का शरीर अस्त्र शस्त्र से अभेद्य हो गया। हारीत अदृश्य हुए। बाप्पा ने इस प्रकार सदेवानुगृहीत हो कर और अपने को चित्तौर के मौरी राजवंश का दौहित्र जानकर और आलस्य में कालक्षेप करना युक्ति संगत अनुमान नहीं किया। अब गोचारण से उन को अत्यन्त घृणा हुई और उन्हां ने कतिपय सहचर समभिव्यवहार में ले कर अरण्यवास परित्याग करके लोकालय

---

* कथित है मुसलमानधर्म्मप्रचारक महम्मद ने स्वीय प्रिय दौहित्र हसन के बदन में ऐसाही निष्ठीवन परित्याग किया था। क्या आश्चर्य्य है जो मुसलमान लोगों ने यह कथा भारतवर्ष के इसी उपाख्यान से ली है।

में गमन किया। मार्ग में * नाहर-मगरा नामक पर्व्वत में विख्यात 'गोरखनाथ' ऋषि के साथ उन का साक्षात् हुआ था। गोरक्ष ने उन को और द्विधार तीक्ष्ण करवाल† प्रदान किया था। मंत्रपूत कर के चलाने से उस तीक्ष्ण कृपाण के आघात से पर्व्वत भी विदीर्ण हो जाता था। बाप्पा ने उसी के प्रताप से चित्तौर का सिंहासन प्राप्त किया था। भट्ट कविगण के ग्रन्थ में बाप्पा के नागेन्द्र नगर से प्रस्थान का यह विवरण प्राप्त होता है। और इस विवरण में मिवार निवासी लोगों का प्रगाढ़ विश्वास भी है।

मालव के भूत पूर्व्व अधिपति प्रमारवंशीय तत्काल में भारत वर्ष के सार्व्व भौम थे। इस वंश की एक शाखा का नाम मोरी। मोरी वंशियों का इस समय में चित्तोर पर अधिकार था, किन्तु चित्तोर तत्काल प्रधान राजपाट था या नहीं यह निश्चित नहीं। विविध अट्टालिका और दुर्ग प्रभृति में इस वंश के राजत्व काल की खोदित लिपि विद्यमान हैं, उस से ज्ञात होता है कि मौरी राजा गण उस समय में विलक्षण पराक्रमशाली थे।

बाप्पा जब चित्तौर में उपस्थित हुए तात्काल में मोरीवंशीय मान राजा सिंहासनारूढ़ थे। चित्तौर के राजवंश के साथ उन का

---

* मेवार के राजधानी उदयपुर के पूर्व्व भाग में प्रवेश करने को रास्ते में कोस के अन्दर नाहरमगरा पर्व्वत अवस्थित है। इस पर्व्वत में राजा और ततपारिषद वर्ग मृगया काल में उपवेशन करते थे। उन लोगों के बैठने के स्थान सब अद्यापि असंस्कृत और जीर्ण अवस्था में पतित हैं।

† कथित है वह करवाल अद्यावधि विद्यमान हैं। राणा प्रति वत्सर में निरूपित दिवस में उस की पूजा करते हैं।

सम्बन्ध था * सुतरां विशेष समादर से राजा ने उन को सामन्त पद में अभिषिक्त करके तदुचित भूमि वृत्ति प्रदान किया। चित्तोर के सरदार गण सैनिक नियम भोग करते थे †। वे लोग समुचित सम्मानभाव से इति पूर्व्व में मान राजा के ऊपर बिरक्त हो रहे थे। एक आगन्तुक बाप्पा के ऊपर उन के समधिक अनुराग सन्दर्शन से वे लोग और भी सातिशय ईर्षान्वित हुए। इसी समय में चित्तौर राज विदेशीय शत्रु कर्तृक आक्रान्त होने से सर्दार लोग युद्धार्थ आहुत हुए, परन्तु उन लोगों ने युद्धोद्योग नहीं किया। अधिकन्तु सैनिक नियमानुसार भुक्त भूमि का पट्टा प्रभृति दूर निक्षेप करके साहङ्कार वाक्य बोले कि राजा अपने प्रियतर सरदार को युद्धार्थ नियोग करें।

बाप्पा ने यह सुन कर उपस्थित युद्ध का भार ग्रहण करके चित्तौर से यात्रा किया। सरदार गण यद्यपि भूमि-वृत्ति-वञ्चित हुए

---

* बाप्पा की माता प्रमारवंशीया थी। सुतरां वर्त्तमान प्रमारा के सहित मामा भागिनेय का सम्बन्ध था।

† सैनिक नियम (Feudal System) इस नियमानुसार से भुक्त भूमि के कर के परिवर्त्त में प्रत्येक सरदार को अपने अपने वृत्ति भूमि के परिमाणानुरूप नियमित संख्या की सेना ले कर विग्रह समय में विपक्ष के साथ संग्राम करना होता है। प्राचीनकाल में वृहत् वृहत् राज्य भूमि संक्रान्त यह नियम प्रचलित था। राजा और सरदारगण के मध्य और सरदार और तदधीन साधारण प्रजावर्ग के मध्य पूर्व्वोक्त मूल नियम के आनुषंगिक अन्यान्य नियम समुदय पृथक् पृथक् रूप से व्यवसित करते थे। राजस्थान के सैनिक नियम का विवरण इतः पर पृथक् एक खण्ड में सविस्तार से प्रकटित होगा।

थे तथापि लज्जावशतः बाप्पा के अनुगामी हुए। समर में विपक्ष गण ने पराजित होकर पलायन किया। बाप्पा ने सरदार गण के साथ चित्तौर में प्रत्यागत न होकर स्वीय पैत्रिक राजधानी गाजनी नगर में गमन किया। सलीम नामक जनैक असभ्य उस काल में गाजनी के सिंहासन पर था। बाप्पा ने सलीम को दूरीभूत करके वहां का सिंहासन जनैक चौर वंशीय राजपूत को दिया और आप पूर्वोक्त असन्तुष्ट सरदार गण के साथ चित्तौर प्रत्यागमन किया। कथित है कि बाप्पा ने इस समय सलीम की कन्या का पाणिग्रहण किया था। जातरोष सरदार गण ने चित्तौर राजा के साथ बैर-निर्यातन में कृतसङ्कल्प होकर सब ने एक वाक्य होकर नगर परित्याग करके अन्यत्र गमन किया। राजा ने उन लोगों के साथ सन्धि करने के मानस से बारम्बार दूत प्रेरण किया, किन्तु किसी प्रकार सरदार गण का कोप शान्त नहीं हुआ। उन लोगों ने कहा, " हम लोगों ने राजा का नमक खाया है इस से एक वत्सर काल मात्र प्रतीक्षा करेंगे। अनन्तर उन को व्यवहार के विहित प्रतिशोध देने में त्रुटि न करेंगे।" बाप्पा के वीरत्व और उदार प्रकृति के वशम्वद होकर सरदार गण ने उन को चित्तौर का अधिपति करने का अभिप्राय प्रकाश किया। बाप्पा ने सरदार गण के सहायता से चित्तौर नगर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। भट्ट कविगण ने लिखा है " बाप्पा मोर राजा के निकट से चित्तौर ले कर स्वयं उस के " मौर " (अर्थात् मुकुट सुरूप) हुए। चित्तौरप्राप्ति के पश्चात् सर्व्व सम्मति से बाप्पा ने 'हिंदूसूर्य्य' 'राजगुरु' और 'चक्रवै' यह तीन उपाधि धारण किया था। शेषोक्त उपाधि का अर्थ सार्व्व भौम।

बाप्पा के अनेक पुत्र हुए थे। उन में किसी किसी ने स्वीय वंश के प्राचीन स्थान सौराष्ट्र राज्य में गमन किया। आईन अकबरी ग्रन्थ में लिखा है कि अकबर सम्राट के समय में इस वंश के पचास सहस्र पराक्रान्त सरदार सौराष्ट्र देश में वास करते थे। बाप्पा के अपर पांच पुत्र ने मारवाड़ देश में गमन किया था। गोहिल-बाल नामक स्थान में गोहिल वंशीय भी बाप्पा की सन्तान हैं। परन्तु वे लोग अपने वंश का मूल विवरण आप भूल गए हैं। इति पूर्व्व में उन लोगों ने चीर * प्रदेश में आ कर बास किया था। और अब पूर्व्व काल के पूर्व्व पुरुषगण के नाम वा वंश का अन्य कोई विवरण वह लोग नहीं बतला सकते। घटना क्रम से उन लोगों ने बालभी ग्राम में बास भी किया, किन्तु यह नहीं जाना कि यही स्थान उन लोगों की पैत्रिक भूमि है। यह लोग अब अरब गण के सहबास से वाणिज्य कर के जीविका निर्व्वाह करते हैं।

बाप्पा के चरम काल का विवरण सर्व्वापेक्षा आश्चर्य्य है। कथित है परिणत वयस में उन्हों ने स्वीय राज्य सन्तान गण को परित्याग कर के खुरासान राज्य में गमन किया था, और तद्देश अधिकार कर के म्लेच्छ वंशीय अनेक रमणिका पाणिग्रहण किया था। इन सब रमणी के गर्भ से बहुसंख्यक सन्तान समुत्पन्न हुए थे।

सुना जाता है कि एक शतवर्ष की अवस्था में बाप्पा ने शरीर त्याग किया। देलवारा प्रदेश के सर्दार के निकट एक ग्रन्थ है उस में लिखा है कि बाप्पा ने इस्पहान, कन्दहार, कश्मीर, इराक,

---

* मारवाड़ प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम प्रान्त में लूणी नदी के निकट चीर भूमि है।

तूरान और काफरिस्तान प्रभृति देश अधिकार कर के तत् समुदय देशीया कामिनियों का पाणिपीड़न किया था। उन म्लेछ महिला के गर्भ से उन को १३० पुत्र जन्मे थे। उन लोगों को साधारण उपाधि " नौशीरा पठान " है। उन सब पुत्रों में से प्रत्येक ने अपने अपने मात्रिनामानुयायी नाम से एक एक वंश विस्तार किया है। बाप्पा के हिन्दू सन्तान की संख्या भी अल्प नहीं। हिन्दू महिला गण के गर्भ में उन्हों ने ९८ पुत्र सन्तान उत्पादन किया था उन लोगों की उपाधि " अग्नि उपासी सूर्य्यवंशीय " है। उक्त ग्रन्थ में लिखा है, बाप्पा ने चरम काल में संन्यास आश्रम अवलम्ब कर के सुमेरु शिखर * मूल में अवस्थिति किया था, उन का प्राण त्याग नहीं हुआ है जीवदशा में ही इस स्थान में उन की समाधि क्रिया सम्पन्न हुई थी। अन्यान्य प्रवाद में कथित है

---

* कोई कोई कहते हैं हिंदू ग्रन्थानुसार पृथ्वी के उत्तर केन्द्र का नाम सुमेरु। किसी किसी ग्रन्थ में सुमेरु तद्रूप अर्थ में व्यवहृत हुआ है, परन्तु पुराण के वर्णन से अनुमान होता है कि किसी विशेष पर्व्वत का नाम सुमेरु है। जम्बू द्वीप के मध्य इलावृत्त वर्ष में " कनकाचल सुमेरु विराजमान है, इस के दक्षिण में हिमवान हेमकूट और निषध पर्व्वत, उत्तर नील और श्वेत पर्व्वत। " चन्द्रवंश को आदि पुरुष इला स्त्री रूप में जहां " आवृत्ति " हुए थे, उस का नाम इलावृत्ति वर्ष। " सुमेरु के दक्षिण में प्रथमतः भारतवर्ष " इस से अनुमान होता है कि मध्य एशिया का नाम इलावृत्त वर्ष। अनुसन्धान करने से सुमेरु आविष्कृत हो कर पौराणिक भूगोल वृत्तान्त का अधिकांश परिष्कृत हो सक्ता है। केवल नाम परिवर्त्तित हो कर इतना गबड़ा हुआ। कोई कोई कहते हैं कि पेशावर और जलालाबाद के मध्यस्थल में प्रायः चौदह सौ हस्त उच्च मारकोह नाम अति अनुर्व्वर जो एक पर्व्वत है

णिक सुमेरु है।

कि वाप्पा की अंत्येष्टि क्रिया सम्बन्ध में उन के हिन्दू और म्लेछ प्रजागण के मध्य तुमुल कलह उपस्थित हुआ था। हिन्दू लोग उन का शरीर अग्निदग्ध और म्लेच्छ लोग मिट्टी में प्रोथित करने को कहते थे। उभय दल ने इस विषय का विवाद करते करते शव का आवरण खोल कर देखा शव नहीं है तत् परिवर्त्तन में कतिपय प्रफुल्ल शतदल विराजमान हैं। उन लोगों ने वह सब कमल ले कर हृद में रोपन कर दिया था। पारस्य देश के नौशेरवां की और काशी के प्रसिद्ध भगवद्भक्त कबीर की अन्त्येष्टि क्रिया का प्रवाद भी ठीक ऐसा ही है।

मिवाड़ के राजवंश के प्रधान पुरुष वाप्पा का यह संक्षेपक इतिहास प्रकटित किया गया। प्राचीन कालीन अन्यान्य राज-पुरुष के भांति वाप्पा की कहानी भी सत्यमिथ्या से मिलित है। किन्तु इस विचार को छोड़ कर चित्तौर के सिंहासन में सूर्य्यवंशी राजगण ने दीर्घ कालावधि जो आधिपत्य किया था, उस आधि-पत्य का वाप्पा ही से प्रारम्भ है इस कारण गिहलोट गण का चित्तौर का राजत्व कितने दिन का है यह निरूपण करने को वाप्पा का जन्मकाल का निरूपण करनी अत्यन्त आवश्यक है। वल्लभीपुर २०५ संवत् में शिलादित्य के समय में विनष्ट हुआ था। शिलादित्य से वाप्पा दशम पुरुष, परन्तु आश्चर्य्य का विषय यह है कि उदयपुर के राजभवन की वंशपत्रिका में वाप्पा का जन्म-काल १९१ संवत् में लिखा है। विशेषतः चित्तौर की एक खोदित लिपि से प्रकाश हुआ था कि ७७० संवत् में चित्तौर नगर मोरी वंशीय मान राजा के अधिकार में था। इसी मान राजा के समय

में असभ्य गण ने चित्तौर नगर आक्रमण किया था। उन लोगों को पराभव कर के उस के पश्चात् बाप्पा ने पञ्चदश वर्ष की अवस्था में चित्तौर का सिंहासन प्राप्त किया था। इस कारण ईदृश विवरण से बाप्पा का जन्मकाल १६१ संवत् किसी प्रकार स्वीकृत नहीं हो सक्ता। परन्तु उदयपुर के राजवंश के कुलाचार्य्य भट्ट गण पूर्व्वोक्त समुदय घटना स्वीकार कर के भी कहते हैं कि बाप्पा ने १६१ संवत् में जन्म ग्रहण किया था। टाड साहब ने अनेक अनुसन्धान कर के अवशेष में सौराष्ट्र देश में सोमनाथ के मन्दिर की एक खोदित लिपि से जाना था कि वल्लभी संवत् नाम का एक और भी संवत् प्रचलित था। वह संवत् विक्रमादित्य की संवत् से ३७५ बरस के पश्चात् प्रारम्भ हुआ था,२०५ वल्लभी सम्वत् में वल्लभीपुर विनष्ट हुआ था, सुतरां विक्रमादित्य के संवतानुसार उस के विनाश का काल ५८० हुआ। जिस प्रणाली से टाड साहब ने चित्तौर के मान राजा का राजत्व, वल्लभीपुर का विनाश और कुलाचार्य्य गण लिखित बाप्पा के जन्मसमय का परस्पर समन्वय साधन किया है वह विलक्षण बुद्धि व्यञ्जक है, परंतु जटिल और नीरस है इस कारण सविस्तर से इस स्थान में प्रकटित नहीं किया। उस की मीमांसा का स्थूलतात्पर्य्य यह कि वल्लभीपुर विनाश के १६० बरस पश्चात् विक्रमादित्य के ७६६ संवत् में बाप्पा ने जन्म ग्रहण किया था। कुलाचार्य्य गण ने भ्रम वशतः इस १६० संख्या को विक्रमादित्य का संवत कर के लिखा है। तत् पश्चात् पञ्चदश वर्ष की अवस्था में बाप्पा चित्तौर राज्य में अभिषिक्त हुए थे। सुतरां ७८४ संवत् उन का चित्तौर प्राप्तकाल निरूपित हुआ।

उस समय से सार्द्ध एकादश वत्सरावधि बाप्पा के वंशीय ६० राजा गण ने क्रमान्वय से चित्तौर के सिंहासन पर उपवेशन किया है।

यद्यपि भट्ट गणं के ग्रन्थानुयायी बाप्पा के जन्मकाल की प्राचीनत्व रक्षा नहीं हुई, परन्तु जो समय टाड साहब ने निरूपित किया है वह भी नितान्त आधुनिक नहीं है। तदनुसार प्रकाश होता है कि बाप्पा फरासी राजा के करोली भिञ्जिया वंशीय राज गण के और मुसल्मान साम्राज्य के वलीद खलीफा के समकालवर्ती थे।

आइतपुर * नगर से मिवाड़वंशीय और एक खोदित लिपि संगृहीत हुई थी। वह लिपि १०२४ संवत् समय की है तत्कालीन चित्तौर के सिंहासन में बाप्पा के वंशीय शक्ति कुमार राजा प्रतिष्ठित थे। उस लिपि में शक्ति कुमार के चतुर्द्दश पुरुष के मध्य एक जन शील नाम से अभिहित हुए हैं। राजभवन की वंशावली अपेक्षा तल्लिपि में यही एक मात्र अतिरिक्त नाम लक्षित होता है, तद्भिन्न और सब विषय में समता है। इङ्गलैंड के प्रसिद्ध कवि ह्यूम ने कहा है " यद्यपि कविगण सूक्ष्म सत्य के तादृश्य अनुरागी नहीं, और यदिच वह इतिवृत्त का रूपान्तर कर देते हैं, तो भी उन लोगों की अत्युक्ति के मूल में सत्य की सत्वालक्षित होती है " हम वर्णित विषय में ह्यूम की एतदुक्ति का सारत्व प्रतीयमान होता है। जन समागम शून्य स्वापद पूर्ण आइतपुर के कानन में जो सब नाम बिलुप्त हो जाते और उन सब नामों के कभी किसी के

* आइतपुर—सूर्य्यपुर। आदित्य शब्द का अपभ्रंश आइतं। आइत शब्द का संकीर्ण रूप एत, यथा एतवार आदित्यवार।

कर्णगोचर होने की संभावना नहीं थी, किन्तु भट्ट कविगण की वर्णना प्रभा में मिवाड़ राजवंश के प्राचीन काल के वह सब नाम चिरस्मरणीय हो रहे हैं।

इस १०२४ संवत् समय में वलीदखलीफा के सेनापति महम्मद बिन्कासिम ने भारतवर्ष में आकर सिन्धु देश जय किया था। इस के पहिले मोरी वंशीय मानराजा के समय जिस असभ्य राजा ने चित्तौरनगर आक्रमण किया था और वाप्पा कर्तृक जो पराजित हुआ था, वह अनुमान होता है कि यही बिन कासिम है।

बाप्पा और शक्ति कुमार के मध्यवर्त्ती ६ राजा ने चित्तौर में राजत्व किया था। उस समय से दो शत वर्ष के मध्य में ६ जन राजा का राजत्व असम्भव नहीं। तदनुसार मिवार के इतिवृत्त का निम्नोक्त चार प्रधान काल निरूपित हुआ। प्रथम, कनकसेन का काल १४४। द्वियीय, शिलादित्य और बल्लभीपुर विनाश का काल ५२४। तृतीय, बाप्पा के चित्तौर प्राप्ति का काल खृष्टाब्द ७२८। चतुर्थ, शक्तिकुमार का राजत्व काल खृष्टाब्द १०६८।

तृतीय अध्याय।

बाप्पा और समर सिंह के मध्यवर्त्ती राजगण, बाप्पा का वंश अरब जाति के भारतवर्ष आक्रमण का विवरण, मुसलमानगण से जिन सब राजाओं ने चित्तौर नगर रक्षा किया था उन लोगों की तालिका।

७८४ संवत् में बाप्पा को चित्तौर सिंहासन प्राप्त हुआ था। मिवार के इतिवृत्त में तत्परवर्त्ती प्रधान समय समर सिंह का

राजत्व काल—संवत् १२४६। अतएव बाप्पा के ईरान राज्य गमन के समय ८२० संवत् से समर सिंह के समय पर्य्यन्त भट्टगण के ग्रन्थानुसार मिवार राज्य का वृत्तान्त संपूति पूकटित होता है। समर सिंह का राजत्व काल केवल मिवार के इतिवृत्ति का पूधान काल नहीं, स्वरूपतः समुदय हिन्दू जाति के पक्ष में एक पूधान समय है। उन के राजत्व समय में भारतवर्ष का राज किरीट हिन्दू के सिर से अपनीत हो कर तातारी मुसलमान के सिर में आरोपित हुआ था। बाप्पा के समर सिंह के मध्य चार शताब्दी काल का व्यवधान है। इस काल के मध्य में चित्तौर के सिंहासन पर अष्टादश राजाओं ने उपवेशन किया था। यदिच उन लोगों का राजत्व का विशेष बिवरण प्राप्त नहीं होता, तौ भी नितान्त नीरव में तत्तावत् काल उल्लङ्घन करना उचित नहीं। उन सब राजा को लोहितवर्ण पात का सुवर्णमयी प्रतिमा से शोभमान चित्तौर के सौध शिखर पर उड्डीयमान थी और तन्मध्य में अनेक का नाम उन लोगों के राज्यस्थ शैल शरीर में लोह लेखनी की लिपि योग से अद्यावधि विद्यमान है।

इस के पहिले आइतपुर की जिस खोदित लिपि का उल्लेख किया है, उस से बाप्पा और समर सिंह के मध्यवर्ती शक्ति-कुमार राजा का राजत्व काल संवत् १०२४ निरूपित हुआ। जैन ग्रन्थ से ज्ञान होता है कि शक्तिकुमार के चार पुरुष पूर्व्ववर्ती उन्नत नाम राजा ६२२ संवत् में चित्तौर के सिंहासनारूढ़ हुए थे। ७६४ खृष्टाब्द में बाप्पा ने ईरान देश में गमन किया। ११६३ खृष्टाब्द में समर सिंह के समय में हिन्दू राजत्व का

अवसान हुआ। इस उभय घटना के मध्यवर्ती समय में मिवार राज्य और एक बार मुसलमान गण से आक्रान्त होने का विवरण राजवंश के ग्रन्थ में प्राप्त होता है। तत्काल खोमान नामक एक राजा चित्तौर के सिंहासनस्थ थे। उन के राजत्व काल में ८१२ से ८३६ खृष्टाब्द के अन्तर्गत किसी समय में मुसलमानों ने चित्तौर नगर आक्रमण किया था। खोमान रास नामक ग्रन्थ में तत् आक्रमण संक्रांत वृत्तांत सविस्तार निवृत्त हुआ है। मिवार राज्य के पद्य विरचित इतिहास ग्रन्थ समूह के मध्य खोमानरास सर्व्वापेक्षा पुरातन है।

टाड साहब कहते हैं भातवर्ष का एतत् समय का इतिवृत्त नितान्त तमसाच्छन्न है। इस कारण खोमानरासा प्रभृति हिन्दू ग्रन्थ से तत् संबंध में जो कुछ आलोक लाभ हो सकता है वह परित्याग करना उचित नहीं। भारतवर्ष में एतत् काल में जो सब ऐतिहासिक विवरण सत्य कह कर प्रसिद्ध है सो हिन्दू ग्रन्थ में लिखित विवरण अपेक्षा अधिक असङ्गता वा परिच्छन्न नहीं। जो हो, तदुभय एकत्रित रहने से भावि कालीन इतिवृत्तप्रणेता उस में से अनेक उपकरण लाभ कर सकेंगे। इस कारण (मुसलमान साम्राज्य के आरम्भ से गजनवार राज्य संस्थापन पर्य्यन्त) भारतवर्ष में अरब जाति के समागम का संक्षिप्त विवरण इस अध्याय में सन्निविष्ट किया जायगा। परन्तु अरब समागम का सविस्तार विवरण विशिष्ट कोई ग्रन्थ नहीं मिलता यह बड़े शोच को बात है। अलमकीन नामक ग्रन्थकार ने खलीफा गण के इतिवृत्त में भारतवर्ष का प्रायः उल्लेख नहीं किया है।

अबुलफ़जल के ग्रन्थ में अनेक विषय का सविशेष विवरण प्राप्त होता है और वह ग्रन्थ भी विश्वास के योग्य है। फरिस्ता ग्रन्थ में इस विषय का एक पृथक् अध्याय है, परन्तु उस का अनुवाद यथोचित मत से निष्पन्न नहीं हुआ है *। अब पहिले बाप्पा के वंशीय राजगण का वृत्तान्त विवरित किया जाता है, पश्चात् यथायोग्य स्थान में मुसलमान गण का भारतवर्ष संक्रान्त इतिवृत्त प्रकटित होगा।

गिहेलिट वंश की चतुर्विंशति शाखा। तन्मध्य अनेक शाखा बाप्पा से समुत्पन्न। चित्तौर अधिकार के पश्चात् बाप्पा ने

---

* टाड साहब ने फ़िरिस्ता के अनुवाद में जो सब विषय परित्याग किया है तन्मध्य में अफ़गान जाति की उत्पत्ति का विवरण अतीव प्रयोजनीय। मुसलमान गण के साथ हिजरी ६२ अब्द में जिस काल में अफ़गान जाति का प्रथम आगमन हुआ तब वे लोग सुलेमान पर्व्वत के निकटस्थ प्रदेश में बास करते थे। फ़िरिस्ता ने जिस ग्रन्थ के ऊपर निर्भर कर के अफ़गान का विवरण लिखा है वह यह है "अफ़गान लोग कायर जाति के लोग फिर उस उपाधिकारी राजगण के आधीन बास करते थे उन लोगों में बहुतों ने मूसा की प्रतिष्ठित नूतन धर्म्म व्यवस्था अवलंबन किया था। जिन लोगों ने पूर्व्व की पौत्तालिकता त्याग नहीं किया वे लोग हिन्दुस्तान से भाग कर कोह—सुलेमान के निकटवर्त्ती देश में वास करते थे। सिन्धु देश से आगत बिनकासिम के साथ उन लोगों का समागम हुआ था। हिजरी १४३ अब्द में उन लोगों ने किरमान और पेशावर प्रदेश और तत् सीमा वर्ती समुदय स्थान अधिकार किया था।" कोहिस्थान का भूगोल वृत्तान्त, रोहिला शब्द की व्युत्पत्ति और अन्यान्य प्रयोजनीय विषय टाड साहब ने स्वीय अनुवाद में परित्याग किया है।

सौराष्ट्र देश में गमन कर बन्दर द्वीप के यूसुफगुल * नाम राजा की कन्या से विवाह किया। बन्दर द्वीप निवासी व्यानमाता नामक एक देवी को उपासना करते थे। बाप्पा ने इस देवी की प्रतिमा और स्वीय बनिता सह चित्तौर में प्रत्यागमन किया था। गिहलोट वंशीय अद्यावधि व्यानमाता की उपासना करते हैं। बाप्पा ने इस देवी को जिस मन्दिर में प्रतिष्ठित किया था, वह आज तक चित्तौर में विद्यमान हैं, तद्भिन्न तत्रत्य अन्यान्य अनेक अट्टालिका बाप्पा कर्तृक विनिर्म्मित हैं, यह भी प्रवाद प्रचलित है। यूसुफगुल के कन्या के गर्भ में बाप्पा को एक पुत्र जन्मा था, उस का नाम अपराजित। द्वारका नगरी के निकट वर्ती कालिवायो नगर के प्रमारा वंशीय जनैक राजा की कन्या से भी बाप्पा ने विवाह किया था। उस रमणी के गर्भ में इस के पहिले बाप्पा को और एक आसिल नामक पुत्र जन्मा था, यदिच आसिल ज्येष्ठ तथापि अपराजित चित्तौर में जन्मे थे, इस कारण उन्हों ने वहां का राज प्राप्त किया। आसिल सौराष्ट्र देश के किसी एक राज्य में राजा

---

* कथित है, समुद्र में बन्दर द्वीप और स्थल में चोयाल नामक स्थान यूसफगुल राजा के अधिकार में था। यूसफगुल चौर वंशीय राजपूत, अनल परम का संस्थापन कर्त्ता रेणु राज अनुमान होता है। इसी यूसफगुल का वृत्तान्त कुमार पालचरित नामक ग्रन्थ में लिखा है, रेणुराज के पूर्व्व पुरुष बन्दर द्वीप के अधिपति थे। बन्दर द्वीप आज कल पोर्त्तगीस जाति के अधिकार में है। इस का आधुनिक नाम डिओ है। यह नाम पोर्त्तगीस जाति प्रदत्त है।

हुए थे * उन की सन्तान परम्परा से वहां विपुल वंश विस्तार हुआ था। इस वंश की उपाधि आसिला गिहलोट है।

—:०:—

* आसिला के नामानुसार एक किला का आसिला नाम रक्खा था, यह वंश-पत्रिका से ज्ञात होता है। संग्रामदेव नामक जनैक राजा के निकट से कुंबायत (कांबे) नगर अधिकार करने के अभिलाष में आसिल के पुत्र विजयपाल समर में निहत हुए थे। विजय की इसी आकस्मिक मृत्यु घटना के पाहिले तद गर्भस्थ पुत्र अकाल में भूमिष्ठ हुआ था, उस पुत्र का नाम सेतु टाड साहब कहते हैं अस्वभाविक मृत्यु प्राप्त व्यक्तिगण भूतयोनि प्राप्त होते हैं। हिंदूगण का यह संस्कार है और स्त्री भूत का हिंदुस्तानी नाम चुरइल, सेतु की माता के अस्वाभाविक मृत्यु वशतः सेतु का वंश काचोराइल नाम से प्रसिद्ध हुआ। आसिल से द्वादशतम अधस्तन पुरुष बीजा गिरनार के राजा शृङ्गार देव के भांजे थे और मातुल के निकट से इन्हों ने सालन स्थान प्राप्त किया था। सुराट का राजा जयसिंह देव के साथ समर में बिजा निहत हुए थे। फिरिस्ता ग्रन्थ में जो देवी सालिमा वंश का उल्लेख है, अनुमान होता रहा है देवी और चोरइल, इन दो नाम के समता से तन्नाम की उत्पत्ति हुई है।

पुरावृत्त-संग्रह

अर्थात्

इतिहास सम्बन्धि बात।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

[क्ष]त्रियपत्रिकासम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह सङ्कलित.

[र]ाय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.

'खड्गविलास' प्रेस, बांकीपुर, पटना.
बाबू रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.
ह० सं० ३२—१९१७.

दूसरी वार।

पुरावृत्त-संग्रह।

—※—

[इस प्रबन्ध में प्राचीन पुस्तकें तथा राजा बादशाह आदि के वृत्त और आरम्भ में सर्कारी अमलदारी की दशा जो कुछ हाथ लगैगी प्रकाशित होगी]

अकबर और औरंगज़ेब।

———

काशी में राजा पटनीमल्ल बहादुर अग्रवाल कुल के भूषण हो गए हैं। इन के उद्योग, अध्यवसाय, साहस, धर्मनिष्ठा, गंभीर गवेषणा, बुद्धि और अपूर्व औदार्य सभी गुण प्रशंसा के योग्य हैं। कई वेर राजविप्लव में ऐसे लुट गए कि कुछ भी पास न रहा, किन्तु अपने उद्योग से फिर करोड़ों की सम्पत्ति पैदा किया। गया, काशी, मथुरा, वैतरणी, किस तीर्थ में इन के बनाए मन्दिर घाट, तालाव आदि नहीं हैं। कर्मनाशा का पक्का पुल अद्यापि इन की अतुल कीर्त्ति का चिन्ह वर्त्तमान है। फारसी विद्या के ये पारङ्गत थे। काशीखण्ड का सम्पूर्ण फारसी में इन्हों ने स्वयं अनुवाद किया है। और भी कई ग्रन्थों को हिन्दी और फारसी में इन्हों ने अनुवाद कराया था। वेद, स्मृति, पुराण, काव्य, कोष आदि

विषय मात्र की पुस्तकें इन्हों ने संग्रह की थीं। फारसी पुस्तकों के संग्रह को तो कोई बात ही नहीं। अंगरेज़ी यद्यपि स्वयं नहीं जानते थे किन्तु दस पन्द्रह हज़ार की पुस्तकें अंगरेज़ी भाषा की संग्रह की थीं और सब के ऊपर फारसी में उस का नाम विषय कवि मूल्य आदि का वृत्तान्त उन के हाथ का लिखा हुआ था। उन का सरस्वती भण्डार और औषधालय तीन लाख रुपये का समझा जाता था। किन्तु हाय! वह अमूल्य भण्डार नष्ट हो गया। कीट दीमक छुईमुई चूहे आदि उन अमूल्य ग्रन्थों को खा गए। उन के स्वकार्य निपुण छ पौत्र और अनेक प्रपौत्रों के होते भी यह अमूल्य संग्रह भस्मावशेष हो गया। मैं ने दो बेर इस भण्डार का दर्शन किया था। रुपये का चार आना तो पहली ही बेर देखा था दूसरी बेर एक आना मात्र बचा पाया। सो भी खण्डित छिन्न भिन्न। उस पुण्य-कीर्ति-उदार-मनुष्य की उदारता और अध्यवसाय और उस के संगृहीत वस्तु की यह दुर्दशा देख कर मेरी छाती फट गई। इस्कन्दरिया का पुस्तकालय मानो अपनी आंखों से जला हुआ देख लिया। अस्तु! ईश्वर की यही गति है!! नाशान्ताः संचयः सर्वे !!!

उन के प्रपौत्र और अपने फुफेरे भाई राय प्रह्लाद दास से कह कर उस संग्रह की भस्मावशिष्ट हड्डियों में से मैं टूटे फूटे दस पांच ग्रन्थ ले आया हूं। इन में कुछ सर्कारी पुराने छपे हुए कागज़ और कुछ खण्डित पुस्तकें हैं। इस प्रबन्ध में बहुत सी बात उन्हीं सबों में से चुन कर लिखी जायंगी, इस हेतु उस सुगृहीतनामा महापुरुष का भी थोड़ा वृत्तान्त लिखे विना जी न माना।

प्रकृति मनुसरामः

मैं ने बादशाहदर्पण नामक अपने छोटे इतिहास में अकबर और औरङ्गज़ेब की बुद्धि और स्वभाव का तारतम्य दिखलाया है। अब पूर्वोक्त राजा साहब की अङ्गरेज़ी कितावों में सन् १७८२ से लेकर १८०२ तक के जो पुराने एशियाटिक रिसर्चेज़ के नम्बर मिले हैं उन में जोधपुर के राजा जशवन्त सिंह का वह पत्र भी मिला है जो उन्हों ने औरङ्गज़ेब को लिखा था और श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० ने भी अपने इतिहास में जिस का कुछ वर्णन किया है। तथा मेरे मित्र पण्डित गणेश रामजी व्यास ने मुझ को कुछ पुस्तकें प्राचीन दी हैं, उन में महा कवि कालिदास के बनाए सेतुबन्ध काव्य की टीका मिली है, जिस में कुछ अकबर का वर्णन है। इन दोनों को हम यहां प्रकाश करते हैं, जिस से पूर्वोक्त दोनों बादशाहों का स्पष्ट चित्त और विचार Policy प्रकट हो जायगी।

यह टीका राजा रामदास कछवाहे की बनाई है। अपना वंश उस ने यों लिखा है। कुलदेव को क्षेमराज उन के पुत्र माणिक्य राय फिर क्रम से मोकलराय-धीरराय, नापाराय, (उन के पौत्र) पातलराय; खानाराय, चन्दाराय और उदयराज हुए। इन्हीं उदयराज का पुत्र रामदास हुआ, जो सर्व भाव से अकबर का सेवक है। अकबर के विषय में वह लिखता है :—

श्लोक ।

आमेरोरासमुद्रादवति वसुमतीं यः प्रतापेन तावत् ।
दूरे गाःपाति मृत्योरपि करममुचत्तीर्थवाणिज्य वृत्योः ।
अप्यश्रौषीत् पुराणं जपति च दिनकृन्नाम योगं विधत्ते ।
गङ्गाम्भोभिन्नमम्भो न च पिवति जयत्येषजल्लालुदीन्द्रः ॥ ३ ॥
अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गं-सिलिहट्ट-तिपुरा-कामता-कामरूपा
नान्धं कर्णाट-लाट द्राविड़-मरहट्ट द्वारका-चोल-पण्ड्यान् ।
भोटान्न मारूवारोत्कलमलयखुरासानखान्धारजाम्बू ॥
काशी-काश्मीर ढक्का बलक-बदखशा-काबिलान् यःप्रशास्ति ॥४॥
कलियुगमहिमाऽपचीयमानश्रुतिसुरभिद्विजधर्मरक्षणाच ।
धृतसगुणतनं तमप्रमेयं पुरुषमकव्वरशाहमानतोस्मि ॥ ५ ॥

अर्थ—जो समुद्र से मेरू तक पृथ्वी को पालता है, जो मृत्यु से गउओं की रक्षा करता है, जिस ने तीर्थ और व्यापार के कर छुड़ा दिए, जिस ने पुरान सुने, जो सूर्य्य का नाम जपता, जो योग्य धारण करता है और गंगाजल छोड़ कर और पानी नहीं पीता उस जलालुद्दीन की जय ॥ ३ ॥

अंग वंग कलिंग सिलहट्ट तिपुरा कामता (कामटी ?) कामरूप अंधं कर्णाटक लाट द्रविड़ महाराष्ट्र द्वारका चोल पांड्य भोट मारवाड़ उड़ीसा मलय खुरासान कंदहार जम्बू काशी ढाका बलख बदखशा और काबुल को जो शासन करता है ॥ ४ ॥

कलियुग की महिमा से घँटते हुए वेद गऊ द्विज और धर्म की रक्षा को सगुन शरीर जिस ने धारण किया है उस अप्रमेय पुरुष अकबरशाह को हम नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥

पाठक गण ! अकबर की महिमा सुनी, यह किसी भाट की बनाई नहीं है एक कट्टर कछवाहे क्षत्रिय महाराज की बनाई है इसी से इस पर कौन न विश्वास करेगा। उस ने गो-वध बंद कर दिया था यह कवि परम्परा द्वारा तो श्रुत था अब प्रमाण भी मिल गया। हिन्दूशास्त्रों को वह सुना करता था। यह तो और इतिहासों में लिखा है कि वह आदित्यवार को पवित्र समझता है। देखिए उस के इस कार्य से गायत्री के देवता सूर्य के आदर से हिन्दूमात्र उस से कैसे प्रसन्न हुए होंगे। मैं समझता हूं कि उस समय सूर्यवंशी राजा बहुत थे और सूर्य को यह सम्मान दिखा कर अकबर ने सहज उन लोगों का चित्त वश कर लिया था। योग साधने से हिन्दुओं की प्रसन्नता और शरीर की रक्षा दोनों काम हुए। विशेष यह बात जानी गई कि वह गंगाजल छोड़ कर और पानी नहीं पीता था। यह उस की सब क्रिया हिंदुओं के वश करने को एक महामोहनास्त्र थीं। इसी से उस को परमेश्वर का अवतार तक कहने में हिंदुओं ने संकोच न किया। उस को लोग जगद्‌गुरु पुकारते थे यह आगे वाले महाराज जसवन्त सिंह के पत्र से प्रकट होगा। इस के विरुद्ध औरंगज़ेब से हिंदुओं का जी कैसा दुःखी था और उस समय राज्य की भी कैसी अवनति थी यह भी इस पत्र ही से प्रकट हो जायगा हम विशेष क्या लिखें।

विदित हो कि इस पत्र के लेखक महाराज जसवन्त सिंह जोधपुर के महाराज गज सिंह के द्वितीय पुत्र थे। सन् १६३८ में गज सिंह युद्ध में मारे गए। अपने बड़े पुत्र अमर सिंह को अति

क्रूर और प्रजापीड़क समझ कर गज सिंह ने त्याग कर दिया। यही अमर सिंह फिर शाहजहान के दर्बार में रहा और वहां भी अपनी उद्धतता से एक दिन काम पर हाजिर नहीं हुआ। इस पर शाहजहां ने उस पर जुर्माना किया। जुर्माना अदा करने को सलाबत खां खजानची को भेजा। उस का भी अमर सिंह ने निरादर किया। इस पर बादशाह ने उस को दरबार में बुला भेजा। यह अति क्रोधावेश में एक कटार लिए हुए दर्बार में निर्भय चला गया। बादशाह को क्रोधित देख कर रोषानल और भी भड़का। पहले सलावत का प्राण संहार किया फिर वही शस्त्र बादशाह पर चलाया। खम्भे में लग कर कटार गिर पड़ी, किंतु उस आघात में बल इतना था कि खम्भे का दो अंगुल पत्थर टूट गया * दर्बार में चारों ओर हाहाकार हो गया। पांच बड़े बड़े मोगल सर्दारों को अमर ने और मारा। अंत में उस को उस का साला अर्जुन गोरा (बूंदी का राजकुमार) पकड़ने चला, तो उस से भी लड़ा और उसी की तलवार से गिरा भी। अब तक तख्त पर लहू की छींट और टूटा हुआ खम्भा उस के इस बीर दर्प का चिन्ह आगरे के किले में विद्यमान है। लाल किले का दरवाजा जिस से अमरसिंह आया था बुखारा दरवाजा कहलाता था; उस दिन से अमर फाटक कहलाता है। उस के सरदार चंपावत गोती और

---

* आनि के सलावत खां जोर कै जनाई बात तोरि धर पंजर करेजे जाय करकी।
दिल्लीपति नाह के चलन चलबे को भए गाज्यो राज सिंह को सुनो है बात बरकी ॥
कहै बनवारी बादशाह के तखत पास फरकि फरकि लोथ लोथन सों अरकी।
हिन्दुन की हद्द सह राखी तैं अमर सिंह करकी बड़ाई कै बड़ाई जमधर की ॥

कंपावत गोती भी दरबार में अपनी निज सैन्य लेकर घुस आए और बहुत से मुगलों को मार कर मारे गए। अमर सिंह की स्त्री बूंदी की राजकुमारी पति का देह लेने को उसी हल्ले में अपने योद्धाओं को लिये किले में चली आई और देह ले गई और डेरे में जा कर सती हो गई। इस घटना के वर्णन में राजपुताने में कई ग्रन्थ ख्याल आदि बने हैं और अब तक इस लीला को नट सुथरे-साही जोगी भवैये गवैये गाया करते हैं।

अथ पत्र।

"सब प्रकार की स्तुति सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर को उचित और आप की महिमा भी स्तुति करने के योग्य है जो चन्द्र और सूर्य की भांति चमकती है। यद्यपि मैं ने आज कल अपने को आप के हाथ से अलग कर लिया है किन्तु आप की जो सेवा हो उस को मैं सदा चित्त से करने को उद्यत हूं। मेरी सदा इच्छा रहती है कि हिन्दुस्तान के बादशाह रईस मिर्जा राजे और राय लोग तथा ईरान तूरान रूम और शाम के सरदार लोग और सातों बादशाहत के निवासी और वे सब यात्री जो जल या थल के मार्ग से यात्रा करते हैं मेरी सेवा से उपकार लाभ करें।

यह इच्छा मेरी ऐसी उत्तम है कि जिस में आप कोई दोष नहीं देख सकते। मैं ने पूर्वकाल में जो कुछ आप की सेवा की है, उस पर ध्यान कर के मुझ को अति उचित जान पड़ता है कि मैं नीचे लिखी हुई बातों पर आप का ध्यान दिलाऊं जिस में राजा और प्रजा दोनों की भलाई है। मुझ को यह समाचार मिला है

कि आप ने मुझ शुभचिन्तक के विरुद्ध एक सैना नियत की है और मैं ने यह भी सुना है कि ऐसी सैनाओं के नियत होने से आप का खजाना जो खाली हो गया है उस को पूरा करने को आप ने नाना प्रकार के कर भी लगाए हैं।

आप के परदादा महम्मद जलालुउद्दीन अकबर ने जिन का सिंहासन अब स्वर्ग में इस बड़े राज्य को ५२ बरस तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सब जाति के लोगों ने उस्से सुख और आनन्द उठाया। क्या ईसाई, क्या मूसाई, क्या दाऊदी, क्या मुसल्मान, क्या ब्राह्मण, क्या नास्तिक, सब ने उन के राज्य में समान भाग से राजा का न्याय और राज्य का सुख भोग किया। और यही कारण है कि सब लोगों ने एक मुंह होकर उन को जगत्गुरु की पदवी दिया था।

शाहनशाह मुहम्मदनूरुद्दीन जहांगीर ने जो अब नन्दनबन में बिहार करते हैं उसी प्रकार २२ बरस राज्य किया और अपनी रक्षा की छाया से सब प्रजा को शीतल रक्खा। और अपने आश्रित था सीमास्थित राजवर्ग को भी प्रसन्न रक्खा और अपने बाहु बल से शत्रुओं का दमन किया।

वैसे ही परम प्रतापी शाहजहां ने बत्तीस बरस राज्य करके अपना शुभ नाम अपने गुनों से विख्यात किया।

आप के पूर्व पुरुषों की यह कीर्ति है। उन के विचार ऐसे उदार और महत् थे कि जहां उन्हों ने चरन रक्खा विजय लक्ष्मी को हाथ जोड़े अपने सामने पाया और बहुत से देश और द्रव्य को अपने अधिकार में किया। किन्तु आप के राज्य में वे देश अब

अधिकार से बाहर होते जाते हैं और जो लक्षण दिखलाई पड़ते हैं उससे निश्चय होता है कि दिन दिन राज्य का क्षय ही होगा। आप की प्रजा अति दुःखी है और सब देश दुर्बल पड़ गये हैं। चारो ओर से बस्तियों के उजड़ जाने की और अनेक प्रकार की दुःख ही की बातें सुनने में आती हैं। जब बादशाह और शाहजादों के देश की यह दशा है तब और रईसों की कौन कहे। शूरता तो केवल जिह्वा में आरही है। व्यापारी लोग चारो ओर रोते हैं। मुसल्मान अव्यवस्थित हो रहे हैं। हिन्दू महा दुःखी हैं, यहां तक कि प्रजा को सन्ध्या को खाने को भी नहीं मिलता और दिन को सब मारे दुःख के अपना सिर पीटा करते हैं।

ऐसे बादशाह का राज्य के दिन स्थिर रह सकता है, जिस ने भारी कर से अपने प्रजा की ऐसी दुर्दशा कर डाली है? पूरब से पच्छिम तक सब लोग यही कहते हैं कि हिन्दुस्तान का बादशाह हिन्दुओं का ऐसा द्वेषी है कि वह ब्राह्मण से बड़ा योगी बैरागी और संन्यासी पर भी कर लगाता है और अपने उत्तम तैमूरी वंश को इन धनहीन उदासीन लोगों को दुःख देकर कलंकित करता है। अगर आप को उस किताब पर बिश्वास है जिस को आप ईश्वर का वाक्य कहते हैं तो उस में देखिए कि ईश्वर को मनुष्य मात्र का स्वामी लिखा है केवल मुसल्मानों का नहीं। उस के सामने गबर और मुसल्मान दोनों समान हैं। नानारंग के मनुष्य उसी ने अपने इच्छा से उत्पन्न किये हैं। आप के मसजिदों में उस का नाम लेकर चिल्लाते हैं और हिन्दुओं के यहां देवमन्दिरों में घंटा बजाते हैं, किन्तु सब उसी को स्मरण करते हैं। इस से किसी जात

को दुःख देना परमेश्वर को अप्रसन्न करना है। हमलोग जब कोई चित्र देखते हैं उसके चितेरे को स्मरण करते हैं और कवि की उक्ति के अनुसार जब कोई फूल सूंघते हैं उस के बनानेवाले को ध्यान करते हैं।

सिद्धान्त यह है कि हिन्दुओं पर जो आप ने कर लगाना चाहा है वह न्याय के परम विरुद्ध है। राज्य के प्रबन्ध को नाश करनेवाला है और बल को शिथिल करने वाला है तथा हिन्दुस्तान के नीत रीत के अति विरुद्ध है। यदि आप को अपने मत का ऐसा आग्रह हो कि आप इस बात से 'बाज न आवैं, तो पहिले राम सिंह से, जो हिन्दुओं में मुख्य है, यह कर लीजिए और फिर अपने इस शुभचिन्तक को बुलाइए, किन्तु यों प्रजापीड़न वा रण भङ्ग वीर धर्म्म और उदारचित्त के विरुद्ध है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आप के मंत्रियों में आप को ऐसे हानिकर विषय में कोई उत्तम मन्त्र नहीं दिया।"

महात्मा कर्नैल टाड साहब लिखते हैं कि यह पत्र महाराज जसवंत सिंह ने नहीं लिखा था महाराणा राज सिंह ने लिखा था।

यह प्रसिद्ध दानी कन्नौज के राजा गोबिन्दचन्द के अन्यतर दानपत्र की प्रति है। यह राजा बड़ा ही दानी था।

ताम्रपत्र।

स्वस्ति। अकुंठोत्कुण्ठवैकुंठकंठपीठलुठत्करः। संरम्भः सुरनारंभे सश्रियःश्रेयसेऽस्तुवः॥ १॥ आसीदशीतद्युति वंशजातक्ष्मापालमालासुदिवंगतासु। साक्षाद्विवस्वानिवभूरिधाम्ना नाम्ना

यशोविग्रहइत्युदारः ॥ २ ॥ तत्सुतोभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभंनिजं । येनायारमकूपार पारेव्यापारितयशः ॥ ३ ॥ तस्याऽभूत्तनयोनयैक-रसिकः क्रांतद्विषन्मंडलो विध्वस्ताद्धुतवीरयोध विजितः श्रीचन्द्र-देवोनृपः । येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवं । श्रीमद्गाधि-पुराधिराज्यसमसं दोविक्रमेनोर्जितं ॥ ४ ॥ तीर्थाणि काशिकुशिको-त्तरकोसलेन्द्रस्थानीयकानि परिपायताभिगम्य ॥ हेमात्मतुल्यमनि-शंददता द्विजेभ्यो येनांकिता वसुमती शतशस्तुलाभिः ॥ ५ ॥ तस्या-त्मजोमदनपालइतिक्षितीद्रचूडामणिर्विजययेनिजगोत्रचन्द्रः । यस्या-भिषेककलशोल्लसितैःपयोभिः प्रक्षालितंकलिरजःपटलंधरित्र्याः ॥६॥ यस्यासी द्विजयःप्रयाणसमये तुंगाचलौघश्चलन्माद्यत्कुंभिपद्-क्रमात्समसरत्त्रऽस्यन्ममहीमंडले । चूडारत्न विभिन्नतालुगलितस्त्या-नास्टगुद्भासितः शेषःपेशवशादितःक्षणमसौक्रोडेनिलीनाननः ॥ ७ ॥ तस्मादजायत निजायत बाहुबल्लिवध्धावरुध्धनवरराष्ट्र गजोनरेंद्रः । सांद्रामृतद्रवसुधा प्रभवो गवां यो गोविंदचंद्रइति चद्रइवांबुराशेः ॥८॥ नकथमप्यलभन्तरणक्षमां स्तिस्टषुदिक्षुगजानथतक्षिणः । ककुभिब-भ्रमुरभ्रमुवल्लभ प्रतिभटाइवयस्यघटागजाः ॥९॥

सोयं समस्तराजचक्रसंसेवितचरणः परमभट्टारक महाराजा-धिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निज भुजोपार्जित श्रीकान्यकुब्जा-धिपत्य श्रीचन्द्रदेवपादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वर श्रीमदनपाल देव पदानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध विद्याविचारवाचस्पति श्रीमद्गोविन्द-चन्द्रदेवो विजयी खरकापत्तलायां मधुवाग्राम निवासिनो

निखिलजन पदानुपगतानपि राजाराज्ञी युवराज मन्त्रिपुरोहित प्रतीहार सेनापति भांडागारिकाऽक्षपट लिकभिषग्नि मित्तिकान्तः पुरिकदूत करितुरगपत्तनाकरस्थानाऽऽगोकुलाधिकारि पुरुषान्स-माज्ञापयति बोधयत्यादिशतिच यथा विदितमस्तुभवतां यथोपरि-लिखितग्रामः सजलस्थलः संलोहलवणाकरः समत्स्यकारः सगर्तोखरः समधूकाम्रवनबाटिका विटपतृगप्रतिगोचरपर्यन्तश्चतुरा-घाटशुद्धस्वसीमापर्यन्तः सोद्धाधः संवत् ११६५ माघ बदि ६ सोमदिने प्रयागे वेण्यां स्नात्वा विधिवन्मन्त्राद्दे व मुनिमनुजभूत पितृणां स्तर्पयित्वा तिमिर पटल पाटन पटुसहस्रमुष्णरोचिष-मुपस्थायौषधिपतिंसकलसप्तभंस मभ्यर्च्य त्रिभुवनत्रातुर्वासुदेवस्य पूजां विधायप्रचुरपायसेनहविर्षा हविर्भुजंहुत्वा मातापित्रो रात्मनश्च पुण्यशोभिवृद्धये कौशिकगोत्राय कौशिकावदल्य विश्वामित्र देवरातत्रिप्रवराय पण्डित श्रीकैकप्रपौत्राय पण्डित श्रीमहादित्य पौत्राय पण्डित श्रीसात्तपुत्रायपण्डित श्रीविद्याकचसंभाराय ब्राह्मणाय अस्सा भिर्गोकर्णकुशलतापूतकरतलोदकपूर्वमाचंन्द्रार्कं यावदाशासनी कृत्यप्रदत्तोमत्तारायदीयमानभाग भोग कर प्रवणिकर प्रभृति समस्तादायानांविधियाश्रयदास्यन्निति भवन्तिचात्र। श्लोकाः।

भूमिंयःप्रातगृह्णाति यश्चभूमिंप्रयच्छति। उभौ तौपुण्यकर्माणौ नियतंस्वर्गगामिनौ॥ शंखंभद्रासनंछत्रं वराश्वावरवारणाः। भूमि-दानस्यचिन्हानि फलमेतत्पुरंदर॥ सर्वानेतान्भाविनःपार्थि वेंद्रान्-भूयोभूयो याचतेरामभद्रः। सामान्योयंधर्मसेतु र्नृपाणां काले-कालेपालनीयोभवद्भिः। बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिःसगरादिभिः॥ यस्ययस्ययदाभूमि स्तस्यतस्यतदाफलं। स्थलमेकंग्राममेकं भूमें-

र्प्येकमगुलं । हरश्नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवं । ठक्कुर श्रीवालिकेन लिखित मिदम् ।

काशी क्वीन्स कालिज (Queen's College Benares) के फाटक पर यह लेख है—

तालुकदार दाउदपुर के राय पृथ्वीपाल सिंह ने
अपने कीर्त्ति के लिये दो द्वार रचवाये ।

(१)

रामरास बाबू सुघर, वैश्यवंश औतार ।
हर्षचन्द्र तिन के तनय, रचवाये दुइद्वार ॥

(२)

राजा पटनीमल्ल के, पुत्र नारायण दास ।
रचवाये दुइद्वार यह, अचल कीत्ति के आस ॥

(३)

श्री देवकीनन्दन सुनुरासीघो जनकी पूर्वपद प्रसाद ।
तदङ्गजो द्वारमिदं द्रव्य धत राम प्रसन्नोपमहीध्ररोये ॥

(४)

श्री मत् बाबू देवकीनन्दन पौत्र उदार ।
बाबू रामप्रसन्नो सिंह रचवाये यह द्वार ॥ संवत १८०७ ॥

(५)

श्री बाबू भगवानदास बड़े दानि बिदित ।
मृजापुर बिच धाम तिन रचवाए द्वार दुई ॥

(६)

सुनय जानकिदास के, श्री बिश्वेश्वर दास ।
रचवाए दुइ दुवार बर, मुक्ति सुजस के आस ॥

(७)

राजा दर्सन सिंह के, सुत कुल अति उजियार ।
राजा रघुबरदयाल जस, चाहि किन दुइ दुयार ॥

(८)

इण्डियन म्यूज़ियम (Indian Musium) में एक पत्थर के मुंड़ेरे के एक टुकड़े पर नीचे की ओर निम्न लिखित लेख लिखा है। वह पत्थर अशोक के चारदिवाली का है, परन्तु यह लेख सन् ईसवो दो सौ बरस पहले का नहीं हो सकता। यह गुप्ताक्षर में पुराचीन रीति से लिखा है—

दी पढंका कता येषां दान × × मशमनिनाचार्य्य ।

—(:)—

अशोक के चारदिवाली के मुंड़ेरे के पत्थर पर निचली ओर निम्न लिखित लेख लिखा है। यह दो लाइन (पंक्ति) में है और प्रत्येक लाइन ६ फीट लंबा है।

१। कारितो यन्त्रवज्रासन बृहद्गर्म्भकुटी प्रंमादमर्द्ध त्रिकोट्यां भश्मतैर्म्मधुलेपकस्यपुन लटिकः गिक रेदगतुट मादन्यार्कतारकं भगवते बुद्धाय × × रदानेन घृतप्रदीपः × रारिध दिए प्रती समघने रदनी मायां च प्रदहं, घृतप्रदीपैः गुणे शतदानेनापरेण कारितः बिहारेपि भगवते रेत्यपद्ध ।

२। हग्रटां पात्तय नः धिकरो घमशत तं दं वं ग प्रदेप च च नं पं ××××पं ×मनीनू माधुरं लातीतं तदसं सव्वं चा प्रहतत × त्तनुमत्पादितं तदेतत् सर्व्वं यन्मया वुद्धौ प्रचेतम-भारंतन।

मेजर (Major Mead) ने बोधगया के बड़े मंदिर की एक कोठरी से एक मूर्तीं निकाली थी उस के पांव के समीप निम्न-लिखित लिपि थी—

इदमतितरचिरं सर्व्वं सत्वानुकम्पिने ।
भवनवरमदःरजितमाराय पतये ॥
सु (शु) द्धात्मा कारयामास बोधिमार्गरतोयतिः ।
बोधि षे (से) णा (नो) तिविख्यातो दत्तगल्लनिवासकः॥
भवबन्धविमुक्त्यार्थं पित्रोर्वन्धुजनस्य च ।
तथोपाध्यायपूर्वाणामाहत्राग्रनिवासिनां ॥ लो ॥

ए० ग्रोट साहिब (A. Grote Esqr.) प्रेसिडेन्ट बंगाल एसि-याटिक सोसाइटी ने निम्न लिखित लिपि, जो एक सांढ़ (नंदी) की मूर्ति के पीठ पर लिखी हुई है, एशियाटिक सोसाइटी में भेज दी थी। यह लेख कुटिलाक्षर (Kutila Character) में लिखा हुआ है। भीमकउल्ला के पुत्र श्री सुफंदी भट्टारक ने यह मूर्ति संवत् ७८१ में सन्तति के लिये चढ़ायी थी।

ए सम्ब ७८१ वैशाख बदि ६ परुध्य ग्रामत्र ×××× त्तम भिमक उल्लसुतेन श्री सुफन्दिनभट्टारक श्र (?) ग्र (?) रा मतया ××। त्मनापत्यहेतोः वृषभट्टारकप्रतिष्ठितेति ।

जनरल कनिङ्हम (General Cunningham) ने बोधगया के मन्दिर के फाटक के चूर के नीचे एक पत्थर देखा था जिस पर निम्न लिखित लिपि खुदी हुई है। यह लेख २० लाइन में है और कुटिलाक्षर में लिखा हुआ है।

(१) नमोबुद्धाय॥ आसीद्दृप्तनरेन्द्रवृन्दविजयी श्रीराष्ट्रकूटान्वयः श्रीमान्नन्द इति त्रिलोकविदितस्तेजस्विनामग्रणीः सत्येन प्रययेन शौचविधिना श्लाघ्येन विख्यापितस्त्यागैः कल्प महीरुहः प्रणयिषु प्राज्ञो नरेन्द्रात्मजः॥

(२) यो मत्तमानङ्गमभिद्रवन्तन्नरेन्द्रवीथ्यांऽतुरगेन्द्रगामी। कशाभिघातेन विजित्य वीरः प्रख्यातवान्हस्तितलप्रहारः॥

(३) दुर्गं दुर्जयमूर्जितक्षितिभुजामत्युत्तमैर्विक्रमैः श्रीमद्राम कृपाणपुण्यविभवैरुग्रैर्विजिग्ये च यः। येनाद्यापि नरेन्द्रसंसदि सदा सम्भूतरोमोद्गमैर्व्वर्णाश्चैर्मणिपूरदुर्गधवलः संवर्ण्य सूरिभिः॥

(४) यः शौर्यातिशयादनल्पसदृशात्ख्यातो महोभूद्रकः (?) सन्मार्गेण गुणावलोक इति च श्लाघ्यामभिख्यान्दधौ। गेयैर्बु-द्धगुणाहृवयैरभिनवस्वान्तव्विंशोषोद्गतैर्यश्चान्ते तनुमुत्ससर्ज विधि वद्योगीव तीर्थाश्रयः॥

(५) तस्यालि सूनुर्विजितारिवर्गः प्रतापसंतापितदिग् विभागः। प्रहर्षितार्थिव्रजपद्मषण्डः पूषेव पादाश्रितसर्व्व लोकः॥

(६) धर्म्मार्थकामेषु गृहीतसारः श्रिया सदाराधितपादपद्मः। अरातिमातङ्गकुलैकसिंहस्त्रिलोकविख्यातशः पताकः॥

(७) कोपे यमः कल्पतरुः प्रसादे प्रयोगमार्गप्रणयी कलानां। अगण्यविक्रान्तविलासभूमिः प्रभूतसद्वर्णशशाङ्ककीर्त्तिः॥ रूपोदयै-

रपितचित्रयोनिर्मतङ्गजारोहनलब्धशब्दः । तुरङ्गमाध्यासनकौशलाम्रः प्रभासते राजसु कोत्तिराजः ॥

(८) तस्यात्मजः शुभशनोदिनपुण्यमूर्त्तिः साक्षान्मनोभव इव प्रयतात्मभावः । दृतद्विपद्विपिनवन्हिरुद्दोर्णदीप्तिरस्तीह तुङ्ग इतिसान्वयनामधेयः ॥

(९) कामिनीवदनपङ्कजतिग्मभानुर्विद्वन्मनः कुमुदकाननकान्तरश्मिः । शास्त्रप्रयोगकुशलः कुशलानुवर्त्ता धर्म्मावलोकइति च प्रथितः पृथिव्याम् ॥

(१०) शैलेन्द्रस्य द्विमूर्त्तीननवरनगलद्दानमत्तद्विरेफश्रेणीसङ्कीर्णनादप्रतिगजविजयोद्गारिभेरीविरावान् । दृष्ट्वा यो दन्तिशास्त्रे षु गुरु रिव गुरुः प्रो गु × × × × लोलः कालज्ञः पुण्यपूतः कलयति मृगवद्वन्यकान्वारणेन्द्रान् ॥

(११) येनागाधतया जितो जलनिधिः शान्त्या मुनिस्तेजसा भानुः कान्ततया शशी मृगपतिः शौर्य्येण नीत्या गुरुः । कर्णस्त्यागितया विलासविधिना दैत्यद्विषामीश्वरः वाचालापितया यथार्थपद्या नैवास्ति यस्योपमा ॥

(१२) धत्ते यः श्रीनिधानं हृतकलिचलितं धर्म्ममामूलमुच्चैरुत्तुङ्गैः स्वर्गमार्गप्रणयिभिरतुलैः कीर्त्तनैः शुद्धकोर्त्तिः कुर्वतसेवामनिन्द्यामनुदिनममलैरन्नपानैर्यतीनां शिष्टैस्मत्कारयत्नैर्भव इव चलितं रावणेनाचलेन्द्रम् ॥

(१३) तेन प्रसन्नमनसा जितमारशत्रोरुत्तीर्णजन्मजलधेरसृ × × भवैकबन्धोः । श्रीमद्विशुद्धगुणरत्न—विप्रेन्द्रशेखरितपाद-सरोजरेणोः ॥

(१४) मोहान्धकारनिधनोद्गतभास्करस्य संग्रामरेणुशमनैकघनाघनस्य । द्वेषोरगोद्धरणकर्म्मणि तार्क्ष्यस्य गिरिदारणवज्रधाम्नः ॥

(१५) स्फुर्ज्जत्प्रवादिकरियूथमृगाधिपस्य नैरात्म्यसिंहनिनदप्रविभावितस्य । धर्म्माभिषेकपरिपूतजगत्त्रयस्य—गुणरत्नमहार्णवस्य ॥

(१६) निर्म्मापिता गन्धकुटीयमुच्चैः सोपानमालेव दिवो दिदेश । गृहीतसारेण धनोद्यानामनित्यताभावितमा—॥

(१७) तरामर्शविचक्षणेन शरत्प्रसन्नेन्दुमनोहरेण । मदानभिज्ञेन गुणाभिरामैरावर्जिताजय्यसमागमेन ॥•

(१८) मुनिरिह गुणरत्न—प्रजानामभयपथविदर्शी सन्निधत्तां सदैव । विदधदभिमतानां सिद्धिमभ्युन्नतीनामनयविमुखबुद्धेर्दायकस्यास्य भूयः ॥ त देवराज सम्बत् १५ श्रावणदिनपञ्चम्यां । सिंहलद्वीपजन्मना पण्डितरत्न श्रीजनभिक्षुणा ॥

एक मूर्त्ति पर बोधगया में यह लेख लिखा है। यह दो पंक्ति में है जो प्रत्येक ६ फीट लम्बी है। पूर्णभद्र सुमंतस के पुत्र ने इस [मूर्त्ति] को बनवाया था। इस से उस का और उस के वंश का कुछ वृत्तान्त मालूम होता है।

१। बावस्तस्यैव स्वसङ्घतः सङ्घः ।

२। सिध्धा। परः श्रीमान् तस्य सुतः श्रीधर्म्मः ।

३। थ्र्धिय जगती कार्त्तिक प्रतापमेग्रतां यातः ॥ तेनयशः

१। सिन्धौ दातृ × गजो गल्लभूमज :—

नरवर सिद्द ग

२। नुसपुररन्ध्री सदुदयकम × पुनः पूतः श्री दुर्गंजयसेनः
कुमा कु तर सयू शुभ
म्वोधिलासुकृत ग

१। ये धर्म्मा हेतुप्रभवा हेतुस्तेषां तथागतः ह्यवदत् तेषाञ्चयो
निरोध स्वंवादी महा—

२। श्रमणः।

३। श्रीसाभन्तस्तदात्मजस्तस्य। श्रीपुनुभद्रनामा प्रतापेन
चन्द्रमः कोत्तिः। द्राह्

१। सु × यिष्ठो × × श्रीमान्

२। सेनोसन घोषः। श्रीमति उदण्डपूरे येन

३। तिलरलकता × सिंव चन्द्रनमवृतः सुधियः॥

महाबोधी मन्दिर के समीप एक पत्थर के टुकड़े पर खोदी हुई निम्न लिखित लिपि डबल्यू हाथोर्न (W. Hawthorne Esqr.) ने पायी थी, उस पत्थर को बचनन हमिलटन (Mr. Buchanan Hamilton) ने ईस्ट इन्डिया कम्पनी के म्यूज़ियम (Musium) में रख दिया था।

नमोबुद्धाय संकल्पोयं प्रवरमहाबोरस्वामिनः परमोपासकस्य दैवज्ञचरणारविन्दमकरन्दमधुकरहलकारभूपालवेश्मोत्पन्नाऽकुल-नृपति गुरूड़ नारायण रिपुराज मत्तगज सिंहति रिवल महोपाल जनकेत्पादिनिजनिरखेल प्रशस्ति समलंकृतं सपादलक्ष शिखरिख समेण राजाधिराज श्रीमदशोकचन्द्रदेवकनिष्ठभ्रातृ श्रीदशरथनाम-धेयकुमारपादपद्मोपजीवि भारादागारिक सत्यव्रतपरायणा-विनिवर्त्तनीयबोधिसत्व चरितस्कन्धिस्वकुलदीय श्री सहस्रपातृ

नामधेयस्य महात्मक श्रीचाट ब्रह्मसुतस्य महामहात्मक श्री ऋषि ब्रह्मपौत्रस्य यदत्रपुरायं तद्भट्टाचार्य्योपाध्याय मातापित्र शर्वाङ्ग सकृता सकल पुरायराशि रनन्तविज्ञानफलावाप्तव इति श्रीमल्लक्षण सेनदेवपादानामतीतराज्ये सं० ७१ वैशाख वदि १२ गुरौ।

बोधगया के बड़े मंदिर के बारहदरी के सामने एक छोटे मंदिर में एक संगमरमर के तख्ते पर तीन लिपि खोदी हुई है। वह तख्ता कुछ नीले रंग का चार फीट लंबा और दो फीट तीन इंच चौड़ा है। इस के आगे की ओर दो लिपि है, पहली अपभ्रंश पालीभाषा में और दूसरी ब्रह्मा देश की भाषा में है। और तख्ते की पिछली ओर ३० पंक्ति ब्रह्मा देश की भाषा में है? परंतु यह संस्कृत नहीं है। उन में से केवल पालीलिपी को यहां नागरी अक्षर में प्रकाश किया है—

१। नमस्तस्मै भगवते अरहते सम्यक् सम्बुद्धाय ॥ जयतु ॥ बोधिमूले जिनाः सर्ब्बे सर्ब्वज्ञुतो तथा अयं। जयतं धम्मग-तापि बोधिप्रसादनेन सा। पथ्यावर्त्त श्लोक। अयं महाधर्म्म-राजा अनेकशेनिभप्रतिच्छद्दन्तगजराजस्वामि अनेकशताम आदित्यकुलसम्मतानं। पीतुपीतामहअव्ययकपाय्यकादिमहा धम्मराजनं सम्यकदि।•

२। ष्टिकानं धम्मिकानं प्रवरराजवंशानुक्रमेण असम्मितत्तेत्रिय वंशजो। सन्ध्याशीलाद्यनेकगुनाधिवासो। दानरागेण सन्तो-षमानसो। धम्मिको धम्मगुरुधम्मकेतु धम्मध्वजो। बुद्धा-दिरतनत्रये सततं समितं निम्नपोण प × रहृदयो। नानावि-

धानि। शारिरिक, परिमोग उद्देश्यक चैत्यानि नानाप्रकारेण नन्दति माने।

३। ति पूजेति संस्करोति। मारजयनक्लेशविध्वंसनसर्व्वधर्म्म-बिघातनवीरभूतं महाबोधिम्बि। अभिप्रसादेन पुनप्पुनं मनसि × × × ×। संमति परिवृन्दति कलैरारम्भने गन्य। सप्तपञ्च-द्विके गते। वसूरतवभूवर्व्वे ?। धर्म्मं विहगे नमारबन्धः। पुराकपिल व × ×॥ माया देव्यो सुद्धोदनी। निक्षमित्वा × स्तनूले अनु × अ ×।

४। तं पदं तेन सुदेसिनो धम्मों संघो चास्यानुशासितो। दिश्यते दानिलोक। मू बोधित्वस्य न द्विश्यते। इति हि पूराणतन्त्रा-गतानुरूपं। अयं महाधर्म्मरागमनसि करोनो बिमसन्तो। परिपृच्छन्तो पीतामहच्छद्दन्त गजराजस्वामि महाधर्म्मराज-काले। मध्यपदैरागतैहि वाणिरैहि ब्राह्मणैहि × गीहि च।

५। मगधराष्ट्रे। गयाशीषपदे च नद्यानेरञ्जनाम्रतीरे सुसमे भूमिभागे। बनप्रतिभूत्वा प्रतिष्ठितभावं। अर्धखण्डसाखाप्रमा-णेन हस्तशत विस्ताराद् ये धर्म्मभावं। × कादी पाति द्दराव्यं गृहणक। लेयय। षिद्दानं दक्षिण महासाखाय स्वयमेवच्छिन्ना-कारदषा मानभावं बोधिमण्डसंखानवज्रासनयानसिरिधम्मा सोके।

६। न नाम सकल जम्बुद्वीपेश्वरमहाराज्ञा कृतचेतियस्य विद्य-मानभावं। पूर्व्वे षड्शतसप्तपञ्चाषसकराजे श्वेतगजेन्द्रमहा-राजेन तं चैत्यमतिसंखरित्वा धर्म्मभासाय सेनञ्च स्वामिनभावं

च श्रुत्वा। नदेनत् वचनं अनेकतन्त्रागतवचनेन सं सन्दति समेति। यथातं गङ्गोदकेन यमुनोदकस्मि। युक्तायुक्तं बिदि।

७। त्वा। अवश्यमेवेष भगवता सह जातो महाबोधीसि निसंषयं। सन्निधानमकासि। यथावत् कठोन बिशेष नियमिते हि। मनुरपानं तौश्रवस्त्वादिकर्म्मकरण × ततो यथानुक्रममुन्नतुन्नतभावेन पदवीं युगेधे। अग्रराजकरोप मात्रबिस्तारोकेष मश्रु प्रमाणानम्पिति गाजमधिहल्ले। समन्तातिनलना।

८। गन्धं गुम्बवनव्रतीनं प्रदक्षिणाबद्याभिमूखपरिवारितो रजतवर्णवालुकाबिप्रकिर्ण। भेरितलमिव समे भूमिभागे। बोधिमण्डसंघायस्थ वज्रासनपल्लङ्कस्य अपस्मयफलकमिव सन्धुत्तुत्वा। साखा पर्ण×मणिपत्रमिव पटिच्छादेत्वा महाबोधिवृक्षः प्रतिष्ठाति तस्मिन् पनवज्रासनपल्लङ्के अत (न)।

९। न (त) ग्रेपि काले सर्व्वेपि असंख्येया सम्यक् सम्बुद्धा आणाप्राणवस्तुज्ञानपादकन्धत्रिराकोटिषतसहम्सबिपस्सता ज्ञानसंघातं महावज्रज्ञानं भावेत्वा अ।

१०। मार्गपदष्ठान सर्व्वज्ञान ज्ञानपति रभिसु। न याहिसे। सण्वहन्त कल्पे पयसं सण्वहिनो। विनाश्यन्तेपि प×विन्नश्यन्तो अचलपदेषो पृथुद्वीप×बो।

११। धिमण्डो नाम होति॥ एवं अतिच्चरिय मन्वच्चरिय महाबोधिवृक्ष एकसन विदित्वा अभिप्रसादमानसो। यथा कालि × चक्रवत्तिसिरिधम्मासोक्को प × महिकोसलो। महार्घ्यं यतिवों महाबोधिमभिपूजेसु। तथा पूजेतुकामो। सिरिपबरसुधम्म-

महाराजाधिराजाति। मूलभासाय श्रीप्रवरधम्मिक राजा×××
मल।

१२। अतो अनेकश्चेति×प्रतिसरदकुमुदकुन्दइन्दु प्रभासमानवर्ण-च्छद्दन्तगजराजस्वामिमहाधर्म्मराजा। पुरोहित महाराजिन्द अग्ग महाधर्म्मराज गुरूभि×नं भूमिनन्दभारिकामत् पञ्च-महाराजाभिरूप सागरसूरनाभकं। अनेकशतपरिजनेहि मूद। द्विसहस्सत्रिशतपञ्चपष्टिसाम्मनवर्षे। एकसहस्सै

१३। शिक शतत्राशीतिसकराजे कार्त्तिकमाससरदकतुपं। स्वबि-जितरङ्काङ्गदेन नु सार जलजस्थलजमार्गेण पेसेत्वा सरिबार महाराजिन्दाररता देवी नामिकाय अग्गमहेसिया सार्द्धं। महाबोधिमूले बुद्धत प्राप्तं भगवन्तमुद्देष्य। दक्षिणोदकं पा-तन्तो। इमं महापृथुविं साक्षिं कृत्वा महार्घ्य।

१४। हि सोर्ण रोप्य माणिवथ विचित्रेहि। ल। ×। छत्र। ध्वज। पद्योत। कलश। मालाङ्ग लेहि महाबोधिमभिपूजेसि। संसा-रौघनिम्मग्ग सत्वगणातारणार्थं पि बुद्धत प्रयतमकासि। माता-पीतुपीतामहआय्यक पाय्यकादिनं पि सत्वानं पुण्यभागम-दासि॥ यथानेह रविससि। यावत् तयावतिष्ठति।

१५। तथापि दसेलक्षरं। तिष्ठतं अनुमोदयति। इदमनेकश्चेतिभ-प्रतिच्छदन्तगजराजस्वामिमहाधर्म्मराजोत्तरं पुज्यसेलदारं। महाजेयसहस्सनामेन पण्डितामन्येन वन्धितं। इदं सेलक्षरं सिरिराजिन्दमहाधर्म्मराजगुरूनामिनेन पुरोहितेन नागरोले-खाय लिखितं।ः॥ः॥

राजा जन्मेजय का दानपत्र।

यह दानपत्र युधिष्ठिर के संवत् १११ का है जो मौज अगराहर तालुका अनन्तपुर जिला महानाद नगर इलाका मैसूर में मिला है। इस में सर्पयाग और सूर्यपर्व्व का वर्णन है। कर्नैल एलिस् साहिब सोचते हैं कि यह उस जन्मेजय का नहीं है विजयनगर के राजाओं में से किसी का है। वह कहते हैं कि जैसा सूर्य्यग्रहण इस में लिखा है वैसा सं० १५२१ ई० में हुआ था। कोलब्रुक साहिब कहते हैं कि यह प्राचीन काल में ब्राह्मणों ने जाल करके बनाया होगा। परन्तु उन दोनों साहिबों की बात का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं। इस की लिपि प्राचीन वालवन्द अथवा नन्दिनागर अक्षरों में है। इस के पीछे का भाग बहुत सा टूट गया है और यहां हम भी इस का वह भाग नहीं लिखते जिस में उन दक्षिणी ग्रामों के और उन की चारो सीमाओं के वर्णन में बड़े कठिन कठिन कर्णाटकी शब्द लिखे हैं।

"जयत्याविष्कृतं विष्णोर्वाराहं क्षोभितार्णवम्।
दक्षिणोन्नतदंष्ट्राग्रे विश्रान्तम्भुवनंवपुः॥

स्वस्ति समस्तभुवनाश्रय श्री पृथ्वी बल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक हस्तिनापुरवराधीश्वर आरोहभगदत्तरिपुराय कान्तादत्तवैरिवैधव्यपाण्डव कुलकमल मार्त्तण्डकदन प्रचण्ड कलिङ्ग कोदण्ड मार्त्तण्ड एकाङ्कवीररणरङ्गधीर अश्वपतिराय दिशापति गजपतिराय संहारक नरपतिराय मस्तक तलप्रहारिहयारूढ़ाप्रौढ़-रेखरेवन्त सामन्त मृगचामर कोङ्कणचतुर्दश भयङ्करनित्यकर पराङ्कुनापुत्र सुवर्णवराहलाञ्छनध्वजसमस्त राजावलिविराजित समा-

लिङ्कित श्री सोमवंशोद्भव श्री परीक्षित चक्रवर्त्ती। तस्यपुत्रो जन्मे-
जयचक्रवर्त्ती हस्तिनापुरे सुखसंकथाविनोदेन राज्यङ्करोति। दक्षिण
दिशावरे दिग्विजययात्रेयंविजयङ्करोमि। तुङ्गभद्राहरिद्रासङ्गमे श्री
हरिहरेश्वरसन्निधौ कटक मुत्क्रमितचैत्रमासे कृष्णपक्षेदर्शके रवि
वासरे ववकरणे उत्तरायण संक्रान्तौ व्यतीपातनिमित्त सूर्यपर्व्वणि
अर्द्ध ग्रासग्रसित समये सर्पयागङ्करोमि॥

इस के पीछे ३२००० ब्राह्मण जो वनवासे शान्तलिको गौतम ग्राम और दूसरे गावों से आए थे जिन में मुख्य गौतमगोत्री कण्व-शाखीय गोविन्द पट्टवर्धन कर्णाट ब्राह्मण काण्वशाखीय वशिष्ठगोत्री वामनपट्टवर्द्धन कर्णाट ब्राह्मण कण्वशाखीय भारद्वाजगोत्री केशव यज्ञ दीक्षित कर्णाटक ब्राह्मण कण्वंशाखीय श्रीवत्सगोत्री नारायण दीक्षित कर्णाटक ब्राह्मण थे। उन को गौतम ग्राम के बारहो गांव नाद बल्लि बूदबल्लि चिक्कहार कतरलगेरे सुरलगोडु ताग रुङ्गुजिं-अलूरु वाचेन हच्लिलं पगोडु और किरूसम्य गोडु सब सपर्य्या अष्टभोग समेत पूजन करके दिया। इस के नीचे इन गाओं की सीमा लिखी है। उस के पीछे 'सर्व्वानेतान् भाविना पार्थिवेन्द्रान्' यह और 'दानं वा पालनं वापि' ये दो प्राचीन श्लोक हैं।

मंगलीश्वर का दानपत्र।

यह दानपत्र मंगलीश्वर का कलादगी जिले में बदामी में हिन्दू मत की बड़ी गुहाओं के पास खुदा है, इसकी लंबाई चौड़ाई २५×४३ इञ्च है। यह मंगलीश्वर कीर्ति बर्म्मा का भाई पुलकेशी का पुत्र था, जो शक ४७७ में राज्य करता था। यह दानपत्र श० ५००

ई० ५७८) में लिखा गया है जिस के १२ वर्ष पूर्व्व अर्थात् शाके ४८८ (ई० ५६६) में यह राज्य पर बैठा था। इस दानपत्र में मंगलीश्वर ने एक विष्णुमन्दिर बनाया और अपने बड़े भाई को स्मरणार्थ जो निपिम्मलिंगेश्वर ग्राम दिया है उस का वर्णन है।

स्वस्ति । श्रीस्वामिपादानुध्यातानां मण्डव्यसगोत्राणाम् हारीति पुत्राणाम् अग्निष्टोमाग्निचयनवाजपेयपौंडरीक बहुसुवर्णाश्वमेधावभृथस्नान पवित्री कृतशिरसाम् चालक्यानांवंशेसंभूतः शक्तित्रयसंपन्नः चालक्यवंशाम्बर पूर्णचन्द्रः अनेकगुणगणालंकृतशरीरः सर्वशास्त्रार्थतत्वनिविष्टबुद्धिः अतिबलपराक्रमोत्साहसंपन्नः श्रीमंगलिश्वरोरणविक्रान्तः प्रवर्द्धमानराज्य२संवत्सरे द्वादशेशकनृपतिराज्याभिषेक संवत्सरे ष्वतिक्रन्तेषु पंचसुशतेषु निजभुजावसम्बितखड्गधारानमितनृपशिरो मकुट मणिप्रभारंजिपादयुगलः चतुःसागरपर्य्यन्तावनिविजयः माङ्गलिकागारः परमभागवतोलयने मयाविष्णुगृहअनिदैव मानुष्यकाम अत्यद्भुतकर्म विरचितभूमि भागोपभागो परिपर्य्यन्तातिशय दर्शनीय तमकृत्वातस्मिन् महाकार्त्तिक्यांपौर्णमास्यांब्राह्मणेभ्योमहाप्रदानंत्वाभगवतः प्रलयोदिताक्क मण्डलाकारचक्रपितापकारिपक्षस्य विष्णोः प्रतिमाप्रतिष्ठापनाभ्युदये निपिंमलिङ्गेश्वरम् नामग्रामंनारायणावल्युपहारार्थं षोडशमङ्न्व्येभ्योब्राह्मणेभ्यश्च सत्रनिबन्धं प्रतिदिनंअनुविधानं कृत्वाशेषं च परिव्राजकभोज्यंदत्वा सकलजगन्मंडलावनसमर्थारथहस्त्यश्व पदातसंकुलानेकयुद्धलब्धजय पताकालम्बितचतुस्समुद्रोर्म्मिनिवारितयशः प्रतापनोपशोभिताय देवद्विजगुरुपूजिताय ज्येष्ठायस्मद्भ्रात्रे कीर्त्तिवर्म्मणेपराक्रमेश्वरायतत् पुण्यो

पचयफलम् आदित्याग्निमहाजन समुत्तमुदक पूर्वविश्राणितमस्मद्-भ्रातृशुश्रूषणे यत्फलंतन्मह्यंस्यादितिनकैश्चित्परि हापितव्यः। बहु-भिर्वसुधादत्ता बहुभिश्चानुपालिता यस्ययस्ययदाभूमिस्तस्यंतस्य-तदाफलम् स्वदत्तांपरदत्तांवायत्नाद्रक्षयुधिष्ठिर। महींमही क्षितां-श्रेष्ठ दानाच्छ्रे योनुपालनं। स्वदत्तांपरदत्तांवायोहरेतवसुंधराम्। श्व-विष्ठायांक्रिमिर्भूत्वापितृभिस्सहमज्जति। व्यासगीताःश्लोकाः।

—:※:—

मणिकर्णिका।

अहा! संसार का भी कैसा स्वरूप है और नित्य यह कुछ से कुछ हुआ जाता है, पर लोग इस को नहीं समझते और इसी में मग्न रहते हैं। जहां लाखों रुपये के बड़े बड़े और दृढ़ मन्दिर बने थे वहां अब कुछ भी नहीं है और जो लाखों रुपये अपने हाथ से उपार्जन और व्यय करते थे उन के वंशवाले भीख मांगते फिरते हैं नित्य नित्य नए नए स्थान बनते जाते हैं वैसेही नए नए लोग होते जाते हैं।

यह मणिकर्णिका तीर्थ सब स्थानों में प्रसिद्ध है और हिन्दू-धर्म्मवालों को इस का आग्रह सर्व्वदा से रहा है। इसी कारण जो बड़े बड़े राजा हुए उन सबों ने इस स्थान पर कीर्त्ति करनी चाही और एक के नाम को मिटा कर दूसरा अपना नाम करता रहा। इस स्थान पर तीर्थ दो हैं, एक तो गंगाजी दूसरा चक्रपुष्करिणी तीर्थ और इन दोनों पर लोगों की सदा दृष्टि रही। घाट के नीचे ब्रह्मनाल और नीलकंठ तक अनेक घाटों के बनने के

चिन्ह मिलते हैं। थोड़े दिन हुए कि मणिकर्णिका पर एक पुराना छत्ता था जिस को लोग राजा कीचक का छत्ता कहते थे, पर न जाने यह कीचक किस वंश में और किस समय में उत्पन्न हुआ था। ऐसा ही राजा मान का एक जनाना घाट है जो गली की भांति ऊपर से पटा है, पर अब इस के ऊपर ब्रह्मनाल को सड़क चलती है। निश्चय है कि योंही घाटों के नीचे अनेक राजाओं के बनाए घाटों के चिन्ह मिलैंगे। हम आजकल में मणिकर्णिका पर से एक प्राचीन पत्थर उठा लाए हैं जिस्से उस समय का कुछ वृत्तान्त मिलता है। यह पत्थर संवत् १३५९ तेरह सै उनसठ का लिखा है जो ईसवी सन् १३०२ के समय का होता है। इस के अक्षर प्राचीन काल के हैं और मात्रा पड़ हैं। पर शोच का विषय है कि पूरा नहीं है, कुछ भाग इस का टूट गया है, इस्से नाम का पता नहीं लगता कि किस राजा का है। जो कुछ वृत्त उस्से जाना गया वह यह है—"उक्त समय में क्षत्रिय राजा दो भाई बड़े विष्णुभक्त और ज्ञानवान हुए और इन की कीर्त्ति परम प्रगट थी, उन लोगों ने मणिकर्णिका घाट बनवाया। उस घाट के निर्माण का विस्तार वीरेश्वर से विश्वेश्वर तक था और मध्य में मणिकर्णिकेश्वर का बड़ा लम्बा चौड़ा और ऊंचा मन्दिर बनाया और बीच में बड़ी बड़ी वेदिका बनाई (वेदिका चबूतरे को कहते हैं) यह राजा बड़ा गुणज्ञ था" इत्यादि। इस्से निश्चय है कि उस की बनाई कोई वस्तु शेष नहीं रही। अब जो मणिकर्णिकेश्वर हैं वह एक गहिरे नीचे सङ्कीर्ण स्थान में हैं और विश्वेश्वर और वीरेश्वर

भी नए नए स्थानों में हैं। ऐसा अनुमान होता है कि गङ्गाजी आगे ब्रह्मनाल की ओर बहुत दब के बहती थीं, क्योंकि अद्यापि वहां नीचे घाट मिलते हैं। निश्चय है कि इस राजा के पीछे भी अनेक बार घाट बने होंगे, परन्तु अब जो कुछ टूटा फूटा घाट बचा है वह अहल्याबाई साहब का बनाया है।

मणिकर्णिका कुण्ड की सीढ़ियां जो वर्त्तमान हैं वह दो सै उनचास २४६ वर्ष की बनी हुई हैं और इन को नारायणदास नामक वैश्य ने (जिस का पुकारने का नाम नरैनू था) बनवाई है यह सोमवंशी राजा बासुदेव का मन्त्री था और रावत इस के पिता का नाम था। यह बात इन श्लोकों से प्रगट होती है जो वहां एक पत्थर पर खुदे मिले हैं।

व्योमाष्टषट् चन्द्रमिते शुभेब्दे मासे शुचौ विष्णुतिथौ शिवायां।
चकार नारायणदासगुप्तः सोपानमेतन्मणिकर्णिकायाः॥ १ ॥
जातः क्षितीवासतुल्यतेजाः सोमान्वये भूपति बासुदेवाः
तस्यानुवर्त्ती मणिकर्णिकायाश्चकार सोपान ततिर्नरेणुः॥ २ ॥
वासुदेवाग्रसचिवो नरेणुरावतात्मजः।
चक्रपुष्करणी तीर्थ जीर्णोद्धारमचीकरत्॥ ३ ॥

॥ काशी ॥

मैं इस में काशी के तीन भाग का वर्णन करूंगा यथा प्रथम भाग में पंचक्रोश का, दूसरे में गोसाइयों के काल का, तीसरे कुछ अन्य स्फुट वर्णन। मैं पंचक्रोशी का वर्णन ऐसा नहीं करना चाहता कि जिसे देख कर लोग पंचक्रोशी की यात्रा करने चले जायं

बरंच मैं भगवान काल के उस परम प्रवल फेर फार रूपी शक्ति को दिखाता हूं जिस से धैर्य्यमानों का धैर्य्य और अज्ञानों का मोह बढ़ता है। आहा! उस की क्या महिमा है और कैसी अचिंत्य शक्ति है? अतएव मैं मुक्तकंठ से कह सकता हूं कि ईश्वर भी काल का एक नामान्तर है। क्योंकि इस संसार की उत्पत्ति प्रलय केवल इसी पर अटकी है। जिस विजयी और विख्यात सिकन्दर ने संसार को जीता उसकी अस्थि कहां गड़ी है और जिस कालिदास की कविता संसार पढ़ता है वह किस काल में और किस स्थान पर हुआ? यह किस्का प्रभाव है कि अब उस का खोज भी नहीं मिलता? काल का अतएव यदि हम प्राचीनों से प्राचीन, नवीनों से नवीन, बलवानों से बलवान, उत्पत्ति, पालन, नाश कर्त्ता और सर्व्व तन्त्र-स्वतन्त्रादि विशेषणों से विशिष्ट ईश्वर को काल ही का एक नामान्तर कहैं, तो क्या दोष है।

इस पंचक्रोशी के मार्ग और मन्दिर और सरोवरों में से दो सौ वा तीन सौ वर्ष से प्राचीन कोई चिन्ह नहीं है और इस बात का कोई निश्चायक नहीं कि पंचक्रोश का मार्ग यही है, केवल एक कर्दमेश्वर का मन्दिर मात्र बहुत प्राचीन है और इस के बौद्धों के काल का वा इस के पीछे के काल का कहैं, तो अयोग्य न होगा। इस मन्दिर के अतिरिक्त और कोई प्राचीन चिन्ह नहीं, पर हां, पद पद पर पुराने बौद्ध वा जैन मूर्त्ति खंड, पुराने जैन मन्दिरों के शिखर, दासे, खंभे और चौखटैं टूटी फटी पड़ी हैं। क्यों भाई हिन्दुओ! काशी तो तुम्हारा तीर्थ न है? और तुम्हारा वेद मत तो परम प्राचीन है? तो अब क्यों नहीं कोई चिन्ह दिखाते जिस से

निश्चय हो कि काशी के मुख्य देव विश्वेश्वर और बिंदुमाधव यहां पर थे और यह उन का चिन्ह शेष है और इतना बड़ा काशी का क्षेत्र है और वह उस की सीमा और यह मार्ग है और यह पंचक्रोश के देवता हैं। बस इतनाही कहो भगवते कालाय नमः। हमारे गुरु राजा शिवप्रसाद तो लिखते हैं कि "केवल काशी और कन्नौज में वेदधर्म्म बच गया था" पर मैं यह कैसे कहूं, बरंच यह कह सकता हूं कि काशी में सब नगरों से विशेष जैन मत था और यहीं के लोग दृढ़ जैनी थे, भवतु काल जो न करै सब आश्चर्य्य है। क्या यह संभावना नहीं हो सकती कि प्राचीन काल में जो हिन्दुओं की मूर्त्तियां और मन्दिर थे उन्हीं में जैनों ने अपने काल में अपनी मूर्त्तियां बिठा दीं? क्यों नहीं। केवल कुछ क्षण दिल्ली के सिंहासन पर एक हिन्दू बनियां बैठ गया था उतने ही समय में मस्जिदों में हिन्दुओं ने सिन्दूर के भैरव बना दिये और कुरान पढ़ने की चौकियों पर व्यासों ने कथा बांची, तो यह क्या असम्भावित है।

कर्दमेश्वर का मन्दिर बहुत ही प्राचीन है और उस के शिखर पर बहुत से चित्र बने हैं जिन में कई एक तो हिन्दुओं के देवताओं के हैं, पर अनेक ऐसे विचित्र देव और देवी बनी हैं जिन का ध्यान हिन्दू शास्त्र में कहीं नहीं मिलता अतएव कर्दमेश्वर महादेव जी का राज्य उस मन्दिर पर कब से हुआ यह निश्चय नहीं और पलथी मारे हुए जो कर्दम जी की श्रीमूर्त्ति है वह तो निस्सन्देह * * * * कुछ और ही है और इस के निश्चय के हेतु उस मन्दिर के आस पास के जैन खंड प्रमाण हैं और उसी गांव में आगे कूप

के पास दहिने हाथ एक चौतरा है उस पर वैसी ही ठीक किसी जैनाचार्य्य की मूर्त्ति पलथी मारे खंडित रक्खी है देख लीजिए और उस के लम्बे कान उस का जैनत्व प्रमाण करते हैं। अब कहिए वह तो कर्दम ऋषि हैं ये कौन हैं कपिलदेव जी हैं? ऐसे ही पंचक्रोशी के सारे मार्ग में बरंच काशी के आस पास के अनेक गांव में सुन्दर सुन्दर शिल्पविद्या से विरचित जैन खंड पृथ्वी के नीचे और ऊपर पड़े हैं। कर्दमेश्वर का सरोवर श्रीमती रानी भवानी का बनाया है और उस पर यह श्लोक लिखा है।

"शाके गोत्रतुरंभूपतिमिते श्रीमत्भवानीनृपा
गौड़ाख्यानमहीमहेन्द्रवनिता निष्कर्द्दमं कार्द्दमं।
कुंडं ग्रावसुखंडमंडिततटं काश्यां व्यधादादरात्
श्रीताराराततनया पुरांतकपर प्रीत्यै विमुक्तै नृणां"॥

अर्थ—शाके १६७७ में अपनी कन्या श्रीतारा देवी के स्मरणार्थ यह कर्दम कुंड बंगाले की महारानी श्रीभवानी ने बनाया इन महारानी की कीर्त्ति ऐसी ही सब स्थानों में उज्ज्वल और प्रसिद्ध है और राजा चन्द्रनाथ राय (उन के प्रपौत्र) मानो उस पुन्य के फल हैं। भीमचंडी के मार्ग में भी ऐसे ही अनेक चिन्ह हैं और भद्राक्षी नामक ग्राम में एक बड़ा पुराना कोट उलटा हुआ पड़ा है और पंचक्रोशी करानेवाले उस के नीचे उसी के ईंटों से छोटे २ घर बनाते हैं और इस में पुन्य समझते हैं। सम्भावना है कि यहां कोई छोटी राजसी रही हो, क्योंकि काशी के चारो ओर ऐसी छोटी छोटी कई राजसियां थीं जैसा आशापुर। काशीखंड में आशापुर को एक बड़ा नगर कर के लिखा है पर अब तो गांव

मात्र बच गया है। भीमचंडी का कुंड भी श्रीमती रानी भवानी का बनाया है और उस में यह श्लोक लिखा हुआ है।

शाके कालाद्रिभूपे गतविलकमलं गौड़राजेन्द्रपत्नी
गन्धर्व्वाम्भोधिमम्भोनिधिसमखननं स्वर्गसोपानजुष्टं।
चक्रे राज्ञी भवानी सुकृतिमतिकृतिर्भीमचंडी सकाशे
काश्यामस्यास्सुकीर्त्तिस्सुर पतिसमितौगीयतेनारदाद्यैः।

अर्थात् शाके १६७६ में रानी भवानी ने यह सरोवर बनाया तो इस लेख से ११८ का प्राचीन यह सरोवर है। इस से प्राचीन भी कुछ चिन्ह हैं, पर अत्यन्त प्राचीन नहीं। देहली विनायक जो मुख्य काशी की सीमा हैं वही ठीक नहीं हैं, क्योंकि वहां कोई भी प्राचीन चिन्ह शेष नहीं है। वहां के मन्दिर और सरोवर सब एक नागर के बनाये हुए हैं जिसे अभी केवल सत्तर अस्सी बरस हुए। पर इतने ही समय में वह बहुत टूट गए हैं। काशी के कतिपय पंडित कहते हैं कि प्राचीन देहली विनायक वहां से कोसों दूर हैं। अतएव पंचक्रोशी का प्रचलित मार्ग ही अशुद्ध है और यह सम्भावना भी है, क्योंकि सिन्धुसागर तीर्थ का बहुत सा भाग इस मार्ग में बाम भाग पड़ता है, पर प्राचीन मार्ग की सड़क खेतवालों ने सम्पूर्ण नष्ट कर डाली। रामेश्वर में श्री रानी भवानी की धर्म्मशाला और उद्यान है, परन्तु रामेश्वर के कोस भर उधर बीच मार्ग ही में एक बड़ा प्राचीन मन्दिर खंड पड़ा है। बीच में शिवपुर एक विश्राम है और वहां पांचो पांडव हैं, परन्तु यह विश्राम इत्यादि कोई काशीखंड लिखित नहीं हैं। सब साहो गोपाल दास के भाई भवानी दास साहो के बनाए हुए हैं और अब वह एक ऐसा

विश्राम हो गया है कि सब काशी के बन्धु वहीं पंचक्रोशी वालों से मिलने जाते हैं। कपिलधारा मानों जैनों की राजधानी है। कारण ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीन काल में काशी उधर ही बसती थी, क्योंकि सारनाथ वहां से पास ही है और मैं वहां से कई जैन मूर्त्ति के सिर उठा लाया हूं। ऐसी भी जनश्रुति है कि महादेवभट्ट नामक कोई ब्राह्मण था, उसी ने पंचक्रोशी का उद्धार किया है।

मुझे शिव मूर्त्ति अनेक प्रकार की मिली हैं १ पंचमुख दशभुज २ एक मुख द्विभुज ३ एक मुख चतुर्भुज ४ पद्मपर से पैर लटकाए हुए बैठे और पार्व्वती गोद में बैठी ५ पालथी मारे ६ पार्व्वती को आलिंगन किए हुए इत्यादि तो इस अनेक प्रकार की शिव मूर्त्तियों की प्राप्ति से शंका होती है कि आगे लिंग पूजन का आग्रह नहीं था।

काशी में किसी समय में दश नामी गोसाइयों का बड़ा प्राबल्य था और इन महात्माओं ने अनेक कोटि मुद्रा पृथ्वी के नीचे दबा रक्खी है अतएव अनेक ताम्र पत्र पर बीजक लिखे हुए मिलते हैं, पर वे द्रव्य कहां हैं इसका पता नहीं। इन गोसाइयों ने अनेक बड़े बड़े मठ बनवाए थे और वे सब ऐसे दृढ़ बने हैं कि कभी हिल भी नहीं सकते। इन गोसाइयों में पीछे मद्यपान की चाल फैली और इसी से इन का तेजोनाश हुआ और परस्पर की उन्मत्तता और अदालत की कृपा से इन का सब धन नाश हो गया, पर अद्यापि वे बड़े बड़े मठ खड़े हैं। इन गोसाइयों के समय में भैरव की पूजा विशेष फैली थी। कालिज में एक विस्तीर्ण पत्थर पड़ा है उस पर एक गोसाइयों के बनाए मठ और शिवाले और उसकी

विभूति का सविस्तर वर्णन है मैं उस को ज्यों का त्यों आगे प्रकाश करूंगा जिस्से वह समय स्पष्ट हो जायगा।

यहां जिस मुहल्ले में मैं रहता हूं उस के एक भाग का नाम चौखम्भा है। इस का कारण यह है कि वहां एक मसज़िद कई सै बरस की परम प्राचीन है उसका कुतबा कालबल से नाश हो गया है पर लोग अनुमान करते हैं कि ६६४ बरस को बनी है और मसज़िदे चिहल सुतून, यही उस को 'तारीख' पर यह दृढ़ प्रमाणी भूत नहीं है। इस मसजिद में गोल गोल एक पंक्ति में पुराने चाल के चार खंमे बने हैं अतएव यह नाम प्रसिद्ध हो गया है। यही व्यवस्था ढ़ाई कनगूरे के मसज़िद की है, यह मसजिद भी बड़ी पुरानी है। अनुमान होता है कि मुगलों के काल के पूर्व्व की है इसकी निर्मिति का काल मैं १०५६ ई० बतलाते हैं। इस से निश्चय होता है कि इस मुहल्ले में आगे अब सा हिन्दुओं का प्राबल्य नहीं था, पर यह मुहल्ला प्राचीन समय से बसा है।

मैं ने जो अनेक स्थलों पर लिखा है कि जैन मूर्त्ति बहुत मिलती हैं इससे यह निश्चय नहीं कि काशी में जैन के पूर्व्व हिन्दूधर्म्म नहीं था, क्योंकि जैन काल के पूर्व्व की और सम काल की हिन्दुओं की अनेक मूर्त्ति अद्यापि उपलब्ध होती हैं। कालिज में एक प्रस्थर खंड पड़ा है और उस की लिपि परम प्राचीन है। पंडित शीतलाप्रसाद जी का अनुमान है कि यह लिपि पाली के भी पूर्व्व की है। इस पत्थर पर एक काली के मन्दिर की प्रतिष्ठा का समाचार है और इस का काल अनेक सहस्र वर्ष पूर्व्व है और उस में ये श्लोक लिखे हैं।

१

ख्याता बाराणसीय त्रिभुवनभवने भागचौरीति दूरात् ।
सेवन्ते यां विरक्ताः जननमरणयो मोक्षमक्षैकरक्ता ॥

२

यत्र देवोऽविमुक्तः यो हृष्ट्या ब्रह्माद्याऽपि च्युतकलिकलुषो जायते शुद्धभावः । अस्यामुत्तुङ्गशृङ्गस्फुटशशि किरिणा ॥

३

प्रतुलिविविधजनपदश्रीविलासाऽभिरामं विद्या वेदान्ततत्वव्रतजप-नियमव्यग्रच्छद्राभिजुष्टं ॥ श्रीमत्स्थान सुसेव्य ॥

४

तत्राऽभूत् सार्थनामा शिशुरपि विनयव्यापदो भद्रमूत्तिः त्यागी धीरः कृतज्ञः परिलघविभवोप्यात्मवृत्याभिजीवी ।

५

वर्णा चंडनरोत्तमांगरचितव्यालम्बिमालोत्कटा ।
सर्पत्सर्पविवेष्टिताङ्गरपशुव्याविद्धशुष्कामिषा लीला नृत्यरुचिपिंलोत्प

६

यस्यापि न तस्य तुष्टिरभवत् यावत् भवानीग्रहं शुशिलष्टा ऽमलसन्धि-वन्धघटितं घंटानिनादोज्ज्वलं ।रम्यं दृष्टिहरं शिलोच्चयाय ॥
ध्वज चामरं सुकृति नाम्नेयोऽर्थिना कारितं

७

इस लेख के उपसंहार काल में मणिकर्णिका घाट का अवशिष्ट वर्णन करता हूं । अब जो सांप्रत घाट वर्तमान है वह अहल्याबाई का बनवाया हुआ है और दो बड़े बड़े शिवालय भी घाट की सीमा पर उन्हीं के बनाए हैं और उन पर ये श्लोक लिखे हैं ।

श्रीमान् होलकरोपाख्यख्यातो राजन्यदर्पहा ।
मल्लारिरावनामाऽभूत् खंडेरावस्तु तत्सुतः ॥ १ ॥
विलासी गुणकल्पद्रुः शूरो वीराभिसम्मतः ।
तत्पत्नी पुण्यचरिता कुलद्वयविभूषणं ॥ २ ॥
अहल्याख्या तया ख्याता तृषु लोकेषु कीर्तये ।
बद्धोघट्टस्सुसोपानो मणिकर्ण्यास्सुविस्तृतः ॥ ३ ॥
तत्पार्श्वयोर्विधाये मौ प्रासादावुन्नतौ पृथक् ।
तयोः पश्चिमदिक्संस्थे स्थापितो गौतमेश्वरः ॥ ४ ॥
प्राक् संस्थे, तारकेशांक अहल्योद्वारकेश्वरः ।
स्थापितो वसुवेदेह विधुसम्मतवैक्रमे ॥ ५ ॥
रामेन्दुदधि भूयुक्ते शालिवाहनजेशके ।
राधशुक्लद्वितीयायां गुरौ दुंदुभिवत्सरे ॥ ६ ॥
घट्टोत्सर्गः सुसम्पन्नः यजमान्यभ्यनुज्ञयया ।
स्वामिकार्यहितैकेच्छु जीवाजीशर्म्म हस्ततः ॥ ७ ॥

(शाके १७१३)

काशी में बिन्दुमाधव घाट सम्बत् १७१२ में श्री छत्रपति महाराज के पन्त प्रतिनिधि परशुराम के, पुत्र श्री श्री निवास की स्त्री श्रीमती राधाबाई ने बनवाया है और ऐसा अनुमान होता है जब यह घाट नहीं बना था तभी से इस का नाम नरसिंह दाढ़ा था, क्योंकि नरसिंह दाढ़े का नाम उस श्लोक में पड़ा है जो बाई साहब के काल का बना है। निश्चय है कि नरसिंह दाढ़ा के नाम से लोग सोचेंगे कि यह कौन वस्तु है, परन्तु मैं इतना ही कह सकता

प्रत्यर्थिक्षितिपालकालनसु ***** ने दूतिका ।
मुद्राङ्क प्रकटप्रतापतपनप्रोद्रा सिताशामुखे ॥ १ ॥
क्षोणीशेकवरे प्रशासति महीं तस्मिन् नृपालावलिस्फूर्जन्मौ-
लिमरीचिवीचिरुचिरोदञ्चत्पादाम्भोरुहे ॥ २ ॥
तद्राज्यैकधुरन्धरस्य वसुधा साम्राज्यदीक्षागुरोः ।
श्रीमट्टण्डनवंशमण्डनमणेः श्रीटोडरक्ष्मापतेः ।
धर्मौघैकविधौ समाहितमतेरादेशतोऽचीकर-
द्वापीं पाण्डवमण्डपे**वनो गोविन्ददासः सुधीः ॥ ३ ॥
ऋतुनिगमरसात्मासम्मिते १६४६ वत्सरेशे
सुकृतिकृतिहितैषी टोडरक्षोणिपालः ।
विहितविविधपूर्त्तोऽचीकरच्चारु वापीम्
विमलसलिलसारां बद्धसोपान पंक्तिम् ॥ ४ ॥

—:*:◌:*:—

पंपासर का दानपत्र ।

यह दानपत्र गोदावरी के तीर पर एक खेतवाले को मिला है। यह पांच टुकड़ों में अच्छा गहिरा खुदा हुआ कपाली लिपि में पांचो टुकड़े एक तामे की सिकड़ी में बंधे हुए एक तामे के डब्बे में बन्द और उसी डब्बे में शीसे की भांति किसी वस्तु के आठ टुकड़े और एक चोंगा जिस में सील लगी हुई थी निकला है। अनुमान होता है कि इस चोंगे में कागज रहा होगा, जो काल पाकर भीतर ही भीतर गल गया है। यह पत्र चन्द्रवंशी क्षत्री दो राजाओं के दिए

सं० १६७ के हैं और इन के पढ़ने से उस काल की बहुत सी चाल व्यवहार और उन के राज्य करने की नीति इत्यादि प्रगट होती है। इस से इनका यथास्थित संस्कृत का भाषानुवाद यहां प्रकाश होता है। इस वंश का और कहीं पता नहीं लगा है। केवल उन दोनों ताम्रपत्रों से जो कालेपानी से सं० १८५७ में एशियाटिकसोसाइटी में आए थे इन का सम्बन्ध ज्ञात होता है, क्योंकि उन में यही लिपि और इन्हीं दोनों वंशों का वर्णन है पर नाम अलग अलग है और उन दोनों में सम्बन्ध भी नहीं है।

विजनजवन नामक क्षत्रियों के दो प्राचीन कुल थे जिन की संज्ञा ढढ़िया और पुछड़िया थी ॥ १ ॥

अपने बैरियों का सर्व्वस्व धन और धर्म्म नाश करके और भोग करके ढढ़िया वंश समाप्त हुआ।

पुछड़िया कुल के राजा जब दोनों कुलों के स्वामी हुए तब इन लोगों ने प्रजा का बड़ा आडम्बर से सत्कार किया और चक्रवर्त्ती हो गए ॥ ३ ॥

विद्या में बड़े बड़े पद और सभाओं में बड़ी बड़ी वक्तृता और आदर के अनेक आकाशी चिन्हों से इन के अनुयायी सदैव शोभित रहते थे ॥ ४ ॥

उदार ऐसे थे कि समाधि में भी रुपया नहीं बचने पाता था: चारो ओर केवल जाचक ही जाचक दिखाई देते थे ॥ ५ ॥

कलानिपुण ऐसे थे कि इन के सिवा और कोई था ही नहीं और राजनीति के छल बल के तो एकमात्र बृहस्पति थे ॥ ६ ॥

प्रत्यर्थिक्षितिपालकालनसु ***** ने दूतिका ।
मुद्राङ्क प्रकटप्रतापतपनप्रोद्दा सिताशामुखे ॥ १ ॥

क्षोणीशेकवरे प्रशासति महीं तस्मिन् नृपालावलिस्फूर्जन्मौ-
लिमरीचिवीचिरुचिरोदञ्चत्पादाम्भोरुहे ॥ २ ॥

तद्राज्यैकधुरन्धरस्य वसुधा साम्राज्यदीक्षागुरोः ।
श्रीमट्टण्डनवंशमण्डनमणेः श्रीटोडरक्ष्मापतेः ।
धर्मौघैकविधौ समाहितमतेरादेशतोऽचीकर-
द्वापीं पाण्डवमण्डपे**वनो गोविन्ददासः सुधीः ॥ ३ ॥

ऋतुनिगमरसात्मासम्मिते १६४६ वत्सरेंशे
सुकृतिकृतिहितैषी टोडरक्षोणिपालः ।
विहितविविधपूर्त्तोऽचीकरच्चारु वापीम्
विमलसलिलधारां बद्धसोपान पंक्तिम् ॥ ४ ॥

—:*:◌:*:—

पंपासर का दानपत्र ।

यह दानपत्र गोदावरी के तीर पर एक खेतवाले को मिला है। ह पांच टुकड़ों में अच्छा गहिरा खुदा हुआ कपाली लिपि में पांचो टुकड़े एक तामे की सिकड़ी में बंधे हुए एक तामे के डब्बे में बन्द और उसी डब्बे में शीसे की भांति किसी वस्तु के आठ टुकड़े और एक चोंगा जिस में सील लगी हुई थी निकला है। अनुमान होता है कि इस चोंगे में कागज रहा होगा, जो काल पाकर भीतर ही भीतर गल गया है। यह पत्र चन्द्रवंशी क्षत्री दो राजाओं के दिए

सं० ११७ के हैं और इन के पढ़ने से उस काल की बहुत सी चाल व्यवहार और उन के राज्य करने की नीति इत्यादि प्रगट होती है। इस से इनका यथास्थित संस्कृत का भाषानुवाद यहां प्रकाश होता है। इस वंश का और कहीं पता नहीं लगा है। केवल उन दोनों ताम्रपत्रों से जो कालेपानी से सं० १८५७ में एशियाटिकसोसाइटी में आए थे इन का सम्बन्ध ज्ञात होता है, क्योंकि उन में यही लिपि और इन्हीं दोनों वंशों का वर्णन है पर नाम अलग अलग है और उन दोनों में सम्बन्ध भी नहीं है।

विजनजवन नामक क्षत्रियों के दो प्राचीन कुल थे जिन की संज्ञा ढढ़िया और पुछड़िया थी ॥ १ ॥

अपने बैरियों का सर्व्वस्व धन और धर्म्म नाश करके और भोग करके ढढ़िया वंश समाप्त हुआ।

पुछड़िया कुल के राजा जब दोनों कुलों के स्वामी हुए तब इन लोगों ने प्रजा का बड़ा आडम्बर से सत्कार किया और चक्रवर्त्ती हो गए ॥ ३ ॥

विद्या में बड़े बड़े पद और सभाओं में बड़ी बड़ी वक्तृता और आदर के अनेक आकाशी चिन्हों से इन के अनुयायी सदैव शोभित रहते थे ॥ ४ ॥

उदार ऐसे थे कि समाधि में भी रुपया नहीं बचने पाता था: चारो ओर केवल जाचक ही जाचक दिखाई देते थे ॥ ५ ॥

कलानिपुण ऐसे थे कि इन के सिवा और कोई था ही नहीं और राजनीति के छल बल के तो एकमात्र वृहस्पति थे ॥ ६ ॥

कहते हैं कि शौरसेन यादव वंश में बलदेव जी से इस वंश का साक्षात् सम्बन्ध है, क्योंकि अब तक ये जैसे हलीमद प्रिय भी हैं ॥ ७ ॥

ये इतने चतुर थे कि और सब जाति के लोग इन के सामने मूर्ख ज्ञात होते थे और प्रबल भी इतने कि इन की बात कभी दोहराई नहीं जाती थी ॥ ८ ॥

इन में वेणु के पुत्र सगर के पौत्र द्वीपसिंह के प्रपौत्र नाभाग और त्रिशंकु नामक दो राजा हुए ॥ ६ ॥

नाभाग को भोज मदमत्त और भगवान तीन पुत्र और त्रिशंकु को वावन नामक एक पुत्र था ॥ १० ॥

बावन को गौरचन्द्र और हनूमान दो पुत्र हुए, जो अब तमसा कृष्णा तक नीलगिरि से हिमगिरी के प्रान्त तक राज्य करते हैं ॥११॥

इन के अभिषेक के जलकण से और हाथियों के मद से तथा शूरों के परिश्रम और रति शूरों के स्वेद जल और इन के शत्रुओं की स्त्री के नेत्रजल से मिल कर इन की दान जलधारा नगर के चारो ओर खाई सी बन रही है ॥ १२ ॥

जिन लोगों को ये जीतते थे उन की ऐसी दुर्गति होती थी कि वे अन्न वस्त्र को भी दीन हो जाते थे तथापि ये ऐसे दयालु थे कि बही मात्र उन के शरण होते थे ॥ १३ ॥

प्राचीन कर सब इन लोगों ने क्षमा कर दिए। इन के काल में केवल आठ दस कर बच गए। उस पर भी प्रजा को दुःखी देख कर ये उन का बड़ा प्रतिपालन करते थे ॥ १४ ॥

वरंच ये ऐसे दयालु थे कि और राजाओं की भांति आप कर लेने में ये ऐसे लज्जित होते थे जिस का वर्णन नहीं। इसी से पाठ-शाला धर्म्मशाला इत्यादि धर्म्म कार्य्य के हेतु कर संगृहीत हो कर उन्हीं कामों में व्यय होता था ॥ १५ ॥

शुकलानधान उसी को समझते थे जो इन के जातिवालों को नौकरी वा बनज के मिस आवे ॥ १६ ॥

लक्ष्मी के एक मात्र आश्रय सरस्वती के पूरे दुर्गा के वर्ग तीनों शक्ति से ये सम्पन्न और त्रिदेव पुरजन के बड़े आग्रही थे ॥ १७ ॥

इन धर्म्मावतारों ने पंपासर तीर्थ पर चन्द्रमा के पूर्ण ग्रास पर फाल्गुनी पौर्णिमा सम्वत् ११७ पूर्व्वा फालगुनी नक्षत्र व्यतीपात योग वैद्रथ करुण शनिवार कन्या पर गुरु मेष पर शुक्र मीन पर सूर्य कुम्भ में चन्द्रमा मिथुन में बुध करकट में मंगल और शनि में पंपासर तीर्थ में स्नान कर परम धार्म्मिक परमेश्वर परम माहेश्वर भट्टारक महाराज गौरचन्द्र तथा हनुमच्चन्द्र मुड़ाल गोत्र गर्गा-ङ्गिरस मुड़ाल द्विजवर ठक्कुरनासो के पौत्र ठक्कुर उब्बट के पुत्र ठक्कुर चुप्पठ शर्म्मा को कलिंगदेशान्तर्गत खाताबी प्रगने के छीछुल प्रगने का पसेसरी और कारंस नामक दो ग्राम दे कर इस के सीर सायर आकास पाताल खेत खर्ब्बट बाटी तिवारी जल थल सब पर इन का अधिकार करते हैं इन के वंश का जो होय वह उस को मानै कोई कर नहीं लगेगा।

मि० चैत्र शुद्ध १ सं० ११८ विक्रम के लिख सूत्रधार प्रवासी राय और ब्राह्मण ब्राह्मय ने शुभ।

(इस के आगे ये श्लोक लिखे हैं)

ये सर्वेस्युभोविनः पार्थिवेन्द्रान् तेभ्यो भूयोबाचते रामचन्द्रः ।
सामान्योऽयं धर्म्मसेतुर्नृ पाणां काले काले रक्षणीयो भवद्भिः ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्ति हरेत्युयः ।
षष्ठि वर्ष सहस्राणिं विष्ठायां जायते क्रिमिः ॥
शुभम् श्रीः ॥

कन्नौज का दानपत्र

यह दानपत्र राजा गोविन्दचन्द्र कनौज के राजा का है जो दिल्ली के बादशाही खज़ाने से सिख लोग लाहोर लूट कर ले गए थे और अब श्री पंडित राधाकृष्ण चीफ पण्डित लाहोर ने उस की एक प्रति हमारे पास भेजी है। इस राजवंश का पूर्व स्थापक गाहरबाल राजा था और करल्ल इस का अन्तिम राजकुमार हुआ। उसी वंश की एक शाखा महिआल में (वा महिआल का पुत्र) भोज हुआ जिस का काल ८८५ ईस्वी है। इस भोज और करल्ल की कीर्त्ति समाप्त होने के पीछे उसी वंश की शाखा में यशोविग्रह राजा हुआ उस का पुत्र महीचन्द्र, उस का पुत्र चन्द्रदेव, उस का पुत्र मदनपाल और उस मदनपाल का पुत्र गोविंदचन्द्र था, जिस ने यह दान किया है। यह राजा ऐसा दानी था कि इस के दिये हुये गावों के शतावधि दानपत्र मिले हैं। ये लोग वैष्णव वा वैष्णवों के अनुयायी थे, क्योंकि इन के दानपत्रों पर गरुड़ का चिन्ह है और गोविंदचन्द्र की मोहर पांचजन्य शंख है। 'अकुण्ठोत्कुण्ठ' यह श्लोक प्रायः दानपत्रों पर है। यह दानपत्र संवत् ११८२ में माघ बदी ६ शुक्रवार को श्रीयमती (?) तीर्थ में गंगा में स्नान कर के राजा गोविंदचन्द्र

ने गौतम गोत्र के गोतमाङ्गिरस मुद्गल त्रिप्रवर के ब्राह्मण ठकुर अल्हन के पुत्र छीकठ बाकठ दोनों भाइयों को हलद तालुके का गोंउली नाम गाँव दिया है।

स्वस्ति–'अकुण्ठोत्कुण्ठवैकुण्ठकण्ठलुठत्करः। संरम्भः सुरतारम्भे सश्रियः श्रेयसेऽस्तुवः ॥ १ ॥ आसीद्शीतद्युति वंशजातक्ष्मापाल-मालासुदिवङ्गतासु । साक्षाद्विवस्वानिवभरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्युदारः ॥ २ ॥ तत्सुतोऽभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभनिजम् । येनापारमकूपार पारेव्यापारितंयशः ॥ ३ ॥ तस्याभूत्तनयोनयैक-रसिकः क्रांतद्विषन्मण्डलो विध्वस्तोद्धतवीरयोतिमिरः श्रीचन्द्र-देवोनृपः । येनोदार तरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवम् । श्रीमद्गाधि-पुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ॥ ४ ॥ तीर्थानि काशिकुशि-कोत्तरकौशलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयताभिगम्य ॥ हेमात्मतुल्य-मनिशंददता द्विजेभ्यो येनाङ्किता वसुमती शतशस्तुलाभिः ॥ ५ ॥ तस्यात्मजोविजयपालइतिक्षितीन्द्रचूड़ामणिर्विजयतेनिजगोत्रचन्द्रः। यस्याभिषेककलशोल्लसितैः पयोभिः प्रक्षालितंकलिरजः पटलं धरित्र्याः ॥६॥ यस्यासौ द्विजयप्रयाणसमये तुङ्गाचलोच्चैश्चलन्माद्य-त्कुम्भिपदक्रमायमभरभ्रस्यन्महीमण्डलम् । चूड़ारत्न विभिन्नतालुग-लितसनासृगुद्भासितः शेषःपेषवशाद्विक्षणमसौक्रोडेनिलीनाननः ॥७॥ तस्मादजायत निजायत बाहुवल्लिवद्धावरुद्धनवराज्य गजो-नरेन्द्रः । सान्द्रामृतद्रवमुचा प्रभवो गवां यो गोविन्दचन्द्रइति चन्द्रइवाम्बुराशेः ॥ ८ ॥ नकथमप्यलभत्तरणक्षमास्तिसृषुदिक्षुगजान-थवज्रिणः । ककुभिबभ्रमुरभ्रमुवल्लभ प्रतिभटाइवयस्यघटागजाः ॥ ९ ॥

सोयं समस्तराजचक्रसंसेवितचरणः परमभट्टारक

धिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निज भुजोपार्ज्जित श्रीकान्यकुब्जा-
धिपत्य श्रीचन्द्रदेवपदानुयात परम भट्टारक महाराजाधिराज
परमेश्वर परम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति राज्यत्रयाधि
विविध विद्याविचारवाचस्पतिः श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवो विजयी
हल्दोपपत्तानायामगोउलीग्राम निवासिनो निखिलजन पदानुपग-
तानपि च राजाराज्ञी युवराज मान्त्रिपुरोहित-प्रतिहार-सेनापति-
भाण्डारिकाक्षपटलिकभिकनैमिमित्तिकान्तःपुरिक-दूत-करि-तुरगप-
त्तनाकरस्थानगोकुलाधि पुरुषानाज्ञापयति बोधयत्यादिशतिच यथा
विदितमस्तुभवतां मयोपरिलिखितग्रामः सजलस्थलः सलोहलवणा-
करः समत्स्याकरः सगर्तोखरः समधूकाम्रवनबाटिकः विटपतृण-
युतोगोचरपर्य्यन्तः सोर्ध्वाविभ्वत्तरः घटविबद्धः स्वसीमापर्य्यन्तः
द्व्यषीत्यधिकैका दशशत संवत्सरे ११८२ माघेमासि कृष्णपक्षे
षष्ट्यांतिथौ भृगावपितः श्रीवमतोस्थलेगङ्गायां स्नात्वा विधिवन्मन्त्र-
देव मुनिमनुजभूत पितृगणां स्तर्पयित्वा तिमिर पटल पाटन पटुम-
हसमुद्धतार्चिषमुपस्थायौषधिपतिसकलशेखरं सपूभ्यचर्य त्रिभुवन-
त्रातुर्वासुदेवस्य पूजां विधायप्रचुरपायसेनहविषा हविर्भुजंहुत्वा
मानापित्रो रात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धयेऽस्माभिरग्रे करणकुशलता-
युतकमतुलोदक पूर्वगौतमगौत्राभ्यांगौतमाङ्गिर समुद्गलत्रिः प्रवरा-
भ्यांठक्कुर श्रीआल्हनपुत्राभ्यां श्रीछीछुट श्रीवाछुट शर्म्मभ्यां आच-
न्द्रार्कं यावच्छासती कृत्यप्रदत्तामत्वा यथा दीयमानभागभोगकर
प्रवणिकरतुरुष्कदण्ड सर्वादायनाज्ञां विवेकीभूयदान्तव्योति ।
भवन्तिचात्र श्लोकाः ।

भूमिंयःप्रतिगृह्णाति यश्चभूमिंप्रयच्छति । उभौ तौपुण्यकर्माणौ नियतंस्वर्गगामिनौ ॥ १ ॥ सम्बन्धमासनंछत्रं वराश्वावरवारणाः । भूमिदानस्यचिन्हानि फलमेतत्पुरंदर ॥ २ ॥ सर्व्वानेतान्भाविनःपार्थिवेन्द्रान्भूयो भूयो याचतेरामचन्द्रः । सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां कालेकालेपालनीयोभवद्भिः ॥ ३ ॥ बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिःसगरादिभिः । यस्ययस्ययदाभूमिस्तस्यतस्यतदाफलम् ॥ ४ ॥ गामेकाम् स्वर्णमेकञ्च भूमेरप्येकमङ्गुलम् । हरन्नरकमाप्नोति यावदाहूतसंपलवम् ॥ ५ ॥ तड़ागानां सहस्रेणाप्यश्व मेघशतेनच । गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुद्धति " ॥ ६ ॥ इति ।

नागमंगला का दानपत्र ।

श्रीरङ्गपट्टन से १५ कोस उत्तर नागमंगल शहर में एक मन्दिर है । वहां पर निम्नलिखित लेख ६ ताम्रपत्रों पर खोदा हुआ मिला है जो कि एक मोटे धातु के कड़े से वेधित हैं, ये पत्रे १० इंच लम्बे और ५ इंच चौड़े हैं ।

इस लेख से ज्ञात होता है कि पृथिवी निगुड़ राजा की स्त्री कुंदेवी जो पल्लवाधिराज को पोती थी उस ने शके ६९९ में एक जैन मन्दिर स्थापित किया था। इसी के सहायता के कारण उस के पति को विजय स्कन्धावार के महाराज पृथ्वी कोंगणि से उस के राज्य-प्राप्ति के पचास बरस बाद प्रार्थना करने पर यह दानपत्र मिला था ।

मर्करा के पत्रों के लेख से मिलता हुआ कुछ कोंगू राजाओं का वृत्तान्त इस लेख के पूर्व में है, जो सन् ४६६ से आरंभ होता है । इन लेखों में केवल इतना ही अन्तर है कि इस में प्रथम महाराज

का नाम कोड्गणी वर्म्म धर्म्म महाधिराज और छठें का कोगणी महाधिराज लिखा हैं और केवल दानकर्त्ता को कौण्गणी लिखा है। इस शब्द के भिन्न भिन्न प्रकार के लिखे जाने से कुछ प्रयोजन नहीं। केवल इस से यह सूचना होती है कि कुर्ग में जो एक पत्थर पर खुदा लेख निकाला था और जिस को सत्यवाक्य कोड्गिणी वर्म्म धर्म्म महाराजाधिराज ने सन् ८४० में लिखा था उस में भी इसी शब्द कोण्गणी ही का अपभ्रंश है और इस को कभी कभी कोडगू भी लिखते थे जो कि कोड्गू से बहुत मिलता है। यह कोड्गू उस देश का प्रचलित नाम है जिस को अंग्रेज़ लोग कुर्ग लिखते हैं।

मर्करा के लेख के सदृश इस से भी ज्ञात होता है कि दूसरे माधव और कदंबराजाओं में सम्बन्ध भया था अर्थात् पूर्वोक्त ने दूसरे की भगिनी से विवाह किया था, इस में विष्णु गोप के पुत्र गोद लेने और डिंडिकरराय के राज्य का कुछ भी वर्णन नहीं है। इस समय से लेकर भूविक्रम के राज्य तक जिस ने सन् ५३१ में राज्यसिंहासन को सुशोभित किया दानपत्र और राज्य इतिहास दोनों में राजाओं की नामावली सम्पूर्ण मिलती है। इस के पश्चात् विलंड जिस का शुद्ध नाम राजा श्रीवल्लभाख्य था उस को इतिहास में वर्त्तमान राजा का भाई लिखा है (प्रोफेसर डाउसन के अनुसार छोटा भाई और टेलर के अनुसार बड़ा)। यथार्थ में वह राजा और राज्यप्रबंध का कार्य सम्पादक दोनों था। दानपत्र में छोटे भाई का नाम नवकाम लिखा है। कोगणीमहाराज सीमेश्वर का वृत्तान्त जिस का शुद्ध नाम डाउसन शिवग महाराय टेलर शिवरामराय बताते हैं

पीछे लिखा है। इतिहास में तो यों है कि इस का पौत्र पृथ्वी कोंगणी महाधिराज था, जो सन् ७४६ में राज्यसिंहासन पर था। यही नाम दानकर्त्ता का है और यदि भीमकोप और राजाकेसरी इसी राजा के नामांतर मान लिये जायं जैसा कि सम्भव होता है तो इतिहास और उन पत्र का वृत्तांत एक मिल जाता है।

(१) स्वस्ति जितं भगवता गतघनगगनाभेन पद्मनाभेन श्रीमज्जान्हवेकुलामलव्योमावभासनभास्करः स्वखड्गैकप्रहारखंडितमहाशिलास्तंभलब्धबलपराक्रमोदारणारिगणविदारणोपलब्धवारणविभूषणविभूषितः काण्वायनसगोत्रश् श्रीमत्कोदग्निवर्माधर्ममहाधिराजः तस्य पुत्रः पितुरन्वागतगुणयुक्तो विद्याविनयविहितवृत्तः सम्यक्प्रजापालनमात्राधिगतराज्यप्रयोजनो विद्वत्कविकांचननिकषोपलभूतो नीतिशास्त्रस्य वक्तृप्रयोक्तृकुशलो दत्तकसूत्रवृत्तेः प्रणेता श्रीमान्मामहाधिराजः तत्पुत्रः पितृपैतामहगुणयुक्तोऽनेकचतुर्दन्तयुद्धावाप्तचतुरुदधिसलिलास्वादितयशाः श्रीमद्धरिवर्ममहाधिराजः, तत्पुत्रो द्विजगुरुदेवतापूजनपरो (२) नारायणचरणानुध्यातः श्रीमान्विष्णुगोपमहाधिराजः तत्पुत्रो त्र्यंबकचरणाम्भोरुहरजपवित्रीकृतोत्तमाङ्गः स्वभुजबलपराक्रमक्रयकृतराज्यः कलियुगबलपंकावसन्नधर्मवृषोद्धरणनित्यसन्नद्धः श्रीमान्माधवमहाधिराजः तत्पुत्रश् श्रीमत्कदंबकुलगगनभक्तिमालिनः कृष्णवर्ममहाधिराजस्य प्रियभागिनेयो विद्याविनयातिशयपरिपुरितांतरात्मा निरवग्रहप्रधानशौर्यो विद्वत्सु प्रथमगण्यः श्रीमान् कोंगणिमहाधिराजः अविनीतनामा तत्पुत्रो विजृम्भमाणशक्तित्रय "अंदरिह" "अलत्तुप" "पौरुलाले" पेलंगराज्यानेकसमरमुखमखहुतशूरपुरुष

पशूपहारविघसविहस्तीकृतकृतान्ताग्निमुखः किरातार्जुनीयपंचदश-सर्गा (३) दिकोंकारो दुर्विनतीतनामधेयः तस्य पुत्रो दुर्दान्तविमर्द-मिसृमितविश्वम्भरादिपंचालिमालामकरन्दपुंजपिंजरीक्रीयमाणचर-णयुगलनलिनोमुष्करनामनामधेयः तस्य पुत्रश्चतुर्दशविद्यास्थानाधि-गतविमलमतिः विशेषतो नवकोशस्य नीतिशास्त्रस्य वक्तृप्रयोक्तृ-कुशलो रिपुतिमिरनिकरनिराकरणोदयभास्करः श्रीविक्रमप्रथित-नामधेयः तस्य पुत्रः अनेकसमरसम्पादितविजृंभितद्विरदरदनकुलि-शघातव्रणसमरुद्धस्वास्थ्यद विजयलक्षणलक्ष्मी कृतविशालवक्षस्थलः समधिगतसकलशास्त्राधितत्वः समाराधितत्रिवर्गो निरवद्यचरित-प्रतिदिनवर्द्धमानप्रभावो भुविक्रमनामधेयः अपिच ॥

नानाहेतिप्रहारप्रतिहतसुभटारामवाटोत्थितासृग् ।
भारास्वादामृताशक्षुधितपरिसरद्गृध्रसंरुद्धसीमे ॥
सामन्तान्पल्लवेन्द्रान्नरपतिमजयद्योविलंदाभिधाने ।
राज्याश्रीवल्लभाख्यः समरशतजयावाप्तलक्ष्मीविलासः ॥

तस्यानुजो नतनरेन्द्रकिरीटकोटिरत्नार्कदीधितिविराजितपादपद्मः ।
लक्ष्म्याः स्वयं वृनपतिर्नवकामनामाशिष्टप्रियोरिगणदारणगीतकीर्तिः ॥

तस्य कोगणिमहाराजस्य श्रीमेश्वरापरनामधेयस्य पौत्रः समवन-तसमस्तसामन्तमुकुटतटघटितबहुलरत्नविलसदमरधनुष्काण्डम-ण्डितचरणनखमण्डलो नारायणे निहितभक्तिः शूरपुरुषतुरगनरवा-रणघटा संघट्टदारुणसमरशिरसिनिहितात्मकोपो भीमकोपः प्रकट-रतिसमय समनुवर्तनचतुरयुवतिजनलोकधूर्तो लोकधूर्तः सुदुर्धरानेकयुद्धमूर्धन्यलब्धविजयस्पदह्नितगजघटां (५) तकेसरीराजकेसरी अपिच ॥

यो गंगान्वयनिर्मलांबरतलव्याभासनप्रोल्लसन् ।
मार्तण्डोरिभयंकरः शुभकरः सन्मार्गरत्नाकरः ॥
सौराज्यं समुपेत्यराज्यसविनाराजन्यतारोत्तमो ।
राजा श्रीपुरुषेश्वरो विजयते राजन्यचूडामणिः ॥
कामः रामः सचापे दशरथतनयो विक्रमे जामदग्न्यः ।
प्राज्ये वीर्ये वलारिर्वसुमहसिरविः स्वप्रभुत्वेधनेशः ॥
भूयोविख्यातशक्तिः स्फुटतरमखिलप्राणभाजांविधाता ।
धात्राश्लिष्टः प्रजानांपतिरितिकवयोयंप्रशंसंतिनित्यम् ॥

तेन प्रतिदिनैप्रवृत्तमहादानजनितपुण्याहघोषमुखरितमन्दि-
रोदारेण श्रीपुरुषप्रथमनामधेयेन पृथ्वीकोंगणिमहाराजेन, अष्टान-
त्युत्तरषट्छतेषु शकवर्षेष्वतितेष्वात्मनः प्रवर्द्धमानविजयवीर्य-
संवत्सरेपंचाशत्तमेवर्द्धमाने मान्यपुरमधिवसति विजयस्कंदावारे
श्रीमूलमूलशरणाभिनन्दितनन्दिसंगान्वयएरेगित्तरंनाम्निगने मूलि-
कलगच्छे स्वच्छतरगुणाकरकोरप्रनतिप्रल्हादितसकललोकः चन्द्र-
इवापरः चन्द्रनन्दिनामगुरुरासित तस्य शिष्यः समस्तविबुधलोक-
परिरक्षणक्षमात्मशक्तिः परमेश्वरलालनीयमहिमा कुमारवद्द्वितीयः
कुमारनन्दिनामा मुनिपतिरभवत् तस्यांतेवासी समधिगतसकलतत्वा-
र्थसमर्पितबुधसार्द्धसंपत्संपादितकीर्तिः कीर्तिनन्द्याचार्यो नामा
महामुनिः समजनि, तस्य प्रियशिष्यः शिष्यजनकमलाकरप्रवोधज-
नकः मिथ्याज्ञानतमःसमुदलसन्मानात्मकसद्धर्मव्योमावभासनभा-
स्करोविमलचन्द्राचार्यः समुदपादि, तस्य महर्षेर्धर्मोपदेशनयाश्री-
मद्वाणकलकलः सर्वतपोमहानदीप्रवाहः बाहुदण्डमण्डलाखण्डि-
तारिमण्डलद्दमशुण्डो दुण्डुप्रथमनामधेयो निर्गुण्डयुवराजो जज्ञे,

तस्य प्रियात्मजः आत्मजनितनयविषनिःशेषीकृतरिपुलोकः लोकहितः मधुरमनोहरचरितः चरितार्तविकरांप्रवृत्तिः परमगुणप्रथमधेयः श्रीपृथ्वीनिर्गुण्डराजोऽजायत पल्लवाधिराजः प्रियतमजायां सगरकुलतिलकात् मरुवर्मणो जातांकुण्डाधिनामधेयामुवाह भर्तृभावनाविर्भुवयातयासंततप्रवर्तितधर्मकार्ययानिर्मिताय श्रीपुरोत्तरदिशामलं कुर्वतेलोभतिलकधाम्नेजिनभवनाय खण्डस्फुटितनवसंस्कारदेवपूजादानधर्मप्रवर्तनार्थं तस्य एव पृथ्वीनिर्गुण्डराजस्य विज्ञापनया महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीजसहितदेवेन निर्गुण्डविषयांतः पाति पोन्नालिनामाग्रामः सर्वपरिहारोपेतोदत्तः तस्य सीमांतराणि पूर्वस्यांदिशि नोलिवेलदा वेगलेमालदि, पूर्वदक्षिणस्यांदिशिपाण्यंगेरि, दक्षिणस्यांदिशि वेडगली गेरयादिल गेरयापल्लादकुदल, दक्षिणपश्चिमायांदिशिजयद शर्केय्यावेडगलमोलादुत्तरपश्चिमायांदिशि हेनके वितालतुवाजराकेलि, पश्चिमोत्तरस्यांदिशि पुणुसेयगोट्टगालाकालकुप्ये, उत्तरस्यांदिशि सामगेडेयपल्लदाह पेरमुडिके उत्तरपूर्वस्यांदिशि कलाम्बेल्यगद, ईशान्यामन्यादिक्षेत्राणि दत्तानि डुण्डुसमुद्रदावयलुलकिलुदाडामेगेपदिरकंडुगंमणामपालेयरेनल्लु राजारपाकं ट्टकण्डुगं श्रीवरदडुण्डगामण्डरातण्डडापडुवयाण्डुताण्डु श्रीवरदावयलुल्लकम्मरगत्तिनल्लिरिकण्डुगं कालानिपेरगिलबकेडगे- आरमण्डुगं रेपूलिगिलेयाकोयेलगोदायददं इरुपत्तगुण्डुगं भेद्य अदुबुश्रीवरवा बडगणापडुवणाकोनुणन् देवंगेशीमदपं एद्दिदं मूषन्ताद्बिन्दुमनेयमनेतानं अस्य दानस्य साक्षिणः अष्टादशप्रकृतयः अस्य दानस्य साक्षिणः षण्णवति सहस्रविषयप्रकृतयः योऽस्यापहर्ता लोभान्मोहात्प्रमादेन वा सपंचभिर्महद्भिः पातकैः संयुक्तो भवति यो रक्षति सपुण्यभाग् भवति अपि चात्रमनुगीताः श्लोकाः ।

स्वदातुं सुमहच्छक्यं दुःखमन्न्यस्य पालनं ।
दानं वा पालनं वेति दानाच्छ्रेयो ऽनुपालनं ॥
देवस्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते ।
विषमेकाकिनं हन्ति देवस्वं पुत्रपौत्रकौ ॥

सर्वकलाधारभूतचित्रकलाभिज्ञेन विश्वकर्माचार्येणेदं शासनं लिखितं चतुष्कएडुकत्री हिवीजमालं द्विकएडुककंगुदोत्तं तदपि ब्रह्मदेयमिव रक्षणीयं ।

चित्रकूट (चित्तौर) स्थ रमा कुंड प्रशस्तिः

ऊँनमः श्रीगणेशप्रसादात् सरस्वत्यै नमः ॥ श्रीचित्रकोटाधिपति श्रीमहाराजाधिराज माहाराणा श्रीकुंभकर्ण पुत्री श्रीजीर्ण प्रकारे सोरठ पति महाराया राय श्रीमंडलीक भार्या श्रीरमाबाई ए प्रासाद रामस्वामि रु रामकुंड कारायिता संवत् १५५४ वर्षे चैत्र सुदि ७ रवौ मुहूर्त कृताः । शुभं भवतु ।

श्रीमत्कुंभ नृपस्य दिग्गज रदातिक्रांत कीर्त्यं बुधेः । कन्या यादव वंश मंडन मसि श्रीमंडलीक प्रिया । संगीतागम दुग्ध सिंधुजसुधा स्वादे परा देवता । प्राद्युम्नं कुरुते वनीपक जनं कं न स्मरंतं रमा ॥ १ ॥ श्रीमत्कुंभल मेर दुर्ग शिखरे दामोदरं मंदिरं । श्रीकुंडेश्वर दक्षिणा श्रित गिरे स्तीरे सरः सुंदरं । श्रीमज्जूरि महाब्धि सिंधु भुवने श्रीयोगिनी पत्तने भूयः कुंड मचीकरत्किल रमा लोकत्रये कीर्त्तये ॥ २ ॥ श्रीकुंभोद्भवयां बुधि निंयमितः किं वा सुधा दीधिते र्निक्षेप स्त्रिदशैरशोषण भिया किंवाप्सरा सुंदरं । प्राप्तुं पौर पुरंध्रि वृंद मभुजद्भूमी तलं मानसं श्चित्रं रामशर प्रहार भयतो ब्धि,बेह कंडायते ॥ ३ ॥ यस्मिन्नीर विहारि कोक मिथुनं क्रीडासमुन्मीलिते

शीतांशा वितरेतरेण नितरां विश्लेष मासाद्य वा । तापे नैव तनौ विभर्त्यं विरतं सोपान भित्ति स्फुरत् स्वीयांगे प्रतिबिंब संगम वशा-दूरेपि तीरे चरत् ॥ ४ ॥ पानीय हार विहार सुंदर सुंदरी वदनं निजं प्रतिबिंब भूत मितीह निर्मल धीर नीरग मंबुजं । आदातु मुद्यत पाणिना जलदोलनेन गत श्रमा वितनोति कानन कुंभ पूरण मत्र विस्मय विभ्रमा ॥ ५ ॥ रसाल तरु मंजुलं पिक विनोद नादो त्कलं क्वचित् कनक केतकोद्‌ग पराग पिंगांचलं । सशीकर सुशीतलं सुरभि वृंद मंदा निलं यदीय मति निर्मलं जयति वीर भूमी तलं ॥ ६ ॥ यदिय तट भूतलं हसित कुंद पुष्पोज्वलं क्वचिद्विकच मालती कुसुम लोल भृंगे ष्कलं । क्वचित् शरलसारणी तरल नीरता पेशलं स्तुवंति सुरयोषितः किमुत नंदना द्प्यलं ॥ ७ ॥ एतद्भित्ति तटालयेषु रुचिरो त्कीर्णैः सुरीणां गणैः क्रीडो पागत पौरयौवत युतोपांतै रवंते रपि । तत्तादृक्प्रतिबिंबितै रुपलसन्ना गांगना संगिभि र्मन्ये कुंड मिदं रमा विरचितं लोकत्रया दद्भुतं ॥८॥ यद्वारुण प्रतिष्ठा समये समुपेत विबुध वृंदस्य । कनकदुकूल विवरणं विदधाति रमेति लोलुपंति सुराः ॥ ६ ॥ यावच्छेष शिरःसु शेखर पदं भूभृतधात्र्या मये मेरु र्मेरु गिरे रुपर्युपरितो ब्रह्मादि लोकत्रयं । धत्ते यावदमुत्र वा दिनमंणि माणिक्य नैराजनं तावच्चारुतरं रमा विरचितं कुंडं चिरं नंदतु ॥ १० ॥

श्री रमा वर्णनं ।

उन्मीलद्‌गुण रत्नरोहण महो प्रौढप्रभालंकृता सौंदर्यामृत वाहिनी मधुसुहृत्साम्राज्य सर्वस्वभूः । सौराष्ट्रेश्वर यादवान्वयमणेः श्रीमंडलीक प्रभो राज्ञी चारु रमावती वितनुते संगीत मानंददं ॥ १ ॥

कुंभब्रह्म सुमीरित क्रममगा दुच्छिन्नता यत्स्थितौ तत्प्रोद्वृत्य गिरीश भक्ति परमा रम्या रमा भारती। संगीतं भरतादि गोत्र विधिना ब्रह्मैक तानोपमा संदानंद विधायकं विलसति प्रोल्हासयंति परम् ॥ २ ॥ नादा नंद मयी वरोन्नतकरा लीलो ल्लसद्वल्लकी रागा रक्त गिरीश्वर स्वरकला शर्मोर्मिरम्यो ज्वला। लीलां दोलित राजहंस गमना सद्भोगि भर्त्तुः सुता पद्मा मोदित मानसा विजयते वागीश्वरी श्रीरमा ॥ ३ ॥ संजाता जलधे विवेक विधुरा धीरे स्ववक्षादरा चापल्याऽभिरता प्रमोद मयते या पंकजानस्थितेः। विद्वत् कुंभ नृपोद्भवा गुण गणौ पूर्णा प्रवीणा नदी धैर्य प्रीति मतीति ना विजयते श्रेयो त्विन श्रीरमा ॥ ४ ॥ राज द्रैवत भूधरां तग्रतं श्रीकांत माराधयत् कांतानंदित मानसा यदनिशं राधेव चावन्ततः। मेरौ कुंभकृते महीप तनय श्रीमंडलीक प्रिया श्रीदामोदर मंदिरं व्यरचयत् कैलास शैलोज्वलं ॥ ५ ॥ श्रीरस्तु सूत्रधार रामा। अथ श्रीमहाराज श्रीमंडलीक प्रबंधः। इंदोर निंदित कुलं बहुबाहुजात वंशेषु यस्य वसते रतुलं बभूव। श्रीमंडलेंद्र गिरि रैवतका धिवासो दामोदरो भवतु वः सुचिरं विभूत्यै ॥ १ ॥ श्रीमंडलीक दर्शन परितुष्ट मना महेश्वरः सुकविः। श्रीमेदपाट वसति गुण निधि मेनं यथा मति स्तौति ॥ २ ॥ आश्लिष्टः सुर विटपी संप्रति चिंतामणि र्मया कलितः। लब्धः सुवर्ण शिखरी मिलिते त्वयि मंडलाधीश ॥ ३ ॥ सुर विटपि विटप विशाल भुजदलकलित विपुल महाफलं। कवि चित्त चिंतामणि महागुण जाल जन्म महीतलं। अनवरत सुर सरि-दमलतमजल लुलित सुर शिखरि प्रभं कलयामि मंडल राज महमिह तोष मेमि हिम प्रभं ॥ ४ ॥ परि कलितः पुरुहूतो धन नाथो नयन

गोचरो रचितः । साक्षात् कृतो रतीश स्त्वयि मिलिते मंडला-धीश ॥ ५ ॥ पुरुहूत मिव गुरु मंत्र यंत्रित मतुल मंगल मंडितं । धननाथ मिव धन दानं तोषित चंद्र मौलि मखंडितं । रति रमण मिव वर युवति कृतनुति महत विषम शरै युतं परिचिंत्य मंडल राज मह मिह मोद मगम मनुव्रतं ॥ ६ ॥ अंकुरिता शर्मलता कोरकिता चित्त चंपक व्रततिः । उल्लसिता तनु नलिनी मिलिते त्वयि मंडलाधीश ॥ ७ ॥ कलधौत वितरण तरल करजल जनित शर्म सदंकुरं जन चित्त चंपक कुसुम संभव मधुर तर मधु बंधुरं । गणनैक मणि विस्फुरण पुलकित विपुल तनु नलिनी दलं अनुभूय मंडल राज मिद मपि भवति हृदय मनाकुलं ॥ ८ ॥ कर्पूरं नयन युगे वपुषि सुधा रश्मि परिषेकः । हृदये परमानंद स्त्वयि मिलिते मंडलाधीश ॥ ९ ॥ घन सार सारसभाभि मार्दवलोचनं हिमनिर्भरै सकलं प्लुतं वपु रद्य हिमहिम धाम धामनि निर्भरे । मम मनसि परमानंद संपदुदारतर मभि बर्द्धते नरनाथ मवनि विलोकिते सति मंडलेश शुचिस्मिते ॥ १० ॥ सुर तरु रद्य नरेश गेहद्र्शं मम कलयति । सुरगिरि रिति यदुराज राजस्थान संकलयति । सुरपति रयमिति मति रुदेनि । संप्रति नर नायक पतिरिति नयना नुरक्ति रुदयति । दृढ़सायक अनुपमसम महिम महीप सुतमंडल सकल कला । अष्ट भूति भवमवधि नवनिधि छंनिधि रधिकमला ॥ *

गोविंद देवजी के मन्दिर की प्रशस्ति ।

"सम्वत ३४ श्री शकबन्ध अकबरशाह राज्ये श्रीकुर्मकुल श्रीपृथीराजाधि । राजवंश महाराज श्रीभगवन्तदास सुत श्रीमहा-

* अत्र अंतिमा पंक्तिः पठना शक्यत्वा त्परित्यक्ता ।

राजाधिराज श्रीमानसिंहदेव श्रीवृन्दावन जोग पीठस्थानकरा श्रीगोबिन्ददेव को। ''

इस के प्रारम्भ होने का यह संवत् जानना चाहिए।

'' श्रीवृन्दाविपिने शिवादिदिविपद्वृन्दावलीवन्दिते ...... श्री गोविन्द......ष्णक्सदाराजते ॥ १ ॥ श्रीमानकर्वरोयदा भुवमयात्स-र्वां तदैवाधुनासर्वः सौख्यम...गणैः स्वंधर्मसुच्चैर्भजन् । श्रीगोविन्द पदंतदेतदयिते वासायसद्वैष्णवालम्भंल...तस्मै सदैवा० पः ॥ २ ॥ तस्मिंस्तस्यसदान्वितत्तितिपतिः श्रीमानसिंहाभिधः पृथ्वीराज बिराज...धे श्चन्द्रमाः। भूभृदभारहमल्लजात भगवद्दासात्मजोमन्दिरं कुर्वन्निन्दिरयाबलादचलया ॥ ३ ॥ ...स्तथाविधमहाराजाधिराजा-प्यसौ येनैवारि दिगतेन विजयीध्वस्त भ्रमः क्रीडति सश्रीमान० सिंह नवायुद्धेयस्य नियत्यं दिव्य पितृयाः कीर्त्तिध्रज-त्वंगताः ॥ ४ ॥ यः क० धिपजांतिरेष विजयोश्री मानसिंहोनृपः ......सदा विजत......दास सुधीः । श्रीगोविन्दपदारविन्द ....स्तनमन्दिरं संमदान् कुर्वन्नुदयममञ्त्तूर्ण....पू.... ॥ ५ ॥ .... श्रीमानसिंहाद्भुतम ॥ ६ ॥ ...इन्द्रप्रस्थनिवासि.. .पुगुरुर्गोविन्ददा-साभिधः । ....भवदाविष्य दखिल श्रीवैष्णवानांसुखं श्रीकर्ता हरिणासदानि जदयाया० याविनि... ॥ ७ ॥ श्रीग्रसेनः कृती, तौद्वौश्रीयुतमानसिंहनृपति प्रस्थायितौनन्द ताम् । किम्वाग्नद्धवनीय ....प्रतिपदंसौख्यंम हद्विन्दतु ॥ ८ ॥ मुनिवेदर्तुचन्द्राहू १६४७ सम्व न्मन्दिर सम्भवे.... ॥ ९ ॥ कलितुलातत० तौश्री युतवृन्दावनेशितुः सेवाम् । श्रीमद्रूयसनातननामानौतौभजेतज ॥ १० ॥ ''

इन पद्यों का अविकल न होने से अर्थ लिखना हम उचित नहीं समझते। केवल एक दो बात स्मरण रखने के योग्य हैं॥

१ म, अकबर का संस्कृत नाम " अर्कबर " है प्राय: भाषा-रसिक और संस्कृत-रसिक लोगों के उपयोगी है। २ य मानसिंह की वंश-परम्परा यह है, राजा भारहमल (वा भारामल्ल) राजा भागवन-दास वा भगवन्तदास राजा मानसिंह। ३ य श्रीरूपगोस्वामी और श्री सनातन गोस्वामी की प्रशंसा जैसी आज काल है वैसी तीन सौ बरस पहिले भी थी लोग आधुनिक कीर्त्ति कल्पना न समझें।

इस लिपि के निकट ही जगमोहन के द्वार के ठीक सामने भूमि पर एक पत्थर की चट्टान में यह सफल सम्बन्धी लिपि है "राणा श्री अमर सिंह जी सुतश्री बागजीसुतश्री सबलसिंहजी की जात्रा सफल सम्वत् सतरे से अगरोतरामंगसेर सुद ७ सो मे लखन्त प्रोहेत जी जवारादास पधारो सम्वत् १७७८।

५ छोटे २ शिखर के दक्षिण, उत्तर में दो मन्दिर, दक्षिण मन्दिर की शिखर कुछ फूटी है और मन्दिर का द्वार दो किष्कु ऊंचा है। सीढ़ी के योग से चढ़ते हैं। भीतर एक तल घर में वृन्दादेवी (वा पातालदेवी) विराजती हैं। घुमाव की बारह पक्की सीढ़ी उतर कर नीचे दर्शन करना होता है। देवी की मूर्त्ति श्वेतबर (संगमरमर) पाषाण की अष्टभुजी एवं सिंहवाहिनी ११ इञ्च ऊंची और ६ इञ्च चौड़ी है। पास ही एक श्वेतबर की छोटीसी चौकी पर श्रीराधिका जी के चरणचिन्ह हैं। चौकी के तट पर यह पद्य लिखा है।

तप्तकाञ्चनगौराङ्गि राधेवृन्दावनेश्वरि।
वृषभानुसुतेदेवि प्रणमामिहरिप्रिये॥

एक मोरी जिस का निकास बाहर की ओर उत्तर दिशा में है उस के ऊपर यह प्रशस्ति है।

"सम्वत ३४ श्रीशकबन्ध अकबर महाराज श्री कर्म कुल श्री पृथीराजधिराज वंश श्री महाराज श्रीभगवन्तदास सुत श्रीमहाराजाधिराज श्रीमानसिंहदेव श्रीवृन्दावन जोग पीठ स्थान मन्दिर कराजो श्रीगोविन्ददेव को काम उपरि श्रीकल्याणदास आज्ञा कारि माणिकचन्द चोपड़० शिल्पकारि गोविन्ददास दोलवारेकारिगरद: गोरषदासवीभवल ॥"

मन्दिर के चारों ओर सङ्कीर्ण कच्चे चौक में कोई उत्तम स्थान नहीं है, केवल पूर्व द्वार की बाईं ओर कुछ थोड़ी फुलवारी है और पश्चिम द्वार की ओर अति निकट एक छत्री है। यह छत्री प्रथम नाट्य मन्दिर के सामने थी, परन्तु अवकी जीर्णोद्धार में परिष्कार एवं संस्कार कर के पश्चिम प्रान्त में एक चौतरे पर स्थापित कर दी गई। इस में चरणचिन्ह श्रृङ्गवर के बने हैं और एक स्तम्भ पर लिपि है। ज्ञात होता है कि इस में किसी के अस्थि समूह सञ्चित थे, क्योंकि चरणचिन्ह का व्यवहार प्रायः ऐसे ही स्थान में होता है। दूसरे राजाओं में ऐसी रीति भी प्रचलित है पुण्य-स्थान में अस्थि सञ्चय किया जाय।

"सम्वत् १६९३ वर्षे कातिक वदि ५ शुभदिने हजरत श्री२ शाहजहां राज्ये राणा श्रीअमरसिंह जी को बेटो राजाश्रीभीम जी राणी श्रीरम्भावती चौखण्डी सौराई छेजी।"

बौद्धमत का श्लोक जो सारनाथ की धमेख में मिला था।

७ ये धर्म्महेतु प्रभवाहेतुतेषां तथा गता ह्यवदत्
तेषांचयो निरोध एवंवादी महाश्रमणः।

विहार के जिले में बहुतेरो प्राचीन बौध मूरतों पर यह श्लोक खुदा हुआ है, बरन् राजग्रह के प्रसिद्ध जैन मन्दिर में भी जो बस्ती में है एक मूर्त्ति पर यही श्लोक खुदा है, और इसी कारण हम उस को प्राचीन बौधमती अनुमान करते हैं।

जेनरल कनिङ्हाम साहिब ने जो दो हज़ार बरस के लगभग पुराने राजा वासुदेव को अथवा राजा वासुदेव के सम्वत् नब्बे में बनवाई महावीर स्वामी की मूर्त्ति मथुरा में पायी है उस पर ६० का अंक लिखा है। जेनरल साहिब ने जो उस मूर्ति पर से हर्फों का छापा लिया है उस के एक (पहले) टुकड़े में (सिद्ध ओं नमो अरहन महावीरस्य......राजा वासुदेवस्य संवत्सरे ६०) लिखी है। अफसोस है कि हर्फों के घिस जाने के सबब इस से अधिक उस की इबारत पढ़ी ही नहीं जा सकती है।

जिला गया के प्रसिद्ध स्थान देवमंगा में एक सूर्य्य का मन्दिर है उस पर यह श्लोक खुदा है। इस लेख से अत्यन्त आश्चर्य होता है कि इतने दिनों का लेख वर्त्तमान हो।

शून्यव्योमनभोरसेंदुकरभिर्हीने द्वितीयेयुगे।
मायेवाणतिथौ शिते गुरुदिने, देवो दिनेशालुयं॥
प्रारंभेद्दृदांचयेरचयितुं सौम्यादिलायांभवो।
यस्या सोत्सनराधिपः प्रभुतया लोकोविशोकोभुवि॥

अर्थ—दूसरे युग अर्थात् त्रेता युग के १२१६००० वर्ष बीतने पर

उत्पन्न हुआ था उस ने पाषाणादिकों से दिनेश अर्थात् सूर्य्य का मन्दिर बनाना प्रारम्भ किया था। जब यह राज्य करता था तब इस की प्रभुता से सब प्रजा भूमि में सुखी थी।

—:※:—

प्राचीन काल का सम्वत् निर्णय।

माधवाचार्य्य लिखित किसी की टीका से राजावली ग्रन्थ से उद्धृत।

यह राजावली ग्रन्थ किसी ज्योतिषी ने सं० १८१६ में बनाया है। इस में संवत्सर प्रतिपदा के विधान और कालादिक का अनेक निर्णय किया है और फिर कलियुग के राजाओं का और अन्य युग के राजाओं का नाम 'राजाधिराज माधवाचार्य्य टीकाया मुक्त' कह के उस ने माधवाचार्य्य के किसी ग्रन्थ की टीका से उद्धृत किया है। यह सम्वत् और नामादिक प्राचीन इतिहास के उपयोग जान कर यहां प्रकाश किये जाते हैं।

सत्ययुग में—कृष्णावतार में अमरेश्वरलिङ्ग। पुष्करतीर्थ बौद्धपत्तनपीठ। राजकृतसंज्ञ कृतपुत्र कृतदेव त्यागी मेन मुचकुन्द भैरव नन्द अन्धक हिरण्यकशिपु प्रह्लादविरोचन बलि, बाणासुर गमासुर कपिलभद्र निर्घोषा मान्धाता वेणु। कश्यप सूर्य्य मनु महामनु तक्षक अनुरञ्जन विश्वावसु विमला प्रद्युम्न धनञ्जय महीदास यौवनाश्व मान्धाता मुचकुन्द पुरुरवा बलि सुकान्ति वीर।

त्रेता में—नैमिषारण्य तीर्थ, सोमेश्वर लिङ्ग, जालन्धर पीठ, राजा कद्रू, पुरूरवा, प्रोषध, वेणय, नैषध, त्रिशृङ्ग, मरीचि, इक्षु, मनु, दिलीपि, रघु, त्रिशङ्कु, हरिश्चन्द्र, रोहिताश्व, धुन्धुमार, जन्हु, सगर, भगीरथ, वेणु, वत्स, भूपाल, अज, अतिथि, नल, नील, नाभ, पुण्डरीक, क्षेमक, शतधन्वा, शतानीक, परिजातक, दलनाभ, पुष्पसेन, अजपाल, दशरथ, श्रीराम, लवकुश, अङ्गस्वामी, अग्निवर्ण।

द्वापर में—कुरुक्षेत्र तीर्थ। केदारेश्वलिङ्ग। अवन्ती पत्तन। राजा—भर्तृहरि, पृथु, अनुविरक्त, अव्यक्त, फेन, इन्द्र, ब्रह्मा, अत्रि, सोम, बुध, धनुर्जय, शतनु, गव्य, गवाक्ष, असमञ्जस, निर्घोष, प्रजापति, अङ्कुरउपवीर, अनुसन्धि, ज्येष्ठभरत, कनिष्ठभरत, धर्म्मध्वज, सान्तनु, पाण्डु, नरवाहन, क्षेमर्क, ययाति, क्षान्त, चित्र, पार्थ, अर्जुन, अभिमन्यु, परक्षित, जन्मेजय।

कलियुग में—गङ्गा तीर्थ। कालीदेवता प्रतिष्ठान पुरनगर। कल्किअवतार इस ने अलग तीन चाल पर यहां लिखा है और उन के परस्पर जन्मदिन पिता माता के नामादिक सब अलग २ हैं। कलियुग के आरम्भ से ३०४४ वर्ष के भीतर युधिष्ठिर, परीक्षित, जन्मेजय, वत्सराज, क्षेमसिंह, सोमसिंह, राणकराय, अंबुसेन, रामभद्र, भरतसिंह, पठाणसिंह, विक्रमसिंह, नरसिंह, आदित्यसिंह, ब्रह्मसिंह, वसुधासिंह, हर्षसेन, भर्तृहरि। ३०४४ में विक्रम का राज्य ३१७१ में शालिवाहन का राज्य, फिर सूर्य्यसेन, शक्तिसिंह, खड्गसेनसुखसिंह, मम्मलसेन, मुञ्ज भरत, श्रीपाल जयानन्द, रामचन्द्र, छत्रचन्द्र, अनूप सिंह, तुम्बरपाल, ननब्रह्माण, रणवादी, कीर्त्तिपाल, अनङ्गपाल, विशालाक्ष, सोमदेव, बलदेव,

नामदेव, कीर्त्तिदेव, पृथ्वीपति इतने प्रसिद्ध राजा हुए। फिर म्लेच्छों का राज्य आरम्भ हुआ। सिकन्दरशाह ने विश्वेश्वर का अपराध किया। इस के पीछे मुसलमानों का वर्णन है।

फिर कालनिर्णय यों किया है—व्यासादिक का काल ५१५४ वर्ष कलियुग लगने के पूर्व्व। श्री कृष्णावतार द्वापर की सन्ध्या प्रारम्भ कलियुग के पूर्व्व क्योंकि कलि का काल होते भी उस ने प्रावल्य नहीं पाया था। क्षेमक तक युधिष्ठिर का वंश सुमित्र तक इक्ष्वाकु का वंश और रिपुञ्जय तक जरासंध का वंश एक सहस्र वर्ष कलियुग बीते समाप्त हो चुका था। फिर १३८ वर्ष प्रद्योतनों का राज्य गत कलि ११३८ वर्ष। शिशुनाग वंश का राज्य ३६२ वर्ष ग० क० १५०० वर्ष। फिर शुद्ध क्षत्रियों का राज्य छूटकर नन्दादिकों का राज्य हुआ। नन्दों का राज्य १३७ वर्ष ग० क० १६३७ वर्ष। फिर कण्ववंश के राजा उन का राज्य ५५७ वर्ष ग० क० २१९४ वर्ष। फिर आन्ध्रराजा का राज्य ४५६ वर्ष ग० क० २६५० वर्ष। फिर सात आभीर और दस गर्दभिल्ल राजों का राज्य ३९४ वर्ष ग० क० ३०४४ वर्ष। फिर विक्रमों का राज्य १३५ वर्ष ग० क० ३१२९ वर्ष। अन्त के विक्रम को शालिवाहन ने मारा फिर शालिवाहन वंश ने १५५ वर्ष राज्य किया। शेष पुत्र के वंशने १३९ शक्तिकुमार के वंश ने ११४ शूद्रक ने ९५ और इन्दुकिरीटी ने ८८। सब ४३७ वर्ष हुए। फिर ३३ वर्ष तोमर, ३४ वर्ष चिन्तामणि, ३० वर्ष राम, और ३६ वर्ष हेमाद्रि राजा ने राज्य किया। सब १३३ वर्ष हुए। तब शक ५७० था उसी के पीछे तुरुष्कलोगों का प्रवेश होने लगा। फिर भारतवंश के खण्डराज हुए। फिर चालेक्य वंश ने

४४४ वर्ष, पल्लोमदत्त ५५ वर्ष, गौड़राज २०, भिल्लराज ५० वर्ष राज्
तब शाके १००६ वर्ष कलि ४१८५, फिर यादवराजे २२७ वर्
तब शक १२३३ वर्ष। इस वंश के देवगिरि के अन्तिम राजा रामदेव
को शक १२१७ में अलाउद्दीन ने जीत कर राज्य फेर दिया, राम
देव ने ५६ वर्ष और राज्य किया फेर तुरकों का राज्य ३३४ वर्
हुआ।

चरितावली

अर्थात्

अनेक प्रसिद्ध पुरुषों का जीवनचरित्र।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

क्षत्रियपत्रिकासम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह सङ्कलित

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.

'खड्गविलास' प्रेस, बांकीपुर, पटना.
बाबू रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

ह० सं० ३२—१९१७.

दूसरी बार।

चरितावली ।

विक्रम चरित्र

इस के पूर्व कि हम विक्रमादित्य का कुछ चरित्र लिखें हम को श्रीमद् बुहलर साहब का धन्यवाद करना चाहिए, जिन्हों ने विक्रमांकचरित नाम ग्रन्थ खोज कर प्रकाश किया। यह श्रीहर्ष-चरित्र के चाल का एक दूसरा ग्रन्थ है, जो अब प्रकाश हुआ। यह ग्रन्थ बिल्हण कवि का है और अनेक छन्दों में अठारह सर्ग में लिखा हुआ है। इस के सत्रह सर्गों में विक्रमादित्य का चरित्र और अठारहवें सर्ग में कवि ने अपना वर्णन किया है। प्रसिद्ध है कि चौरपंचासिका इसी बिल्हण की बनाई हुई है। कहते हैं कि गुजरात के राजा वैरीसिंह की बेटी चन्द्रलेखा वा शशिकला को बिल्हण पढ़ाता था और उस ने उससे गन्धर्व विवाह भी किया था। जब राजा ने इस बात से क्रुद्ध होकर बिल्हण को फांसी की आज्ञा दिया, रास्ते में इस ने चौरपंचाशिका बनाई, जिस्से प्रसन्न होकर राजा ने फांसी के बदले अपनी कन्या की बांह उसके गले में डाली। इन कथाओं पर हमारा कुछ ऐसा विश्वास नहीं, क्योंकि इस ग्रन्थ में बिल्हण ने इन बातों को कहीं चर्चा नहीं की है। बिल्हण अपना हाल यों लिखता है:— कश्मीर के देश में जिहलम और सिन्ध के मुहाने पर प्रवरपुर नाम का बड़ा सुन्दर नगर था। अनन्त देव वहां का बड़ा प्रतापी और धार्मिक राजा था। जिस की रानी

का नाम सुभटा था। उस रानी का भाई क्षितिपति भोज के समान कवियों का गुणग्राहक और बड़ा विष्णुभक्त था। अनन्त का बेटा कलश हुआ और कलश के पुत्र हर्षदेव और बिजयमल्ल थे। प्रवरपुर के पास ही विजयवन में खोनमुख नाम का एक गांव था, जहां कुशिक गोत्र के ब्राह्मण बसते थे, जिन को गोपादित्य मध्य देश से बड़े आदर से लाया था। उन ब्राह्मणों में मुक्तिकलश सब से मुख्य था और उस को राज्य कलश और राज्य कलश को ज्येष्ठ कलश पुत्र हुआ। ज्येष्ठ कलश को इष्टराम, विल्हण, आनन्द तीन पुत्र थे विल्हण व्याकरण और काव्य अच्छी तरह पढ़ा था और श्री वृन्दाबन में बहुत दिन तक उस ने काल बिताया और फिर कन्नौज प्रयाग, बनारस और अयोध्या में फिरता रहा और फिर कुछ दिन दाहाल के राज्य में, कुछ दिन धार में और कुछ दिन गुजरात में रहकर अपनी कविता से लोगों को प्रसन्न करता रहा। जब यह दक्षिण में चोल देश में गया, तो वहां के राजा से इसको विद्यापति की पदवी मिली। उस की माता का नाम नागादेवी था। कर्ण के दरबार में गंगाधर कवि के मुकाबिले में राम जी के चरित्र में काव्य बनाया। यह अपने ग्रन्थ में लिखता है कि किसी कारण से वह राजा भोज से न मिल सका। विक्रमांक चरित्र उस ने अपने बुढ़ापे में बनाया। विदित रहे कि विल्हण ईसवी ग्यारवें शतक के मध्य और अन्त भाग में हुआ है, क्योंकि विक्रमादित्य ने (जिस के दरबार का यह पंडित था) सन् १०७६ से ११२७ तक राज्य किया था। विल्हण की कविता में कई बातें विशेष जानने के योग्य हैं, जैसा उस ने कादम्बरी का अपने ग्रन्थ में वर्णन किया है, जिस्से स्पष्ट

जाना जाता है कि वाणकवि विल्हण के पहिले हुआ है और उस के समय में भी वाण की कविता का माधुर्य्य भारतवर्ष में फैला हुआ था। फारसी (शिकस्त) के चाल के कोई अक्षर विल्हण के समय में कश्मीर में लिखे जाते थे; क्योंकि उस ने कश्मीर के वर्णन में लिखा है कि वहां कायस्थ लोग अपने लिखावट की जाल से किसी को ठग नहीं सकते थे। विल्हण गुजरातियों से बहुत नाराज था, क्योंकि वह लिखता है कि गुजराती राक्षसी बोली बोलते हैं और लांग नहीं बांधते और मैले होते हैं। विल्हण के बाप ने महाभाष्य पर कोई तिलक किया था, परन्तु अब वह नहीं मिलता। विल्हण की कविता वैदर्भी और ओज और प्रसाद गुण से पूर्ण है। कविता से जहां कवि के और गुण प्रकट होते हैं वहां साथ ही उस का अभिमान, उद्दण्डता और परिहास का स्वभाव भी पाया जाता है। *

इसी कवि ने विक्रमादित्य का चरित्र अठारह सर्गों में कहा है। इस समय हम इस बात का झगड़ा नहीं ले बैठते कि विक्रम कितने भए और किस २ समय में भए। यहां पर हम केवल उस विक्रम का चरित्र वर्णन करते हैं जो दक्षिण देश में राज्य करता

* विल्हण का यह स्फुट श्लोक मिला है जिस से उस का अभिमान स्पष्ट प्रगट होता है।

वासः शुभ्रमृतुर्वसन्तसमयः पुष्पंशरन्मल्लिका।
धानुष्कः कुसुमायुधः परिमलः कस्तूरिकाऽस्त्रंवतुः॥
वाणीतर्वरसोज्वला प्रियतमा श्यामावयो यौवनं।
देवोमाधवएवपंचमलैया गीतिर्कविर्विल्हणः॥

था, कल्याण जिस की राजधानी थी और विक्रमादित्य जिस का नाम था। हमारे पाठक लोगों को यह जान कर बड़ा आश्चर्य्य होगा कि यह वह विक्रम नहीं है जिस का संवत् चलता है। और न इस विक्रमादित्य के हुए १९४१ वर्ष हुए।

इस विक्रमादित्य का जन्म चालुक्य * नामक क्षत्रीवंश में हुआ था। विल्हण लिखता है कि ब्रह्मा एक बेर अंजुली में जल लेकर अर्घ देना चाहते थे कि इन्द्र अपनी विपत्ति कहने लगा, जिस से ब्रह्मा ने अपनी अंजुली का जल गिरा दिया और उसी से चालुक्य नामक क्षत्रियों का कुल उत्पन्न हुआ। हारीत और मानव्य इस वंश के पूर्व पुरुष थे और पहले से ये लोग अयोध्या के राजाओं के अधिकार में अयोध्याजी में बसते थे। श्री रामचन्द्र के समय में भी ये लोग उन की सेवा में उपस्थित थे। फिर इन लोगों ने दक्षिण में अधिकार आरम्भ किया और धीरे २ वहां के राजा हो गए। काल पाकर श्री तैलप नामक इस वंश में एक राजा हुआ। इस ने सन् ९७३ से ९९७ तक राज्य किया। इस ने हिन्दुस्तान के बहुत से राजाओं को मार कर अपना अधिकार बढ़ाया। श्रीयुत बूलर साहब लिखते हैं मुंज को इसी ने मारा था और मालवा पर इस ने बड़े धूमधाम से चढ़ाव किया था। उस के पीछे सत्याश्रय राजा हुआ, जिस ने ग्यारह वर्ष अर्थात् सन् १००८ तक राज्य किया। इसी का नामान्तर सत्यश्री था। इस के पीछे जै सिंह राजा हुआ, जिस ने सन् १०४० तक राज्य किया। इस के पीछे आहव मल्लदेव राजा हुआ इसी का नामान्तर त्रिभुवनमल्ल और त्रैलोक्य-

* " बून्दी राजवंश वर्णन " में देखिये।

मल्ल था। इस ने पवांरों * के देश मालव की राजधानी धारानगरी पर चढ़ाई किया। करनाटक, कुंतल और डाहल देश में इस का निज राज था, पर चोल केरल और द्राविड़ देश इस ने जीत के अपने राज्य में मिला लिया था। विल्हण लिखता है कि अद्भुत कथा और दश रूप काव्य में इस राजा का बहुत सा वर्णन है। इस को पुत्र नहीं होता था इस से इस ने महादेव जी को घर ही में बड़ी आराधना की और काल पाकर सोमदेव विक्रमादित्य और जय सिंह तीन पुत्र हुए। विक्रम के शरीर में छोटेपन ही से शूरता इत्यादिक उत्तम गुण झलकते थे। जब यह जवान हुआ, तो पहिले इस ने बंगाले पर चढ़ाव किया और कामरूप जीता। समुद्रपार हो कर सिंहल पर† इस ने चढ़ाव किया और द्राविड़ और चोलों की

---

* "बून्दी राजवंश वर्णन" और बाबू रामचरित्र सिंह संग्रहीत "नृपवंशावली" और "राजस्थान" में देखिये।

† सिंहल के इतिहास में बङ्गाले का पहला हाल इतना लिखा है कि सिंहबाहु नाम एक बङ्गाले का राजा था। उस का बड़ा बेटा विजयसिंह प्रजाओं को पीड़ा देने के कारण जब देश से निकाला गया, तो सात सौ आदमियों के साथ जहाज में चढ़कर निकला। अनेक प्रकार के कष्ट सहने के उपरान्त सिंहल में जा पहुंचा और वहां के लोगों को जीत कर उन का राजा बन गया। विजयसिंह के मरने के बाद उस का भतीजा पांडुवास जो बङ्गाल में रहता था सिंहलद्वीप के सिंहासन पर बैठा। यह सिंहलद्वीप के राजाओं में पहला राजा था। सिंहवंश के राजा होने के कारण इस टापू का नाम सिंहलद्वीप हुआ। जिस साल बुद्धदेवका परलोक हुआ था उसी साल विजयसिंह सिंहल में पहुंचा। यह साफ़ जान पड़ता है कि ५०० बरस इस्वी सन् के पहले बंगाले में आर्यवंश के लोगों का अधिकार बहुत बढ़ा था, क्योंकि उन लोगों ने भी समुद्र की राह से जहाज़ पर चढ़ कर दूर २ के देशों को जीता था।

राजधानी कांची तीन बेर लूटा। जब वह सिंहल जीतकर लौटा, तो गोदावरी के पास सुना कि तुंगभद्रा के किनारे पिता ने देह त्याग किया। यह उसी समय घर गया और इस का बड़ा भाई सोमदेव राजा हुआ। विल्हण लिखता है कि सोमदेव बड़ा मदोन्मत्त हो गया था और इन्दुमित्र नामक एक बुरा राजा उस को सहायता को मिल गया, इस से विक्रम ने इस का संग छोड़ा। इसी को चालुक्य कहते हैं। दिया और कोंकण का राजा जयकेश इस से मिलकर दक्षिण में बहुत से देश जीते और अपना अपना अलग राज स्थापन किया। उस समय इस का छोटा भाई जयसिंह भी इस के साथ था। द्रविड़ देश के राजा ने अपनी कन्या देकर इससे मैत्री की और जब वह राजा मर गया तो विक्रम ने उस के बेटे अर्थात् अपने साले को बड़े धूमधाम से गद्दी पर बैठाया। और फिर गांगकुंडपुर होता हुआ तुंगभद्रा के किनारे आकर रहा। जब वेंगी के राजा राजिक ने इस के साले को जीत लिया था तब यह बड़ी धूमधाम से उस से लड़ने को गया था। कहते हैं कि राजिक इस के बड़े भाई सोमदेव का मित्र था, इस से राजिक की ओर से सोमदेव भी लड़ने को आया था। यह लड़ाई बड़ी तैयारी से हुई और सोमदेव अन्त में पकड़ा गया। राजिक भागा और विक्रमादित्य अपने बाप की गद्दी पर बैठा। काहाट के राजा को कन्या ने स्वयम्बर किया था, जिस में विक्रमादित्य भी गया था। विल्हण ने यहां पर राजाओं के स्वाभाविक अभिमान और काम की चेष्टा के वर्णन में बहुत ही अच्छी स्वभावोक्ति दिखाई है और 'पारसीक तैल' के नाम से आतशबाज़ी के भांति की किसी वस्तु का वर्णन किया

है। स्वयम्बर में विल्हण ने नीचे लिखे हुए राजाओं का वर्णन किया है, जिस से प्रगट होता है कि इतने राज उस समय अलग २ वर्तमान और अच्छी दशा में थे, यथा अयोध्या, चन्देरी, कान्यकुब्ज। (अर्जुन के कुल का राजा) चम्बल के तट का देश, कालिंजर, गोपाचल, मालव, गुजरात, मन्दराचल के समीप का पांड्यदेश और चोल। कन्या ने जयमाल विक्रमादित्य के गले में डाली और बड़ी धूमधाम से इस का विवाह हुआ।

इस राजा के बहुत से ऐश्वर्य्य और विहार वर्णन के पीछे विल्हण लिखता है कि एक दिन विक्रम ने दूत के मुख से सुना कि उस का छोटा भाई बागी हो गया है और वेंगी जीतने के पीछे विक्रम ने जो उसे देश और सेना दी थी उस पर सन्तोष न करके बहुत से सिपाही नौकर रख के सारे दक्षिण में लूट मार करता फिरता है और द्रविड़ के राजा [शायद विक्रम का साला] ने उसे बहुत ही बहकाया है और छोटे २ बहुत से उपद्रवी राजा उससे मिल गए हैं। यह सुन कर बहुत पछताया और सेना लेकर बाहर निकला। जब भाई की सेना के पास इस का डेरा पहुंचा, तो इस ने दूतों के और पत्रों के द्वारा उस को बहुत समझाया, पर वह न माना और अन्त में विक्रम से हारकर कहीं दूर जा रहा। विक्रम फिर सुख से राज्य करने लगा। एक बेर कांची पर फिर चढ़ा था, क्योंकि वहां का राजा इससे फिर गया था। कवि ने विक्रम के स्वाभाविक बहुत से गुण लिखे हैं, जिन में उदारता का बहुत ही सविशेष वर्णन है। इस ने ५१ वर्ष राज्य किया था।

ऊपर के लिखे अनुसार लोगों को विक्रम का जीवनवृत्त विदित होगा। कवि ने उस में जो जो सद्गुण लिखे हैं वह उस में रहे हों, पर अपने दो भाइयों को उस ने जीता और बड़े भाई को कैद करके आप गद्दी पर बैठा, इस से उस के चरित्र में हम को थोड़ा सन्देह होता है। क्योंकि जब उस के बड़े भाई के जीतने का कवि वर्णन करैगा, तो उस दोष के छिपाने के वास्ते उस के भाई को बुरा लिखै इस में क्या सन्देह है। जो कुछ हो, विक्रम एक बड़ा राजा और गुणग्राही मनुष्य हो गया है और यह पंडितों के आदर ही का फल है कि उस का संपूर्ण वर्णन आज हम पाठकों को सुनाते हैं।

—:०:—

कालिदास का जीवनचरित्र।

यह सब वार्ता केवल बंगदेशियों की है। पश्चिम प्रदेशीय पंडित लोग भारतवर्षीय कवियों में कालिदास को सर्वोच्चासन देते हैं। बम्बई के प्रसिद्ध पंडित भाऊदाजी ने केवल कालिदास की कविता ही नहीं पढ़ी बरन बहुत परिश्रम करके प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ और ताम्रपत्रों से उन का जीवनवृत्तान्त संग्रह की। हम ने भी उन के ग्रन्थ से कई एक बातें ग्रहण किया है।

कालिदास विख्यात महाराजा विक्रम के नवरत्नों में थे। इस के * व्यतिरिक्त उन के जीवन को और कोई प्रमाणिक बात लोग

---

* राजा लक्ष्मण सिंह रघुवंश के उल्था में यों लिखते हैं:—“ कालिदास नाम के कई कवि हुए हैं। उन में दो मुख्य गिने जाते हैं—एक वह जो राजा वीर विक्रमाजीत

नहीं जानते। बंगदेश के कई अभिमानी पंडितों ने कालिदास को लंपट ठहरा कर उन के नाम से हास्यरस की कविताओं का प्रचार किया। पाठशाला के युवा ब्राह्मण थोड़ा सा मुग्धबोध व्याकरण पढ़ के इन श्लोकों का अभ्यास करके धनिक लोगों का मनोरंजन करते हैं और इसी प्रकार धनी लोगों से प्रति वर्ष कुछ पाते हैं। यथार्थ में तो यह सब कविता कालिदास की नहीं है, परन्तु नवीन कवियों की बनाई हुई हैं। "प्रफुल्लित ज्ञान नेत्र" नामक पद्यमय पुस्तक बंगभाषा में मुद्रित हुई है। इस ग्रन्थ में लोगों ने मिथ्या कल्पना करके कालिदास में ऊपर लिखा हुआ दोष ठहराया है। इसी प्रकार से इन दिनों अंगरेजी भूमिका सहित एक रघुवंश की सटीक पोथी मुद्रित हुई है। इस में भी लोगों ने मिथ्या कल्पना किया है। कालिदास ने कोई भी ग्रन्थ में अपना वृत्तान्त कुछ भी नहीं लिखा है, केवल इतनाही प्रगट किया है।

धन्वन्तरिःक्षपणकोमरसिंहशंकुःवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातोवराहमिहिरोनृपतेःसभायांरत्नानिवैवररुचिर्नवविक्रमस्य॥

केवल इतनाही परिचय नवरत्नों का लिखा है। अभिज्ञान शंकुतल ग्रन्थकर्ता इतनेही परिचय से सन्तुष्ट न रह के और २ संस्कृत ग्रन्थों से इस विषय का अनुसंधान करना उचित है। प्रायः

की सभा के नौरत्नों में था, दूसरा जो राजा भोज के समय में हुआ। इन में भी पण्डित लोग पहले को दूसरे से श्रेष्ठ मानते हैं और उसी के रचे हुए रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार इत्यादि काव्य और शाकुन्तल नाटक विक्रमोर्वसी नाटक अच्छे अच्छे ग्रन्थ समझे गए हैं।

५०० वर्ष हुए कि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ने कालिदास कृत काव्यों की टीका की है। उन्हीं ने यह टीका दक्षिणावरनाथ की टीका देख कर बनाई। परन्तु वह अब दुष्प्राप्य है। भाषातत्ववित् लासेन साहब ने यह लिखा है कि कालिदास ईस्वी दो संवत् में समुद्र गुप्त की सभा में वर्त्तमान थे। लासेस ने एक पत्थर देखा था, जिस पर यह लिखा था कि " समुद्र गुप्त कवि बंधु काव्य प्रिय " और इसी से वह अनुमान करते हैं कि कविश्रेष्ठ कालिदास उन के सभासद थे। बेन्टली ने एशियाटिक नामक पत्रिका में भोज प्रबंध का फारसीसी अनुवाद और " आईने अकबरी " को देख कर लिखा है कि भोज राजा के राज्य के ८०० वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य के सभा में कालीदास वर्त्तमान थे, परन्तु यह बात कदापि नहीं हो सकती। बेल्टो ने स्वीय ग्रन्थों में कई एक ऐसी अशुद्ध बातें लिखी हैं जिन के पढ़ने से बोध होता है कि वह हिन्दुओं का इतिहास कुछ भी नहीं जानते।

कर्नेल उइलफोर्ड, प्रिन्सेप और एलफिनस्टन ने लिखा है कि कालिदास प्रायः १४०० वर्ष पूर्व वर्त्तमान थे।

भोज प्रबंध के प्रमाणानुसार गुजरात, मालव और दक्षिण के पंडित कहते हैं कि कालिदास सन् ११०० ईस्वी में भोजराजा के सभासद थे। उज्जैन के राजसिंहासन पर कई विक्रमादित्य और भोजराज नामक राजा बैठे, परन्तु सब से अंत के भोज राजा तो संवत् ११०० ईस्वी में राज्य करते थे। और इस से बोध होता है कि अंत के विक्रम ही को भोजराज कहते हैं और उन्हीं की नवरत्न की सभा थी। हम स्वयं "भोजप्रबंध" पाठ कर के देखा है कि उस में

यह लिखा है कि मालव देशांतर्गत धारानगराधिप भोज सिन्धुल के पुत्र और मुंजर के भ्रातृपुत्र थे। भोज के बाल्यावस्था में उन के पिता का परलोक हुआ तो उन के पितृव्य मुंज राजपद पर अभिषिक्त हुए और भोज ने उन के मंत्री बन कर बहुत विद्या उपार्जन किया और इसी प्रकार भोज दिन प्रति दिन विख्यात होने लगे। तो मुंज के मन में यह शंका हुई कि अब लोग हम को पदच्युत करेंगे और यह विचार करने लगे कि किसी प्रकार से भोज का प्राणनाश करूं। इसी हेतु मुंज ने वत्सराज राजा को बुला कर अपना दुष्ट विचार प्रकाशित किया और कहा कि भोज को शीघ्र ही आरण्य में लेजा कर इस का प्राणनाश करो। परन्तु इस राजा ने भोज को तो छिपा रक्खा और पशु के रक्त से भरे हुए खड्ग को राजा मुंज के पास भेज दिया। इस को देखकर उन्हों ने सानन्द चित्त से पूछा कि भोज ने मानव लीला समाप्त किया? यह सुन वत्स राजा ने एक पत्र पर लिख दिया कि—"मान्धाता जो भोज क्या एक समय नृप कुल का शिरोमणि था अब परलोक में है। रावणारि रामचन्द्र जिन्हों ने समुद्र में सेतु बांधा था वह कहां है? और बहुत से महोदय गण और राजा युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण किया है, परन्तु पृथ्वी उन के साथ नहीं गई। पर आप के साथ पृथ्वी अवश्य रसातल को जायगी।" इस पत्र को पढ़ते ही मुंजर का शरीर रोमांचित हुआ और भोज के लिये अत्यन्त व्याकुल हुए। परन्तु जब उन्हों ने सुना कि भोज जीता है, तो उन को वत्सराज से शीघ्र बुलवा कर धारानगर के राजसिंहासन पर बैठाया और आप ईश्वराराधन के निमित्त आरण्य में प्रवेश किया। भोज ने पितृसिंहा-

सन पा के बहुत से पंडितों को अपनी सभा में बुलाया। हम को भोजप्रबंध में कालिदास के सहित नीचे लिखे हुए पंडितों के नाम मिले हैं :—

कर्पूर, कलिंग, कामदेव, कोकिल, श्रीदचन्द्र, गोपालदेव, जयदेव, तारेचन्द्र, दामोदर, सोमनाथ, धनपाल, बाण, भवभूति, भास्कर, मयूर, मल्लिनाथ, महेश्वर, माघ, मुचकुन्द, रामचन्द्र, रामेश्वर, भक्त, हरिवंश, विद्याविनोद, विश्ववसु, विष्णुकवि, शंकर, सामदेव, शुक, सीता, सोम, सुबंधु इत्यादि।

सीता अवश्य किसी स्त्री का नाम है और इसी से बोध होता है कि स्त्रीशिक्षा उस समय प्रचलित थी। तो हम नहीं समझते कि हमलोगों के स्वदेशीय अब इस को क्यों बुरा समझ के अपने देश की उन्नति नहीं होने देते। देखिये, अमेरिका में स्त्रीशिक्षा कैसी प्रचलित है और जो लोग एक समय अत्यन्त मूर्ख अवस्था में थे अब यूरप के लोगों को भी दबा लिया चाहते हैं तो यह देख कर हे हिन्दुस्तानियो! क्या तुम को थोड़ी भी लज्जा नहीं आती?

पण्डित शेषगिरि शास्त्री ने लिखा है कि बल्लालसेन ने १२० ईस्वी में भोजप्रबन्ध बनाया। इस से बोध होता है कि वे भोजराज के विद्योत्साही और उन के सन्मान के वृद्धि के हेतु कालिदास भवभूति इत्यादि कवियों को केवल अनुमान ही से भोजराज का सभासद ठहराया है। भोजचरित में इन सब कवियों के नाम मिलते हैं इस लिये भोज प्रबन्ध को कैसे प्रमाणिक ग्रन्थ कहैं? इसी भोजराज ने चम्पू रामायण, सरस्वती कण्ठाभरण, अमरटीका, राजवार्तिक पातंजलिटीका और चारुचार्य इत्यादि बहुत से ग्रन्थ

बनाये हैं, परन्तु कालिदास भवभूति आदि कवियों के नाम इन में से एक भी ग्रन्थ में नहीं लिखे हैं। विस्वगुणादर्शक ग्रन्थकार वेदान्ताचार्य कालिदास श्रीहर्ष और भवभूति एक समय भोजराज के सभा में बर्तमान थे, जैसा लिखा भी है।

माघश्चोरो मयूरो मुररिपुरपरो भारविः सारविद्यः।
श्री हर्षःकालिदासः कविरथ भवभूत्यादयो भोजराजः।

इस में वे भी भोजप्रबन्धप्रणेता बल्लाल के न्याय महाभ्रम में पतित हुए हैं, क्योंकि श्रीहर्ष कालिदास और भवभूति एक काल में बर्तमान नहीं थे। इस विषय में बहुत से प्रमाण भी हैं।

भारतवर्ष के बहुत से राजाओं का नाम विक्रमादित्य था। उज्जयिनी के अधीश्वर विक्रमादित्य जो ५७ खी० पू० में राज्य करते थे और जिन्हों ने 'संवत्' स्थापन किया है तो अब हम लोगों को देखना चाहिये कि कालिदास इस विक्रम की सभा में उपस्थित थे वा नहीं। हम्बोलट लिखते हैं कि कविवर होरेस और वर्जिल-कालिदास के समकालि थे। इस बात को बहुत से यूरोपीय पंडितों ने स्वीकार किया है। कर्नैल टाड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि "जब तक हिन्दू साहित्य वर्तमान रहेगा तब तक लोग भोजप्रमर और उन के नवरत्नों को नं भूलेंगे"। परन्तु यह ठहराना बहुत कठिन है कि वह गुण पंडित तीन भोजराजों में से किस भोजराज की नवरत्न की सभा थी। कर्नैल टाड ने यह निरूपण किया है—प्रथम भोजराज संवत् ६३१ में, द्वितीय ७२१ और तृतीय भोजराज संवत ११०० में वर्तमान, थे। " सिंहासनबत्तीसी " "वेताल-

पचीसी" और "विक्रमचरित्र" आदि ग्रन्थों में महाराज विक्रमादित्य को बहुत सी अलौकिक कथा भरी हुई हैं, इसी कारण इन में कोई सत्य इतिहास नहीं मिल सकता। मेरुतुंग कृत "प्रबंध चिन्तामणि" और राजशेखरकृत "चतुर्विंशति प्रबंध" में लिखा है कि महाराजा विक्रमादित्य अति शूर वीर और महाबल पराक्रन्त नृपति थे। परन्तु उन में नवरत्न और कालिदास आदि कवियों का कुछ भी वृत्तान्त नहीं लिखा है।

जैन ग्रन्थों में लिखा है कि सिद्धसेन नामक जैनपुरोहित विक्रमादित्य के उपदेष्टा थे। परन्तु हम नहीं कह सकते कि यह बात कहां तक शुद्ध है और एक जैन लेखक कहते हैं कि ७२३ संवत् में भोजराज के राज्य में बहुत से लोग उज्जयिनी नगर में जा बसे थे। यह और वृद्ध भोज दोनों जैनमतावलंबी थे। ये सब वृत्तान्त जैन ग्रन्थों से ज्ञात होते हैं। और २ संस्कृत ग्रन्थों में ये सब प्रमाण नहीं मिलते। वृद्धभोज मनांतुग सूरि के शिष्य थे। मनांतुग और बाण, मयूर भट्ट के समकालिक जैनाचार्य्य थे। बाणकृत हर्षचरित पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्हों ने सन् ७०० ईस्वी में श्रीकंठाधिपति हर्षवर्द्धन के साथ भेंट किया था। यही कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन शिलादित्य थे और इन्हीं की सभा में हियांग नामक चैनिक परिव्राजक बुलाए गए थे। वाण कवि ने हियांगसियांग के ग्रन्थ को पाठ करके अपना ग्रन्थ बनाया। हर्षवर्द्धन के साथ चैनिकाचार्य्य के भेंट का वृत्तान्त हर्षचरित्र में "यवन प्रोक्त पुराण" नामक ग्रन्थ से लिया गया है।

महर्षि कन्व ने अपने "कथा सरित्सागर" के १८ वें अध्याय में नरवाहन दत्त को विक्रमादित्य का उपन्यास कहा है। उस में लिखा है कि विक्रमादित्य सन् ५०० ईस्वी में उज्जयिनी में राज्य करते थे। नरवाहन दत्त, जैन ग्रन्थ, कथा सरितसागर और मत्स्य-पुराण के मतानुसार शतानिक के पौत्र थे। नासिक में एक पत्थर की चट्टान मिली है जिस पर विक्रमादित्य का नाम लिखा है और उन को नभाग, नहुष, जन्मेजय, ययाति और बलराम के नाईं योद्धा वर्णन किया है। पाठक जनों को देखना उचित है कि एक विक्रमादित्य के इतिहास में कितनी गड़बड़ है। लोगों में जो केवल एक ही विक्रमादित्य प्रसिद्ध हैं, इस समय के भारतवर्षीय इतिहासों में कई एक विक्रमादित्यों के नाम मिले हैं। परन्तु हम को उस विक्रमादित्य का इतिहास ज्ञात होना आवश्यक है जिस से हम लोगों का सन्देह दूर हो और यह जान पड़े कि नवरत्नों के अमूल्य-रत्न कवि चक्रचूड़ामणि कालिदास का विक्रमादित्य से कुछ सम्बन्ध है वा नहीं।

श्री देवकृत विक्रमचरित में लिखा है कि विक्रमादित्य तीर्थंग-कर वर्द्धमान के नाश होने के ४७० वर्ष परे उज्जयिनी में राज्य करते थे और इन्हों ने ही संवत् स्थापन किया है, परन्तु इस ग्रन्थ में कालिदास का नाम भी नहीं लिखा है।

पंडित तारनाथ तर्कवाचस्पति कहते हैं कि महा कवि कालि-दास ने 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' बनाने के अन-न्तर ३०६८ कलिगताब्द में "ज्योतिर्बिदाभरण" नामक काल ज्ञान शास्त्र बनाया। मेघदूतप्रकाशक बाबू प्रान नाथ पंडित महाशय

ने भी इस बात को अपनी भूमिका में लिखा है, परन्तु यह किसी का ग्रन्थ नहीं दृष्टि पड़ता कि 'ज्योतिर्बिदाभरण' रघुकार कालिदास रचित है। तर्कवाचस्पति महाशय के मत को सहायता देने के निमित्त "ज्योतिर्बिदाभरण" के कतिपय श्लोकों का अनुवाद करके हम नीचे लिखते हैं, जैसा कालिदास ने लिखा।

मैं ने इस प्रफुल्लकर ग्रन्थ को भारतवर्षान्तिर्गत मालव देश में (जिस में १८० नगर हैं) राजा विक्रमादित्य के राज्य के समय रचा है॥ ७॥

शंकु, बररुचि, मणि, अंशुदत्त, जिष्णु, त्रिलोचन हरि, घटकर्पर, अमर सिंह और २ बहुत से कवियों ने उन के सभा को सुशोभित किया था॥ ८॥

सत्य, बराहमिहिर, श्रुतिसेन, श्रीबाद्ररायणी, भनिथ्व, कुमार सिंह और कई एक महाशय ज्योतिशास्त्र के अध्यापक थे॥ ९॥

धन्वन्तरि, क्षपणक, अमर सिंह, शंकु, बैतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास और बराहमिहिर और बररुचि, ये सब महाशय विक्रम नवरत्न थे॥ १०॥

विक्रम की सभा में ८०० छोटे २ राजा और उन के महा सभा में १६ बाग्मी, १० ज्योतिषी, ६ बैद्य और १६ वेद-पारग पंडित उपस्थित रहते थे॥ ११॥

कोई कहते हैं कि यह कवि, मालवा के राजा हर्ष विक्रमादित्य के समय, हज़रत ईसा की छठवीं सदी में था। उस राजा की राजधानी उज्जैन नगरी थी। इसी कारण कालिदास भी वहां रहा था। राजा विक्रम की सभा में ९ रत्न थे, उन में से एक कालिदास था।

कहते हैं कि लड़कपन में इस ने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा, केवल एक स्त्री के कारण इसे यह अनमोल विद्या का धन हाथ लगा। इस की कथा यों प्रसिद्ध है, कि राजा शारदानन्द की लड़की विद्योत्तमा बड़ी पंडिता थी। उस ने यह प्रतिज्ञा की, कि जो मुझे शास्त्रार्थ में जीतेगा, उसी को ब्याहूंगी। उस राजकुमारी के रूप, यौवन विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर २ से पंडित आते थे। पर शास्त्रार्थ के समय उस से सब हार जाते थे। जब पंडितों ने देखा, कि यह लड़की किसी तरह वश में नहीं आती और सब को हरा देती है, तो मन में अत्यन्त लज्जित होकर सब ने पक्का किया, कि किसी ढब विद्योत्तमा का विवाह किसी ऐसे मूर्ख के साथ करावें, जिस में वह जन्म भर अपने घमंड पर पछताती रहे। निदान वे लोग मूर्ख के खोज में निकले। जाते २ देखा, कि एक आदमी पेड़ के ऊपर जिस टहनी के ऊपर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है। पंडितों ने उसे महा मूर्ख समझ कर बड़ी आव भगत से नीचे बुलाया और कहा, कि चलो हम तुम्हारा ब्याह राजा की लड़की से करा देवें। पर खबरदार राजा की सभा में मुंह से कुछ भी बात न कहो, जो बात करनी हो इशारों से कहियो। निदान जब वह राजा की सभा में पहुंचा, जितने पंडित वहां बैठे थे, सब ने उठकर उस की पूजा की, ऊंची जगह बैठने को दी और विद्योत्तमा से यों निवेदन किया कि ये बृहस्पति के समान विद्वान हमारे गुरु, आप के ब्याहने को आये हैं। परन्तु इन्हों ने तप के लिये मौन साधन किया है। जो कुछ आप को शास्त्रार्थ करना हो, इशारों से कीजिए। निदान उस राजकुमारी ने इस आशय से, कि ईश्वर एक है, एक उंगली

उठाई। मूर्ख ने यह समझकर कि धमकाने के लिये उंगली दिखा कर एक आंख फोड़ देने का इशारा करती है, अपनी दो उंगलियां दिखलाईं। पंडितों ने उन दो उंगलियों के ऐसे अर्थ निकाले, कि उस राजकुमारी को हार माननी पड़ी और विवाह भी उसी दम हो गया। रात के समय जब दोनों का एकान्त हुआ, किसी तरफ से एक ऊंट चिल्ला उठा। राजकन्या ने पूछा, कि यह क्या शोर है, मूर्ख तो कोई भी शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था, कह उठा उद्र चिल्लाता है। और जब राजकुमारी ने दुहराकर पूछा, तो उद्र की जगह उस्ट कहने लगा, पर शुद्ध उष्ट्र का उच्चारण न कर सका। तब तो विद्योत्तमा को पंडितों की दगाबाज़ी मालूम हुई और अपने धोखा खाने पर पछताकर फूट २ कर रोने लगी। वह मूर्ख भी अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ, पहिले तो चाहा, कि जान ही दे डालूं पर सोच समझ कर घर से निकल विद्या उपार्जन में परिश्रम करने लगा। और थोड़े ही दिनों में ऐसा पंडित हो गया, जिस का नाम आज तक चला जाता है। जब वह मूर्ख पंडित होकर घर में आया, तो जैसा आनन्द विद्योत्तमा के मन को हुआ, लिखने से वाहर है। सच है, परिश्रम से सब कुछ हो सकता है।

कालिदास के समय घटखर्पर, वररुचिआदि और भी कवि थे। कालिदास ने काव्य नाटकादि अनेक ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में लिखे हैं। इन की काव्य-रचना बहुत सादी, मधुर और विषयानुसारिणी है। अंगरेज़ लोग कालिदास को अपने शेक्सपियर के सदृश उपमा देते हैं। इस के समय में भवभूति नामक एक कवि था। कहते हैं कि उस की विद्या कालिदास से अधिक थी। परन्तु कवित्वशक्ति

कालिदास की सी न थी। भवभूति कालिदास के श्रेष्ठत्व को मानता था।

कालिदास सारस्वत ब्राह्मण था। उस को आखेट आदि खेलों की बड़ी चाह थी, और उस ने अपने ग्रन्थ में इस का वर्णन किया है, कि मनुष्य के शरीर पर ऐसे खेलों से क्या २ उपकारी परिणाम होते हैं।

विक्रमादित्य ने उस को कश्मीर का राजा बनाया और यह राज्य उस ने चार बरस ६ महीने किया।

कालिदास उज्जैन में रहता था, परन्तु उस की जन्मभूमि कश्मीर थी। देशांतर होने पर स्त्री के वियोग से जो २ दुःख उस ने पाये, उन का बखान मेघदूत-काव्य में लिखा है। कालिदास बड़ा चतुर पुरुष था। उस की चतुराई की बहुत सी कहानियां हैं, और वे सब मनोरंजन हैं, यथा उन में से कई एक ये हैं।

(१) भोजराजा को कवित्व पर बड़ी प्रीति थी। जो कोई नया कवि उस के पास आता और कविताचातुर्य बताता, तो उस को वह अच्छा पारितोषिक देता, और चाहता तो अपनी सभा में भी रखता। इस प्रकार से यह कविमण्डल बहुत बढ़ गया। उस में कई कवि तो ऐसे थे कि, वे एक बार कोई नया श्लोक सुन लेते, तो उसे कण्ठ कर सकते थे। जब कोई मनुष्य राजा के पास आ कर नया श्लोक सुनाता था, तो कहने लगते थे, कि यह तो हमारा पहिले ही से जाना हुआ है और तुरन्त पढ़ कर सुना देते थे।

एक दिन कालिदास के पास एक कवि ने आकर कहा, कि महाराज, आप यदि राजा के पास ले चलें और कुछ धन दिला देवें, तो मुझ पर आप का बड़ा उपकार होगा। जो मैं कोई नया श्लोक बना कर राजसभा में सुनाऊं, तो उस का नूतनत्व मान्य होना कठिन है इस लिये कोई युक्ति बताइए।

कालिदास ने कहा कि तुम श्लोक में ऐसा कहो, कि राजा से मुझ को रत्नों का हार लेना है, और जो कुछ मैं कहता हूं, सो यहां के कई पंडितों को भी मालूम होगा। इस पर यदि पंडित लोग कहें कि यह श्लोक पुराना है, तो तुम को रत्नों का हार मिल जायगा, नहीं नए श्लोक का अच्छा पारितोषिक मिलेगा।

उस कवि ने कालिदास की बताई हुई युक्ति को मानकर वैसा ही श्लोक बनाया और जब उस को राजसभा में पढ़ा, तो कवि-मंडल चुपचाप हो रहा और उस कवि को बहुत सा धन मिला।

(२) एक समय कालिदास के पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा, कि कविराज मैं अति दरिद्री हूं और मुझ में कुछ गुण भी नहीं है, मुझ पर आप कुछ उपकार करें तो भला होगा।

कालिदास ने कहा, अच्छा हम एक दिन तुम को राजा के पास ले चलेंगे, आगे तुम्हारा प्रारब्ध। परन्तु रीति है कि जब राजा के दर्शन निमित्त जाते हैं, तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं *

---

* राजा कन्या ज्योतिषी, वैद्य गुरुतुर सिद्ध।
भरे हाथ इन पै गए, होय कार्य सब सिद्ध॥

इस लिये मैं जो ये सांटे के चार टुकड़े देता हूं सो ले चलो। ब्राह्मण घर लौटा और उन सांटे के टुकड़ों को उस ने धोती में लपेट रक्खा। यह देख किसी ठग ने उस के बिन जाने उन टुकड़ों को निकाल लिया और उन के बदले लकड़ी के उतने ही टुकड़े बांध दिए।

राजा के दर्शनों को चलने के समय ब्राह्मण ने सांटे के टुकड़ों को नहीं देखा। जब सभा में पहुंचा तब यह काष्ट की भेंट राजा को अर्पण की। राजा इस को देखते ही बहुत क्रोधित हुआ। उस समय कालिदास पास ही था। उस ने कहा, महाराज, इस ब्राह्मण ने अपनी दरिद्ररूपी लकड़ी आप के पास ला कर रक्खी है इस लिये कि उस को जला कर इस ब्राह्मण को आप सुखी करें! यह बात कवि के मुख से सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ, और उस ब्राह्मण को बहुत धन दिया।

(३) एक समय राजाभोज कालिदास को साथ ले वनक्रीड़ा के हेतु अरण्य को गए, और घूमते २ थके मांदे हो, एक नदी के किनारे जा बैठे। इस नदी में पत्थर बहुत थे, उन पर पानी गिरने से बड़ा शब्द होता था। उस समय राजा ने कालिदास से विनोद करके पूछा, कि कविराज यह नदी क्यों रोती है? कालिदास ने उत्तर दिया, कि महाराज वह छोटे ही पन में अपने मैके से ससुराल को जाती है।

कालिदास के प्रसिद्ध ग्रन्थ शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र और मेघदूत हैं। शकुन्तला बहुत वर्णनीय ग्रन्थ है। उस का उलथा यूरप में सब देशों की भाषाओं में हो गया है।

एक समय कविवर कालिदास अपने मकान में बैठ कर अपने प्रिय पुत्र को अध्ययन कराता था, उसी समय क्षत्रिय-कुल-भूषण शकारि विक्रमादित्य संयोग से आ गए। कविवर कालिदास ने महाराज को देख प्रिय पुत्र का पढ़ाना छोड़ कर शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया। जब क्षत्रिय-कुल-भूषण राजा विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने देश ही में मान पाता है और विद्वान् का मान सब स्थानों में होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा को सुनकर अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविराज कालिदास ऐसा अभिमानी पण्डित है कि मेरे ही सामने पण्डितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को वा मुझे नीचा देखता है। मैं पण्डितों का विशेष आदरमान करता हूं और जो मेरे वा राजाओं के वा धनवानों के यहां पण्डितों का आदर नहीं, तो कहां हो सकता है। ऐसा कुतर्क करते हुए अपने घर पर गए। महाराज विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन सम्पति दी थी उस को हर लेने के लिये मन्त्री को आज्ञा दी। मन्त्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था। कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दुःखी होकर अपने बाल बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता अन्त में करनाटक देश में पहुंचा। करनाटक देशाधिपति बड़ा पण्डित और गुणग्राहक था। उस के पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविताशक्ति देखाई, तो उस पर करनाटक देशाधिपति

ने अति प्रसन्न हो कर बहुत सा धन और भूमि दे कर उस को अपने राज्य में रक्खा। कविवर कालिदास राजा से सन्मान पाकर उस देश में रह कर प्रति दिन राजसभा में जाने लगा। वहां राजा के सिंहासन के पास ऊंचे आसन पर बैठ सब राजकार्जों में उत्तम सलाह देने लगा। और अनेक प्रकार की कविताओं से सभासदों के मन की कली खिलाता हुआ सुख से रहने लगा। जब से कविवर कालिदास को विक्रमादित्य ने छोड़ा तब से वे बड़े शोक-सागर में डूबे थे। नवरत्नों में कविवर कालिदास ही अनमोल रत्न था। इस के सिवाय जब राजा को राजकाज के कामों से फ़ुरसत मिलती थी तब केवल कविराज कालिदास ही की अद्-भुत कविताओं को सुन कर राजा का मन प्रफुल्लित होता था। इस लिये ऐसे गुणी मनुष्य के बिना राजा का सब वस्तुओं से मन उदास होने लगा। फिर राजा ने कविराज कालिदास का पता लगाने के लिये सब देशों में दूतों को भेजा। जब कहीं पता न लगा तब राजा आप ही भेष बदल कर खोजने के लिये निकले। कई देशों में घूमते फिरते जब करनाटक देश में गए, उस समय इन्हें पथव्यय के लिये एक हीरा जड़ी हुई अंगूठी के छोड़ और कुछ नहीं था। उस अंगूठी को बेंचने के लिए वे किसी जौहरी की दूकान पर गए। रत्न-पारखी ने ऐसे दरिद्र के हाथ में ऐसी अन-मोल रत्न-जड़ित-अंगूठी को देख कर मन में चोर समझा और कोतवाल के पास भेजा। कोतवाल राज-सभा में ले गया। वे चारो ओर देखते भालते जो आगे बढ़े तो कविवर कालिदास को देखा और कहा, महाराज मैं ने जैसा किया वैसा ही फल पाया।

कविवर कालिदास उठ कर राजा को अंक में लगा कर करनाटक देशाधिपति से परिचय करा और सब व्योरा कह कर राजा वीर-विक्रमादित्य के साथ चला आया।

पर इन कथाओं से भी वही झंझट पाई जाती है और कविवर कालिदास का समय ठीक निश्चय होना कठिन है।

कोई कोई कहते हैं कि कविवर कालिदास की सहायता से एक ब्राह्मण ने राजाभोज से एक श्लोक पर अनेक रुपया इस चतुराई से लिया था।

उज्जैन नगरी में राजाभोज ऐसा विद्यारसिक और गुणज्ञ और दानशील था कि विद्या की वृद्धि के प्रयोजन से उस ने यह नियम प्रचलित किया था कि जो कोई नवीन आशय का श्लोक बना के लावे, तो उस को लाख रुपये दक्षिणा देवें। इस बात को सुन के देश देशांतर के पंडित लोग नये आशय के श्लोक बना के लाते थे, परन्तु उस की सभा में चार ऐसे पंडित थे कि एक को एक वार, दूसरे को दो वार, तीसरे को तीन वार और चौथे को चार वार सुनने से नया श्लोक कंठस्थ हो जाता था। सो जब कोई पर-देशी पंडित राजा की सभा में नवीन आशय का श्लोक बना के लाता तो वह राजा के सम्मुख पढ़के सुनाता था। उस समय राजा अपने पंडितों से पूछता था कि यह श्लोक नया है वा पुराना। तब वह मनुष्य जिस को कि एक वार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था कहता कि यह पुराने आशय का श्लोक है और आप भी पढ़ के सुना देता था। इस के अनन्तर वह मनुष्य जिस को दो वार सुनने से कंठ हो जाता था पढ़ के सुनाता

और इसी प्रकार वह मनुष्य जिस को तीन वार और वह भी जिस को चार वार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था। क्रम से सब राजा को कंठाग्र सुना देते। इस कारण परदेशी विद्वान अपने प्रयोजन से रहित हो जाते थे और इस बात की चर्चा देश देशांतर में फैली। सो एक विद्वांन ऐसा देश काल में चतुर और बुद्धिमान था कि उस के बनाये हुए आशय को इन चार मनुष्यों को भी अङ्गीकार करना पड़ा कि यह नवीन आशय है और वह श्लोक यही है।

श्लोक।

राजन् श्रीभोजराज त्रिभुवनविजयी धार्मिकस्ते पिताऽभून।
पित्रा तेन गृहीता नवनवतिमिता रत्नकोटिर्मदीया॥
तां त्वं देहि त्वदीयैस्सकल बुध वरैर्ज्ञायते वृत्त मेत।
न्नोचेज्जानंतितेवैनवकृतमथ वा देहि लक्षं ततो मे॥ १॥

हे राजा भोज, तीनों लोक के जीतने वाले, तुम्हारे पिता बड़े धर्मिष्ठ हुए हैं। उन्हों ने मुझ से निन्नानवे किरोड़ रत्न लिया है सो मुझे आप दीजिये और इस वृत्तांत को तुम्हारे सभासद् विद्वान् जानते होंगे उन से पूछ लीजिये। जो वह कहें कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है, तो अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिये। इस आशय को सुन कर चार विद्वानों ने विचारांश किया कि जो इस को पुराना आशय ठहरावें, तो महाराज को निन्नानवे किरोड़ द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहने में केवल एक लाख। सो उन चारों ने क्रम से यही कहा कि पृथ्वीनाथ, यह

नवीन आशय का श्लोक है। इस पर राजा ने उस विद्वान् को लाख रुपया दिया।

श्री रामानुज स्वामी का जीवन चरित्र।

दक्षिण में पूर्व सागर के पश्चिम तट से बारह कोस दूर तोंडीर देश में भूतपुरी नामक नगरी है। वहां हारीत गोत्र के केशव नामक एक ब्राह्मण रहते थे। यह सन्तान-हीन होने के कारण बहुत दुखी रहा करते। एक वार चन्द्रग्रहण में पुत्रप्राप्ति के हेतु इन्हों ने यज्ञ भी किया था। कहते हैं स्वप्न में शेषजी ने दर्शन दे कर इन को आज्ञा किया कि हम तुम्हारे घर में अवतार लेंगे। तदनुसार श्री रामानुजाचार्य्य का केशव के घर चैत्र सुदी ५ को जन्म हुआ। लक्ष्मण आर्य्य और रामानुज यह दो नाम इन का रक्खा गया। सोलहवें बरस रक्षकाम्बा नामक एक स्त्री के साथ इन का विवाह हुआ। विवाह के पीछे केशव जो मर गए। तब रामानुज स्वामी विद्या पढ़ने को कांचीपुर गए और वहां यादव नामक प्रसिद्ध पंडित के पास विद्या पढ़ने लगे। जिन दिनों स्वामी वहां विद्या पढ़ते थे उन्हीं दिनों में कांचीपुर के राजा की कन्या को ब्रह्मपिशाच की बाधा हुई। रामानुज स्वामी ने अपना पैर छुला कर उस की पिशाचबाधा दूर कर दी। इस से प्रसन्न होकर राजा ने उन को बहुत सा द्रव्य दिया। उसी काल में स्वामी के मौसा गोबिन्द नामक एक बड़े पंडित यादव पंडित से शास्त्रार्थ करने आए और रामानुज स्वामी का और इन का मत विषयक एक विश्वास होने

से दोनों में अत्यन्त प्रीति हुई। यादव पंडित जो वास्तव में माया-बादी थे गोविन्द पंडित और स्वामी से बाद में बारम्बार पराभूत होने से इस कुविचार में फंसे कि किसी भांति स्वामी के प्राण हरण किए चाहिए। इसी वास्ते प्रगट में बहुत स्नेह दिखला सर स्वामी को साथ लेकर यात्रा के बहाने से प्रयाग की ओर चले। मार्ग में गोंड़ा के जंगल में गोविन्द पण्डित ने स्वामी से यादव की सब कुप्रवृत्ति कह दिया। स्वामी भयभीत होकर जंगल में छिपे। वहां उस जंगल के देवता नारायण हस्त गिरिनाथ ने लक्ष्मी समेत व्याधमिथुन वन कर दर्शन दिया और अपनी रक्षा में उन को कांचीपुर ले आए।

इसी समय रंगपुर में यामुनार्य्य नामक एक त्रिदण्डी संन्यासी थे। उन को सर्वलक्षणसम्पन्न एक शिष्य करने की इच्छा हुई। उन्हों ने अपने चेलों को चारो ओर भेजा कि एक सर्वगुणसंयुक्त लड़का खोज लाओ। उन शिष्यों ने आचार्य्य से जा कर रामानुज स्वामी का कुल गुण विद्या आदि का वर्णन किया।

गोविन्द पण्डित इस समय कालहस्ति नगर में आ बसे और वहां एक शिव स्थापन कर के अध्यापन कराने लगे। यादव भी प्रयाग से कांची फिर आए और स्वामी का दैवी प्रभाव देख कर शिष्यों के द्वारा उन से मैत्री कर के रहने लगे।

यामुनाचार्य्य रामानुज स्वामी को देखने के हेतु कांचीपुर चले और मार्ग में हस्तिगिरि नारायण के दर्शन के हेतु और अपने शिष्य कांचीपूर्ण से मिलने को हस्तपुर में ठहरे। संयोग से रामानुज स्वामी आदि शिष्यों के साथ यादव पंडित भी हस्तिगिरि नाथ के

दर्शन को आए थे। वहां कांचीपूर्ण ने आचार्य्य से स्वामी का परिचय कराया और आचार्य्य इन को देख कर बहुत प्रसन्न हुए और कुछ दिन के पीछे सब लोग अपने २ नगर गए। एक दिन रामानुज स्वामी अपने गुरु यादव पंडित को तेल लगाते थे। उसी समय 'कप्यास्य' इस श्रुति का अर्थ यादव ने कुछ अशुद्ध किया, इस से स्वामी को बड़ा कष्ट हुआ और शास्त्रार्थ में स्वामी ने यादव को परास्त किया। इस से यादव ने क्रोधित होकर स्वामी को निकाल दिया। स्वामी वहां से हस्तिगिरि चले आए और कांची-पूर्ण के उपदेश से हस्तिगिरिनाथ वरदराज नारायण की सेवा करने लगे।

यह वृत्तान्त सुन कर यामुनाचार्य ने अपने शिष्य पूर्णाचार्य को अपने बनाए स्तोत्र देकर हस्तगिरि भेजा। एक दिन वरदराज स्वामी के सामने पूर्णाचार्य वह सब स्तोत्र पढ़ रहे थे कि रामानुज स्वामी ने सुन कर और उन की भक्तिपूर्ण रचना से प्रसन्न होकर पूर्णाचार्य्य से पूछा कि यह स्तोत्र किस के बनाए हैं। पूर्णाचार्य्य ने कहा कि यह सब स्तोत्र यामुनाचार्य के बनाए हैं और वे आप के दर्शन की बड़ी इच्छा रखते हैं। पूर्णाचार्य के उपदेश से रामा-नुज स्वामी यामुनाचार्य्य से मिलने रंगपुर चले और मार्ग में महा-पूर्णाचार्य से मिलाप हुआ। स्वामी का आना सुन कर यामुना-चार्य भी आगे से उन को लेने चले, किन्तु कावेरी के किनारे पहुंच कर शरीर छोड़ दिया। स्वामी भी शीघ्रता से वहां पहुंचे, तो देखा कि आचार्य्य ने शरीर छोड़ दिया है, परन्तु तीन अंगुली उठाय हुए हैं। स्वामी ने आचार्य्य का आशय समझ कर [अर्थात्

१ बौधायन मतानुसार ब्रह्मसूत्रादि का भाष्य बनाना, २ दिल्ली के तत्सामयिक बादशाह से श्रीराममूर्ति का उद्धार करना और ३ दिग्विजय पूर्वक विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार] प्रतिज्ञा किया कि हम आप की इच्छा पूर्ण करैंगे, जो सुन कर सुखपूर्वक आचार्य्य वैकुंठ धाम गए और स्वामी भी कांची फिर आए। एक बेर कांची-पूर्ण के घर स्वामी भोजन करने गए थे, तब कांचीपूर्ण ने स्वमत विषयक उन को अनेक उपदेश किया और कहा कि आप रंगपुर जाकर पूर्णाचार्य्य से सब ग्रन्थ पढ़िए।

स्वामी उन के उपदेशानुसार रत्नपत्तन आए और विधिपूर्वक पंच संस्कार * दीक्षित होकर संस्कृत और द्राविड़ भाषा के ग्रन्थ सरहस्य पूर्णाचार्य्य से पढ़े। कुछ काल पीछे एक कुंए में से जल निकालते समय पूर्णाचार्य्य की स्त्री से और स्वामी की स्त्री से कुछ कलह हो गई, इस से स्वामी रत्नकाम्बा से उदास हो गए। एक यही नहीं, अनेक समय में रत्नकाम्बा के खरतर स्वभाव का परिचय मिलने से स्वामी का जी उस की ओर से खिंच गया था, इस से स्वामी ने उन को नेहर भेज दिया और आप भी सब धन गृह आदि का त्याग करके त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। कांचीपूर्ण ने इस पर अति प्रसन्न होकर 'यतिराज' को स्वामी की पदवी दिया।

कुछ दिन पीछे स्वामी के भांजे दाशरथि और अनन्तभट्ट के पुत्र कूरनाथ यह दोनों आकर कांची रहने लगे और स्वामी से विद्या

---

* दो०। ऊर्ध्व पुंड मुद्रा बहुरि, माला मंत्र विचार।
संसकार ए वैष्णवी, धर्म कर्म को सार॥ १"

पढ़ने लगे। एक समय यादव पंडित कांची आए और शंख चक्र से स्वामी का कलेवर चिन्हित देख कर बड़ा आक्षेप किया। इस पर स्वामी की इच्छा से कूरनाथ वे शास्त्रार्थ पूर्वक स्वमत स्थापन कर के यादव को निरुत्तर किया। यादव पंडित ने भी ज्ञान पाकर त्रिदंड ग्रहणपूर्वक गृहस्थाश्रम का परित्याग किया और दीक्षित होकर गोविन्ददास यह नाम पाया। इन्हीं गोबिन्ददास ने 'यति-धर्म्म समुच्चय' नामक ग्रन्थ बनाया है।

कुछ काल के पीछे यामुनाचार्य्य के पुत्र वररंग स्वामी रामानुज को लेने को हस्तिगिरि आए। यहां उन्हों ने नाटकों का अभिनय दिखला कर श्री वरद्राज जी को मांगा और वहां से रामानुज स्वामी को ला कर रंग नाथ जी को समर्पण किया, जिस से स्वामी अब रंगनाथ जी की सेवा का अधिकार और उस संप्रदाय का आचार्य्यत्व दोनों के अधिकारी हुए।

इसी समय में स्वामी के ममेरे भाई बेंकट गोबिन्द पंडित से जो कि बड़े शैव थे बेंकटगिरि के निवासी श्री शैलपूर्ण नामक वैष्णव यति से बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ, जिस में गोविन्द पंडित ने पराजय पाकर श्री शैलपूर्ण का शिष्यत्व अङ्गीकार किया।

कुछ दिन पीछे पूर्णाचार्य्य के उपदेश से स्वामी रामानुज अठा-रह बेर शोष्ठीपुर में गोष्ठापूर्णाचार्य्य से तत्व पूछने की इच्छा से गए और यद्यपि पहिले उन्हों ने बहुत आनाकानी की पर अन्त में सब रहस्य स्वामी को उपदेश किया किन्तु यह कह दिया था कि यह किसी को बतलाना मत।

स्वामी रामानुज मन्त्रों का रहस्य पाकर ऐसे परितुष्ट हुए कि अनेक लोगों से उन्हों ने दयापूर्वक वह रहस्य कहा। जब गोष्ठी-पूर्णाचार्य्य को यह बात मालूम हुई, तब उन्हों ने स्वामी को बुला कर पूछा कि "जो गुरु की आज्ञा उल्लंघन करै उस की क्या गति होती है?" स्वामी ने उत्तर दिया 'नर्क', तब गुरु ने पूछा कि फिर तुम ने हमारी आज्ञा उल्लंघन कर के रहस्य क्यों लोगों से कहा। इस पर स्वामी ने अपने दयापरवश उदार स्वभाव से निर्भय हो कर उत्तर दिया।

"पतिष्ये एक एवाहं नरके गुरुपातकात्।
सर्वे गच्छन्तु भवतां कृपया परमं पदम्॥"

अर्थात् आप की आज्ञा टालने से मैं एक नरक में पड़ूं किन्तु और लोग जिन से हम ने रहस्य का उपदेश किया है वे आप की दया से परम पद पावैं॥

गुरु उन के इस उदार वाक्य से ऐसे प्रसन्न हुए कि "मन्नाथ" अर्थात् हमारे भी स्वामी, उन का नाम रक्खा और वरदान दिया कि आज से यह वैष्णव सिद्धान्त रामानुज सिद्धान्त से प्रचलित होगा और संसार में तुम आचार्य रूप से प्रसिद्ध होंगे।

कुछ काल पीछे स्वामी के भांजे दाशरथि स्वामी की आज्ञा से पूर्णाचार्य्य की बेटी के ससुराल में उस का काम काज सम्हालने को रहने लगे। वहां एक वैष्णव श्रुतियों का कुछ विरुद्ध अर्थ करता था। उस से शास्त्रार्थ कर के उस को उन्हों ने स्वामी के पास दीक्षित होने को भेज दिया और वह वैष्णव दास नाम पाकर इस मत का एक मुख्य पण्डित हुआ।

इस सम्प्रदाय में मालाधार नामक एक बड़े पण्डित थे। शठकोपाचार्य्य कृत सहस्रगीतिका स्वामी ने उन से व्याख्यान सुना। ऐसे ही अनेक वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्धों से स्वमत का अनेक सिद्धान्त स्वामी ने लिया। वरञ्च अपने पुत्र सुन्दरबाहु को मालाधर ही से दीक्षित कराया।

रङ्गजी ठाकुर का आभूषण एक वार चोर लोग चुरा ले गए थे और उन लोगों को इस दोष से कारागार हुआ था। वे चोर स्वामी से बड़ा द्वेष रखते थे। इस से उन लोगों ने स्वामी के अंग-सेवकों को घूस देकर इन के भोजन में विष मिला दिया। किन्तु परमेश्वर ने यह सब वृत्त अनुभव द्वारा स्वामी को बतला दिया इस से उन की रक्षा हुई।

यज्ञमूर्ति नामक एक वेदान्त का बड़ा भारी सन्यासी पण्डित था। वह दिग्विजय करता हुआ रङ्गनगर में स्वामी से शास्त्रार्थ करने आया। स्वामी ने अठारह दिन पर्य्यन्त उस से शास्त्रार्थ कर के उस को परास्त किया और उस से प्रायश्चित्त करा के उस को फिर से शिखा सूत्र धारण कराया। देवराज देवमन्नाथ और मन्नाथ यह तीन नाम उस पण्डित के रक्खे गए और वह एक बड़े मठ का स्वामी नियत हुआ। इस पण्डित ने ज्ञानसार और प्रमेयसार नामक द्राविड़ भाषा में वैष्णव मत के दो बड़े सुन्दर ग्रन्थ बनाए हैं।

एक समय पुण्यनगर से अनन्ताचार्य्य बहुत से वैष्णवों के साथ स्वामी के दर्शन को आए। स्वामी ने उन को वैंकटाटगिरि की सेवा का अधिकार दिया। तब वे वेंकटगिरि गए और वहां

वृन्दावन बना कर रहने लगे। इन्हीं ने वेंकटनाथ स्वामी का "रामानुज" 'लक्ष्मण' इत्यादि नाम रक्खा है।

स्वामी इस के पश्चात् देशाटन करने को निकले और वेंकटगिरि होते हुए उत्तर की यात्रा को चले। मार्ग में दिल्ली में त्रिविक्रमाचार्य्य से भेंट किया। वहां से बदरीनाथादि होते हुए लौट कर अष्ट सहस्र गांव में आए। वहां वरदाचार्य्य और यज्ञेश नामक अपने दो शिष्यों को मठाधिपति नियुक्त किया। वहां से हस्तिगिरि आए और पूर्णाचार्य्यादि से मिल कर कापिल तीर्थ को गए। वहां कुछ दिन तक रहे और देश के राजा बिट्ठलदेव को शिष्य किया। इस राजा बिट्ठलदेव ने तोण्डीर मण्डलादिक अनेक गांव स्वामी को भेंट किए। वहां से वृषाचलादि स्थानों में अपना महात्म्य प्रकाश करते हुए रङ्गनगर स्वामी लौट आए।

स्वामी के मामा के पुत्र गोविन्दपण्डित को विराग में ऐसी रुचि हुई कि स्वामी ने बहुत कहा। परन्तु उन्हों ने गृहस्थाश्रम स्वीकार नहीं किया। तब स्वामी ने उन को सन्यास दिया।

एक बार केवल कूरेश को साथ लेकर स्वामी शारदापीठ गए क्योंकि वहां वशिष्टाद्वैत *, मत का मूल ग्रन्थ बौधायन कृत ब्रह्मसूत्र वृत्ति की पुस्तक थी। जिस को देखकर स्वामी को तदनुसार भाष्य बनाना बहुत

---

* दो० कहहिं एक अद्वैतमत, दुतिय द्वैत मत जान।
त्रितिय विशिष्टाद्वैत है, ता मधि तीन प्रमान ॥ १ ॥
प्रगट लोक मत लोक में, दुतिय वेदमत जान।
त्रितिय संतमत करत जिहि, हरिजन अधिक प्रमान ॥ २ ॥

आवश्यक था। शारदापीठ के सब पंडितों को स्वामी ने शास्त्रार्थ में पराजित किया। जब वहां से लौटे तो बौधायन वृत्ति की पुस्तक स्वामी के साथ थी। किन्तु शारदापीठ के पंडितों ने द्वेष कर के रात को डांका डाला और वह पुस्तक लूट ले गए। स्वामी को इस से बड़ा दुःख हुआ। तब कुरेश ने कहा कि आप इतना दुःख क्यों सहते हैं। एक वार मैं ने आद्योपान्त उस पुस्तक को देखा है, इस से उस के प्रति अक्षर मुझ को कंठाग्र हैं। मैं सब आप को लिख दूंगा। तदनुसार एक श्रतिधर कूरेशन ने बौधायन सूत्र वृत्ति सब स्वामी को लिख दी। इसी वृत्ति के अनुसार स्वामी ने वेदांत सूत्र पर श्रीभाष्य वेदान्तदीप, वेदान्तसार, वेदार्थसंग्रह, और गीताभाष्यादि ग्रन्थ बनाए।

इन ग्रन्थों के बनाने के पीछे बहुत से शिष्य को साथ लेकर स्वामी दिग्विजय करने निकले। क्रम से चोलमंडल, पांड्यमंडल कुरुक इत्यादि देशों में जाकर वहां के पंडितों को शास्त्रार्थ में जीत कर उन को वैष्णव धर्म्म से दीक्षित किया और कुरंगदेश के राजा को दीक्षित करके केरल देश के पंडितों को जीता। वहां से क्रम से द्वारिका, मथुरा, शालिग्राम, काशी, अयोध्या, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य और श्रीवृन्दावन आदि तीर्थों में होते हुए फिर से शारदापीठ गए। वहां सरस्वती ने प्रत्यक्ष होकर "कप्यास" इस श्रति का तात्पर्य्य पूछा। स्वामी ने जो अर्थ कहा इस से प्रसन्न होकर सरस्वती ने श्री भाष्य अपने सिर पर चढ़ाकर स्वामी को दिया और उन का दोनों हाथ पकड़ कर "भाष्यकार" नाम से पुकारा। इस के अनन्तर स्वामी ने वहां के पंडितों को शास्त्रार्थ में

पराजित करके पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन किया। वहां जाकर देखा कि बौद्ध और कापालिक लोग पुरुषोत्तम की सेवा में नियुक्त हैं। स्वामी ने उन को जीतकर वैष्णवगण को सेवा में नियुक्त किया और वहां रामानुज मठ बना कर रहने लगे। स्वामी की इच्छा थी कि पंचरात्र के विधि से जगन्नाथ जी की सेवा हो परन्तु पंडे लोग अपने मन से सब काम करते थे और श्री जगन्नाथ जी भी इसी से प्रसन्न थे। क्योंकि जब स्वामी ने इस बात में आग्रह किया, तो एक रात देवगण ने स्वामी को सोते हुए उठा कर कूर्म्मक्षेत्र में रख दिया। जाग कर स्वामी ने यह चरित्र देखा और भगवदिच्छा मुख्य समझ कर फिर इस विषय में आग्रह न किया।

कुछ दिन कूर्माचल रहकर स्वामी सिंहाचल, अहोबलक्षेत्र, गरुड़ाचलादि तीर्थों में गए और वहां से फिर वेंकटगिरि जाकर वहां के शैवों को शास्त्रार्थ में परास्त किया।

कुछ काल पीछे कुरेश को व्यास पराशर के अंश के दो पुत्र एक साथ उत्पन्न हुए। स्वामी ने एक का नाम पराशर और दूसरे का व्यास वा श्री रामदेशिक रक्खा। इन्हीं पराशर को रंगेश ने अपुत्र होने के कारण गोद लेकर बड़े धूमधाम से विवाह किया था। गोविन्द को भी कालान्तर में पुत्र हुआ, तो स्वामी ने परांकुश उस का नाम रक्खा।

मथुरा के एक धनिक धनुर्दास को उस की भार्या हेमांगना समेत स्वामी ने वैष्णव दीक्षा दी। यह धनुर्दास ऐसा उत्तम वैष्णव हुआ है कि रंगनाथ जी के उत्सव में स्वामी एक बार उस को मित्र

की भांति पकड़े हुए थे और इस पर जब लोगों ने पूछा तो स्वामी ने उस की वैष्णवता की बड़ी स्तुति की।

उसी समय में चोलदेश का एक बड़ा भारी शैव राजा क्रिमिकंठ हुआ था जिस ने चित्रकूट तक विजय किया था। इस ने एक बार शास्त्रार्थ के हेतु प्रार्थनापूर्वक स्वामी को बुलाया। स्वामी उस के यहां जाते थे कि मार्ग में चेलाचलाम्बा और उस के पति को दीक्षित किया। और बहुत से बौद्धों को शास्त्रार्थ में जय किया। इसी प्रकार कुछ दिन भक्तनगर में रहे। वहां स्वप्न देखने से इन्हों नें यादवाचल जाकर वहां छिपी हुई भगवन्मूर्त्ति को निकाला और शके १०१२ में उस मूर्त्ति को यादवाचल में प्रतिष्ठित किया।

एक बार स्वामी को खबर मिली कि दिल्ली के राजा के घर में रामप्रिय नामक एक नारायण की मूर्त्ति है। स्वामी यह सुन कर दिल्ली गए और वहां कुछ दिन रह कर राजा से वह मूर्त्ति ले आए। कहते हैं कि दिल्ली के राजा की बेटी उस भगवद्विग्रह पर ऐसी आसक्त थी कि भक्ति प्रभाव से आज तक नारायण की मूर्त्ति उस के पास तथा यादवाचल में वर्त्तमान है।

इस के पीछे विष्णुचित्त की बेटी गोदा को स्वामी ने उपदेश दिया। इन के ७४ शिष्य बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इन में भी आंध्रपर्ण की बड़ी महिमा है।

इस प्रकार स्वामी रामानुज आचार्य्य एक सौ बीस वर्ष पृथ्वी पर रहे और चारो ओर वैष्णव संप्रदाय का प्रचार करके सब शिष्यों को भगवद्भक्ति का उपदेश करके माघ सुदी १० को परम धाम पधारे। इनके पीछे रंगनाथ जी के मन्दिर का अधिकार परा-

शर को मिला और दाशरथि, पूर्णाचार्य, गोविन्द और कुरुक ये चार मत शाखा प्रवर्तक हुए।

इस संप्रदाय के मुख्य बड़े बड़े लोग शठकोपाचार्य्य, रंगेश, वेंकटेश, वरद, वकुलाभरण, सुन्दर, यामुनाचार्य, वररंग, पूर्णाचार्य, गोष्ठीपूर्ण, मासभद्र, माधवदास, कासार, भक्तिसार, फणिकृष्ण, कुलशेखर, भट्टनाथ, पद्मराज और अनन्ताचार्य आदिक हैं।

दानपत्रादिकों से और दक्षिण राजाओं के घर के लेखों से निश्चय होता है कि ईस्वी सन् १०१० वा इसके आस पास किसी संवत् में स्वामी का जन्म हुआ था और द्वादश शताब्दी के परे परे भोग में ये वर्त्तमान थे।

इनका मत विशिष्टाद्वैत है और उपास्यदेव साकार ब्रह्मनारायण हैं। ये भुजा पर तप्त शंख चक्र की छाप देते हैं। हिन्दुस्तान के सब प्रान्त में इस मत के लोग मिलते हैं। और बहुत बड़े बड़े पंडित इस मत में हुए हैं। बड़गल और तिङ्गल ये दो शाखा इस मत की बहुत प्रसिद्ध हैं पीछे तो रामानन्द आदि अनेक शाखा इस की हुई हैं। इनके संप्रदाय के वैष्णव श्री वैष्णव कहलाते हैं।

—:*:—

श्रीशंकराचार्य्य का जीवन चरित्र।

इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम्।
वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम्॥

धन्य वह ईश्वर है जो अपनी सृष्टि में अनेक अद्भुत शक्ति के मनुष्यों को उत्पन्न करता है और उनके द्वारा लोगों की पहिली

चाल चलन को बदल देता है। फिर कुछ काल के अनन्तर दूसरे को उत्पन्न करता हुआ उस से भी वैसा ही कराता है, इसी प्रकार से अपने सृष्टिक्रम को निरन्तर चलाता है।

देखो कुछ न्यूनाधिक ११०० वर्ष हुए इस सारे भारतवर्ष में बौद्धमत फैल गया था और लोग उसी मत पर चलते थे और जो उस मत को स्वीकार करने में अप्रसन्न थे उन को अनेक प्रकार के क्लेश सहने पड़ते थे। प्रायः कन्याकुमारी अन्तरीप से चीन देश तक और ब्रह्मा के देश से ईरान तक जहां देखो बौद्धमत के मनुष्य देख पड़ते थे। फाहियान और ह्वानसांग जो चीन देश से यात्रा के लिये यहां आए थे और जिन के सं० ३९९ और ६४० ईस्वी निश्चित किये गए हैं, अपने ग्रन्थ में उस समय का भारतवर्ष का वृत्तान्त लिखते हैं कि बौद्धधर्म की बड़ी उन्नति है, राजाओं ने बौद्ध भिक्षुकों को गांव बाग़ घर विहार बनाने के लिये दे दिये हैं और उन में श्रमण लोग सुख से बास करते हैं, मांस खाने का बड़ा निषेध किया गया है, कोई यज्ञ योग करने नहीं पाते, न देवी के सामने बलिदान कर सकते हैं, और पटने में जिसे पाटलिपुत्र भी कहते हैं शाक्यमुनि बुद्ध का बड़ा उत्सव होता है, और प्रायः बड़े बड़े नगरों में स्तूप * और बिहार देख पड़ते हैं।

---

* "गोरखपुर दर्पण" में एक लेख यों लिखा है :—

भागलपुर के निकट १ पत्थर की लाट है जिस पर पुराने अक्षर खुदे हुए हैं। उन अक्षरों को प्रिन्सिप साहिब ने बनारस में पढ़ा था। साहिया गांव परगने सलेमपुर मंझौली में है। वहां एक पुराना मन्दिर है जिस के बीच एक बुद्ध की मूर्त्ति वर्त्तमान है और कहांव जो सलेमपुर से ६ मील पाश्चिम है इस गांव में एक लाट २४ फुट ऊंची

ह्वात्सांग लिखता है कि बौद्धमत केवल भारतवर्ष ही में फैला न था परन्तु तूरान और काबुल में भी सौ से अधिक विहार बने थे और उन दिनों में गज़नी काबुल इत्यादि पश्चिम के देश इसी भारतवर्ष के राजाओं के अधीन थे। सब मिल के ८० राजा गिने जाते थे। जालन्धर से गङ्गासागर तक और हिमालय से महानदी तक देश कन्नौज के बौद्ध राज हर्षवर्धन के अधीन थे और मगध देश में बौद्ध राजा राज करते थे।

गड़ी है और उस पर ६ फुट लम्बे १६ कोने के कलश पर १ बुद्ध की मूर्त्ति स्थापित है। उस पर जो पुराने अक्षर अंकित हैं उन का उल्था नीचे लिखा जाता है।

> मूल—यस्योपस्थाननूमिर्नृपतिशतशिरः पातवातावधूता।
> गुप्तानां वंशजस्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धेः॥
> राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिपशतपतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्तेः।
> वर्षे त्रिंशद्दशैकोत्तरकशततमे ज्येष्ठमासि प्रपन्ने॥ १ ॥
>
> ख्यातेऽस्मिन् ग्रामरत्ने ककुभ इति जनैस्साधुसंसर्गपूते।
> पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुरगुणनिधेर्भट्टिसोमो महार्थः॥
> तस्सूनू रुद्रसोमः पृथुलमतियशा व्याघ्र इत्यन्यसंज्ञा।
> मद्रस्तस्यात्मजोऽभूद्द्विज गुरुयतिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः॥ २ ॥
>
> पुण्यस्कंधं स चक्रे जगदिदमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो।
> श्रेयोर्थं भूतभूत्यै पथि नियमवतामर्हतामादिकर्त्तॄन्॥
> पञ्चेन्द्रान्स्थापयित्वा धरणिधरमयान्सन्निखातस्ततोऽयं।
> शैलस्तम्भः सुचारु गिरिवर शिखराग्रोपमः कीर्त्तिकर्त्ता॥ ३ ॥

उल्था—राजा स्कन्धगुप्त जिस के प्रस्थान के समय अर्थात् जब वह अपने मन्दिर से बाहर निकलता था सैंकड़ों राजाओं के सिर के मुकुट उस के चरणों पर झुकते थे। बड़ा यशस्वी और प्रचुर रत्न से युक्त था। उस के स्वर्ग वास करने से २२१ बर्ष के

को उन्हों ने शास्त्रार्थ में जीत लिया और उन सब को अपना शिष्य किया।

तब आचार्य जी काशी में गये और मध्यान्ह के समय मणिकर्णिका पर स्नान करते थे इतने में श्रीव्यास जी बूढ़े ब्राह्मण का भेष लेकर वहां आये और शंकराचार्य से पूछा कि मैं ने सुना है कि आप ने ब्रह्मसूत्र में बहुत परिश्रम किया है। आचार्य ने उत्तर दिया, हां, जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां पूछो। व्यास जी ने एक स्थल में पूछा, आचार्य जी ने उस का यथार्थ उत्तर दिया। इस पर व्यास जी फिर कुछ विवाद करने लगे, आचार्य जी को क्रोध आया और अपने पद्मपाद नामक शिष्य से कहा कि इस बूढ़े ब्राह्मण को बाहर निकाल दो, तब शिष्य ने यह श्लोक पढ़ा।

शङ्करः शङ्करः साक्षात्व्यासो नारायणः स्वयम् ।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते किङ्करः किङ्करिष्यति ॥

आचार्य जी ने यह सुन कर कहा जो सचमुच यह बूढ़ा ब्राह्मण व्यास होगा, तो अवश्य हमारे उत्तर पर संतुष्ट हो के प्रत्यक्ष दर्शन देगा। व्यास जी यह सुन कर आप प्रत्यक्ष हुए और आचार्य जी से कहा कि मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के वास्ते आया था। तुम तो शिव के अवतार हो तुम को कौन जीतने वाला है। फिर व्यास ने आचार्य को बर दिया और ब्रह्मा को बुला कर इन की आयु बढ़ा दी, तब से आचार्य का प्रताप द्विगुणित बढ़ गया। कुछ समय के अनंतर आचार्य जी रुद्रपुर में गए। वहां भट्टपाद जिसे कुमारिल कहते हैं और जिस ने मीमांसातन्त्रवार्तिक नामक एक बड़ा भारी ग्रन्थ बनाया है तुषाग्नि में बैठा था। आचार्य जी ने उस से भेट

करके बाद भिक्षा मांगी, परन्तु भट्टपाद ने कहा कि मैं अब शरीर दग्ध होने के कारण तुम्हारे साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूं। मेरा बहनोई मंडनमिश्र जो हस्तिनापुर से आग्नेय दिशा में विजिलबिंदु नाम नगर में रहता है तुम से शास्त्रार्थ करेगा और उस से तुम्हारा गर्व शांत हो जायगा।

आचार्य जी यह वचन सुन कर वहां गये और लोगों से मंडन-मिश्र के घर का ठिकाना पूछा। लोगों ने उत्तर दिया कि जहां तोते और मैंने शास्त्रार्थ करते हैं वहीं मंडनमिश्र का घर है। शंकराचार्य जी ने सोचा कि जो मैं दर्वाजे से जाता हूं तो मुझे बहुत काल लगेगा, इस लिये मंत्र के बल से आकाशमार्ग से उस के घर में उतरे। कोई कहते हैं कि उस के घर के पीछे एक लंबा ताड़ का पेड़ था उस पर चढ़ कर घर में गये। उस समय मंडनमिश्र श्राद्ध करता था। इन को देखते ही बहुत क्रुद्ध हो गया क्योंकि ये सन्यासी थे और उस ने सन्यास का खंडन किया था और कहा, "कुतो मुण्डो" आचार्य जी ने उत्तर दिया, "आगलान्मुण्डी", मंडन ने कहा—"सुरापोता" शंकर जी ने कहा—"साहिश्वेना" इत्यादि दोनों के संवाद हुए। मिश्र जी श्राद्ध समाप्त करने के अनन्तर आचार्य से शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त हुए और उस की स्त्री सरसवाणी जिसे सरस्वती का साक्षात् अवतार कहते थे मध्यस्थ हुई। दोनों से सौ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में मण्डनमिश्र का पराजय हुआ। और सन्यासाश्रम को स्वीकार किया। पुराण में मंडनमिश्र को ब्रह्मा का अवतार लिखा है।

जब मंडनमिश्र सन्यास लेने लगे उस के पहिले ही सरसबाणी अपना पूर्व शरीर छोड़ कर ब्रह्मलोक को जाने लगी। शंकराचार्य ने वनदुर्गा मंत्र से उस को आकर्षण किया और कहा कि मुझ से शास्त्रार्थ करके चली जाओ। उस ने कहा कि मैं ने बैधव्य के भय से अपने पति के सन्यास के पहले ही पृथ्वी को त्याग किया। अब पृथ्वी पर नहीं आ सकती। क्योंकर तुम से शास्त्रार्थ करूं। आचार्य ने उत्तर दिया कि आकाश में भूमि से छः हाथ दूरी पर खड़ी होके मुझ से शास्त्रार्थ कर। उस ने आचार्य के कहने के अनुसार शास्त्रार्थ किया अन्त में हार गई, तब उस ने सोचा कि यह सन्यासी है इस को काम शास्त्र नहीं आता होगा इस में जो इसे पूछेंगे तो उत्तर नहीं दे सकेगा। फिर सरसबाणी ने कहा कि काम शास्त्र में विवाद करो शंकराचार्य्य इस वचन को सुन कर चुप हो गए और कहा कि छः महीने के अनन्तर तुम से इसी शास्त्र में विवाद करूंगा।

तब शंकराचार्य्य अमृतपुर में गए। वहां का राजा मर गया था। इस का नाम अमरु करके प्रसिद्ध था। उस का शरीर जलाने के लिये चिता पर रक्खा था इतने में शंकराचार्य ने अपने शरीर से प्राण निकाल कर परकायप्रवेश विद्या के बल से उस राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया और शिष्यों ने आचार्य का शरीर एक पहाड़ की गुफा में रक्खा। कहीं लिखा है इस राजा की सौ रानी थीं उन में जो बड़ी थी उस ने देखा कि इस पति की चेष्टा पहले ऐसी नहीं है केवल पहला शरीर मात्र वही है और इस की आत्मा किसी योगी की जान पड़ती है नहीं तो इतना चातुर्य इस में कहां से होता। रानी ने आज्ञा दी कि जहां कहीं मृत शरीर मिले उसी जग

उस को जला दो। राजदूतों ने आचार्य का शरीर गुफा में पाया और उस को जलाने के लिये चिता पर रक्खा और आग लगा दी। आचार्य के शिष्यों ने देख कर राजा की स्तुति की। उस का अभिप्राय यही था कि राजा, तू शंकराचार्य्य है दूसरा कोई नहीं उसी क्षण राजा के शरीर से प्राण ने निकल कर उस चिता पर रक्खे हुए शरीर में प्रवेश किया और अग्नि शान्त होने के लिये नृसिंह की स्तुति की। नृसिंह ने प्रसन्न हो के वर दिया। वहां से सरस्वती के पास आये, और उस को जीत लिया और उस को साथ लेकर शृंगपुर में आये जिस को अब शृंगेरी कहते हैं और जो तुंगभद्रा के तीर पर है उसी स्थल पर सरस्वती की स्थापना की और भारति संप्रदाय की शिष्य परम्परा करने की रीति स्थापन की।

शंकराचार्य्य की गुरुपरम्परा इस प्रकार से लिखी है। पहिले नारायण, फिर ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौड़पाद गोविन्द, योगिन्द्र, श्री शंकाराचार्य्य इन के १२ मुख्य शिष्य हुए उन के नाम पहिले लिख आये हैं।

शृंगेरी में १२ बरस रह कर कांचीपुर में गये। वहां कामाक्षी देवी की स्थापना की और कांची का नगर बसाया और विष्णुकांचि में वरदराज विष्णु का और शिवकांची में शिव का मन्दिर बनवाया और अवताम्रपर्णी नदी के तीर पर रहने वाले लोगों को शिष्य किया। प्रायः सब भारतवर्ष में इन की शिष्यशाखा फैली॥

श्री शंकराचार्य्य जी ने व्यास सूत्र पर अद्वैत भाष्य और दस महोपनिषदों और गीता पर भी भाष्य बनाये और कई एक ग्रन्थ बनाये हैं वे सब अब तक मिलते हैं. इनका मत यह था कि इस

प्रपञ्च में ब्रह्म को छोड़ कर जो कुछ दिखाई देता है सब मिथ्या है, सब ब्रह्म रूप है, और ईश्वर और जीव एक ही है इत्यादि उन के ग्रन्थों को देखने से जान पड़ता है। इसी लिये किसी मत को जिस में ईश्वर की सत्ता मानी जाती है सर्वथा खंडन नहीं किया। नास्तिक मत को छोड़ कर सब मतों को स्थापन किया और ३२ बरस के बय में परलोक को चले गये। शक्ति संगम तंत्रादिक ग्रन्थों में तो १६ ही वर्ष लिखे हैं परन्तु शंकर विजयादि ग्रन्थों से ज्ञात हुआ कि जो ऊपर संख्या लिखी है ठीक है क्योंकि इतना कृत्य इतने थोड़े समय में नहीं हो सकता। इन की कीर्ति अब तक इस भारत वर्ष में चली जाती है और प्रायः यहां के लोग भी इसी मत पर चलते हैं॥

मैं ने शंकराचार्य्य का जीवनवृतान्त बहुत संक्षेप से लिखा है यदि इस में कहीं शीघ्रता के हेतु भूल हो तो पढ़ने वाले उस पर क्षमा करें क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि भ्रांति पुरुष का धर्म है॥

महा कवि श्री जयदेव जी का जीवनचरित्र।

जयदेव जी की कविता का अमृत पान करके तृप्त, चकित, मोहित और घूर्णित कौन नहीं होता और किस देश में कौन सा ऐसा विद्वान है जो कुछ भी संस्कृत जानता हो और जयदेव जी की काव्य माधुरी का प्रेमी न हो। जयदेव जी का यह अभिमान कि अंगूर और ऊख की मिठास उन की कविता के आगे फीकी है बहुत सत्य है। इस मिठाई को न पुरानी होने का भय है न चींटी का डर है, मिठाई है, पर नमकीन है यह नई बात है। सुनने पढ़ने की बात है पर गूंगे का गुड़ है। निर्जन में जंगल पहाड़ में

जहां बैठने को बिछौना भी न हो वहां गीतगोबिन्द सब आनन्द,सामग्री देता है, और जहां कोई मित्र-रसिक भक्त-प्रेमी न हो वहां यह सब कुछ बन कर साथ रहता है। जहां गीतगोबिन्द है वहीं वैष्णव गोष्ठी है, वहीं रसिक समाज है, वहीं वृन्दावन है, वहीं प्रेमसरोवर है, वहीं भाव समुद्र है, वहीं गोलोक है और वहीं प्रत्यक्ष ब्रह्मानन्द है। पर यह भी कोई जानता है कि इस परब्रह्म रस प्रेम सर्वस्व शृङ्गार समुद्र के जनक जयदेव जी कहां हुए? कोई नहीं जानता और न इस की खोज करता। प्रोफ़ेसर लैसेन ने लैटिनभाषा में और पूना के प्रिन्सिपल आरनल्ड साहब ने अङ्गरेज़ी में गीतगोविन्द का अनुवाद किया, परन्तु कवि का जीवनचरित्र कुछ न लिखा। केवल इतना ही लिख दिया कि सन् ११५० के लगभग जयदेव उत्पन्न हुए थे। किन्तु धन्य हैं बाबू रजनीकान्त गुप्त कि जिन्हों ने पहिले पहल इस विषय में हाथ डाला और "जयदेवचरित्र" नामक एक छोटा सा ग्रन्थ इस विषय पर लिखा। यद्यपि समयनिर्णय में और जीवनचरित्र में हमारे उन के मत में अनेक अनैक्य है तथापि उन के ग्रन्थ से हम को अनेक सहायता मिली है, यह मुक्त कण्ठ से स्वीकार करना होगा। और इस में कोई संशय नहीं कि उन्हीं के ग्रन्थ ने हमारी रुचि को इस विषय के लिखने पर प्रबल किया है।

बीरभूमि से प्राय: दस कोस दक्षिण * अजयनद के उत्तर

---

* अजयनद भागीरथी का करद है। यह भागलपुर जिला के दक्षिण में निकल कर सौंताल परगने के दक्षिण भाग दक्षिण की ओर और फिर बर्द्धमान और बीरभूमि के ज़िले के बीच में से पश्चिम की ओर बह कर कटवा के पास भागीरथी से मिला है। (ज० च० बंगदेश विवरन)।

किन्दुविल्व * गांव में श्रीजयदेव जी ने जन्म ग्रहण किया था।

संभव है कि कन्नौज से आए हुए ब्राह्मणों में से जयदेव जी का वंश भी हो। इन के पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रामादेवी था †। इन्हों ने किस समय अपने आविर्भाव से धरातल को भूषित किया था यह अब तक नहीं हुआ। श्रीयुक्त सनातन गोस्वामि ने लिखा है कि बंगाधिपति महाराज लक्ष्मणसेन की सभा में जयदेव जी विद्यमान थे। अनेक लोगों का यही मत है और इस मत को पोषण करने को लोग कहते हैं कि लक्ष्मणसेन के द्वार पर एक पत्थर खुदा हुआ लगा था, जिस पर यह श्लोक लिखा हुआ था "गोवर्द्धनश्चशरणो जयदेव उमापतिः। कविराजश्चरत्नानि समितौ लक्ष्मनस्यच॥"

श्रीसनातन गोस्वामि के इस लेख पर अब तीन बातों का निर्णय करना आवश्यक हुआ। प्रथम यह कि लक्ष्मणसेन का काल क्या है। दूसरे यह कि यह लक्ष्मणसेन वही है जो बंगाले का प्रसिद्ध लक्ष्मणसेन है कि दूसरा है। तीसरे यह कि यह बात श्रद्धेय है कि नहीं कि जयदेव जी लक्ष्मणसेन की सभा में थे।

---

* किन्दुविल्व बीरभूमि के मुख्य नगर सूरी से नौ कोस है। यहां श्रीराधा दामोदर जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। वैष्णवों का यह भी एक पवित्र क्षेत्र है।

† बम्बई की छपी हुई पुस्तक में राधा देवी जो इन की माता का नाम लिखा है वह असङ्गत है। हां, वामादेवी और रामादेवी यह दोनों पाठ अनेक हस्त लिखित पुस्तकों में मिलते हैं। बंगला में र और व में केवल एक विन्दु के भेद होने के कारण यह भ्रम उपस्थित हुआ है।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक मिरहाजिउद्दीन ने नबकाते नासरी में लिखा है कि जब बख्तियार खिलजी ने बंगाला फतह किया तब लछमनिया नाम का राजा बंगाले में राज करता था। इन के मत से लछमनिया बंगदेश का अन्तिम राजा था। किन्तु बंगदेश के इतिहास से स्पष्ट है कि लछमिनिया नाम का कोई भी राजा बंगाले में नहीं हुआ। लोग अनुमान करते हैं कि बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के माधव सेन और केशवसेन "लाक्ष्मनेय" इस शब्द के अपभ्रंश से लछमनिया लिखा है।

राजशाही के ज़िले से मेटकाफ साहब को एक पत्थर पर खोदी हुई प्रशस्ति मिली है। यह प्रशस्ति विजयसेन राजा के समय में प्रद्युम्नेश्वर महादेव के मंदिर निर्म्माण के वर्णन में उमापति धर की बनाई हुई है। डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र के मत से इस की संस्कृत की रचना प्रणाली नवम वा दशम वा एकादश शताब्दी की है। शोच की बात है कि इस प्रशस्ति में संवत् नहीं दिया है, नहीं तो जयदेव जी के समय निरूपण में इतनी कठिनाई न पड़ती। इस में हेमन्तसेन, सुमन्तसेन और बीरसेन यही तीन नाम बिजयसेन के पूर्वपुरुषों के दिये हैं, जिस से प्रगट होता है कि बीरसेन ही वंशस्थापनकर्त्ता है। विजयसेन के विषय में यह लिखा है कि उस ने कामरूप और कुरुमण्डल [मद्रास और पुरी के बीच का देश] जय किया था और पश्चिम जय करने को नौका पर गङ्गा के तट में सेना भेजी थी। तवारीखों में इन राजाओं का नाम कहीं नहीं है। कहते हैं आईनेअकबरी का सुखसेन (बल्लालसेन का पिता) विजयसेन का नामान्तर है, क्योंकि

बाकरगंज की प्रस्तरलिपि में जो चार नाम हैं वे बिजयसेन, बल्लालसेन, लक्ष्मणसेन और केशवसेन इस क्रम से हैं। बल्लालसेन बड़ा पण्डित था और दानसागर और वेदार्थ स्मृति संग्रह इत्यादि ग्रन्थ उस के कारण बने। कुलीनों की प्रथा भी बल्लालसेन की स्थापित है। उस के पुत्र लक्ष्मणसेन के काल में भी संस्कृतविद्या की बड़ी उन्नति थी। भट्ट नारायण (वेणी संहार के कवि) के वंश में धनञ्जय के पुत्र हलायुध पण्डित उस के दानाध्यक्ष थे, जिन्हों ने ब्राह्मण सर्वस्व बनाया और इन के दूसरे भाई पशुपति भी बड़े स्मार्त आन्हिककार थे। कहते हैं कि गौड़ का नगर बल्लालसेन ने बसाया था, परन्तु लक्ष्मणसेन के काल से उस का नाम लक्ष्मणावती (लखनौती) हुआ। लक्ष्मणसेन के पुत्र माधवसेन और केशवसेन थे। राजावली में इन के पीछे सुसेन वा शूरसेन और लिखा है और मुसलमान लेखकों ने नौजीव (नवद्वीप ?) नारायण लखमन और लखमनिया ये चार नाम और लिखे हैं वरञ्च एक अशोकसेन भी लिखा है, किन्तु इन सबों का ठीक पता नहीं। मुसलमानों के मत से लखमनियां अन्तिम राजा है, जिस ने ८० बरस राज्य किया और बख़्तियार के काल में जिस ने राज्य छोड़ा। यह गर्भ ही से राजा था। तो नाम का क्रम बीरसेन से लछमनियां तक एक प्रकार ठीक हो गया, किन्तु इन का समय निर्णय अब भी न हुआ, क्योंकि किसी दानपत्र में संवत् नहीं है। दानसागर के बनने का समय समय प्रकाश के अनुसार १०१९ शके (१०९७ ई०) है इस से बल्लालसेन का राजत्व ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक अनुमान होता है और यह आईनेअकबरी के समय

से भी मेल खाता है। बल्लालसेन ने १०६६ में राज्य आरम्भ किया था। तो अब सेनवंश का क्रम यों लिखा जा सकता है।

बीरसेन	...	...	...	...	...
सामन्तसेन	...	...	...	...	...
हेमन्तसेन	...	...	...	...	...
विजयसेन वा सुखसेन	...		...	...	...
बल्लालसेन	...	...	...	...	१०६६
लक्ष्मणसेन	...	...	...	...	११०१
माधवसेन	...	...	...	...	११२१
केशवसेन	...	...	...	...	११२२
लछमनिया	...	...	...	...	११२३

बल्लालसेन का समय १०६६ ई० समय प्रकाश के अनुसार है। यदि इस को प्रमाण न मानैं और फारसी लेखकों के अनुसार लछमनियां के पहले नारायण इत्यादि और राजाओं को भी मानैं तो बल्लालसेन और भी पीछे जा पड़ैंगे। तो अब जयदेव जी लक्ष्मणसेन की सभा में थे कि नहीं यह विचारना चाहिए। हमारी बुद्धि से नहीं थे। इस के कई दृढ़ प्रमाण हैं। प्रथम तो यह कि उमापतिधर जिस ने विजयसेन की प्रशस्ति बनाई है वह जयदेव जी का सम सामयिक था, तो यदि यह मान लें कि जयदेव उमापति गोवर्द्धनादिक सब सौ बरस से विशेष जिए हैं तब यह हो सकता है कि ये विजयसेन और लक्ष्मण दोनों की सभा में थे। दूसरे चन्द कवि ने जिस का जन्म ११५० सन् के पास है अपने

रायसा में प्राचीन कवियों की गणना में जयदेव को लिखा है*
तो सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हुए बिना जयदेव जी की कविता का
चंद के समय तक जगत् में आदरणीय होना असम्भव है।
गोवर्द्धन ने अपनी सप्तशती में "सेन कुल तिलक भूपति" इतना
ही लिखा, नाम कुछ न दिया, किन्तु उस की टीका में "प्रबरसेन
नामा इति" लिखा है। अब यदि प्रबरसेन, हेमन्तसेन या बिजय-
सेन का नामान्तर मान लिया जाय और यह भी मान लिया जाय
कि जयदेव जी की कविता बहुत जल्दी संसार में फैल गई थी
और समय प्रकाश का बल्लाल का समय भी प्रमाण किया जाय
तो यह अनुमान हो सकता है कि बिजयसेन के समय में वा उस
से कुछ ही पूर्व सन् १०२५ से १०५० तक में किसी वर्ष में जयदेव
जी का प्राकट्य है और ऐसा ही मानने से अनेक विद्वानों की एक

---

*भुजंगप्रयात—प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहंनं। जिनें नाम एकं अनेकं कहंनं ॥
दुती लम्भयं देवतं जीवतेसं। जिनें विश्वराख्यौ बलीमंत्र सेसं ॥
चवं वेद बंभं हरी किति भाषी। जिनें श्रम्म साश्रम्म संसार साषी ॥
तृती भारती व्यास भारत्थ भाष्यौ। जिनें उत्त पारत्थ सारत्थ साष्यौ ॥
चवं सुक्खदेवं परीषत्त पायं। जिनें उद्धर्‌यौ श्रब्ब कुर्वंस रायं ॥
नरं रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं। नलैराय कंठं दिने पद्ध हारं ॥
छटं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं। जिनें बागवानी सुबानी सुबद्धं ॥
कियो कालिका मुक्ख वासं सुसुद्धं। जिनें सेत बंध्योति भोज प्रबंद्धं ॥
सतं डंडमाली उलाली कवित्तं। जिनैं बुद्धि तारंग गांगा सरित्तं ॥
जयद्देव अट्ठं कवी कब्बिरायं। जिनैं केवलं किति गोविंद गायं ॥
गुरं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी। जिनैं दर्सियं देवि सा श्रंग हब्बी ॥
कवी किति किति उकत्ती सुदिक्खो। तिनैं कोउ चिष्टोकवीचंद भक्खी ॥

वाक्यता भी होती है। यहां पर समय विषयक जटिल और नीरस निर्णय जो बंगला और अङ्गरेज़ी ग्रन्थों में है वह न लिख कर सार लिख दिया है। इस से "जयदेव चरित" इत्यादि बंगला ग्रन्थों में जो जयदेव जी का समय तेरहवीं वा चौदहवीं शताब्दी लिखा है वह अप्रमाण होकर यह निश्चय हुआ कि जयदेव जी ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में उत्पन्न हुए हैं।

जयदेव जी की बाल्यावस्था का सविशेष वर्णन कुछ नहीं मिलता। अत्यन्त छोटी अवस्था में यह मातृपितृविहीन हो गए थे यह अनुमान होता है। क्योंकि विष्णुस्वामि चरितामृत के अनुसार श्री पुरुषोत्तमक्षेत्र में इन्हों ने उसी सम्प्रदाय के किसी पण्डित से पढ़ी थी। इन के विवाह का वर्णन और भी अद्भुत है। एक ब्राह्मण ने अनपत्य होने के कारण जगन्नाथ देव की बड़ी आराधना कर के एक कन्या रत्न लाभ किया था। इस कन्या का नाम पद्मावती था। जब यह कन्या विवाह योग्य हुई तो जगन्नाथ जी ने स्वप्न में उस के पिता को आज्ञा किया कि हमारा भक्त जयदेव नामक एक ब्राह्मण अमुक वृक्ष के नीचे निवास करता है, उस को तुम अपनी कन्या दो। ब्राह्मण कन्या को लेकर जयदेव जी के पास गया। यद्यपि जयदेव जी ने अपनी अनिच्छा प्रकाश किया तथापि देवादेशानुसार ब्राह्मण उस कन्या को उन के पास छोड़ कर चला आया। जयदेव जी ने जब उस कन्या से पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है तो पद्मावती ने उत्तर दिया कि आज तक हम पिता को आज्ञा में थे, अब आप की दासी हैं। ग्रहण कीजिए वा परित्याग कीजिए, मैं आप का दासत्व

न छोड़ूंगी। जयदेव जी ने उस कन्या के मुख से यह सुन कर प्रसन्न हो कर उस का पाणिग्रहण किया। अनेक लोगों का मत है कि जयदेव जी ने पूर्व में एक विवाह किया था, उस स्त्री के मृत्यु के पीछे उदास होकर पुरुषोत्तमक्षेत्र में रहते थे। पद्मावती उन की दूसरी स्त्री थी। इन्हीं पद्मावती के समय, संसार में आदरणीय कविता रत्न का निकष गीतगोविन्द काव्य जयदेव जी ने बनाया।

गीतगोविन्द के सिवा जयदेव जी की और कोई कविता नहीं मिलती। प्रसन्नराघव पक्षधरी चन्द्रालोक और सीताविहार काव्य विदर्भ नगर वासी कौंडिन्य गोत्रोद्भव महादेव पण्डित के पुत्र दूसरे जयदेव जी के बनाए हैं, जिन का काव्य में पीयूषवर्ष और न्याय में पक्षधर उपनाम था, वरञ्च अनेक विद्वानों का मत है कि तीन जयदेव हुए हैं, यथा गीतगोविन्दकार, प्रसन्नराघवकार और चन्द्रालोककार, जिन का नामान्तर पीयूषवर्ष है।

पद्मावती के पाणिग्रहण के पीछे जयदेव जी अपने स्थापित इष्टदेव की सेवा निर्वाहार्थ द्रव्य एकत्र करने की इच्छा से वा तीर्थाटन और धर्म्मोपदेश की इच्छा से निज देश छोड़ कर बाहर निकले। श्रीवृन्दावन की यात्रा करके जयपुर वा जयनगर होते हुए जयदेव जी मार्ग में चले जाते थे कि डांकुओं ने धन के लोभ से उन पर आक्रमण किया और केवल धन ही नहीं लिया, वरञ्च उन के हाथ पैर भी काट लिए। कहते हैं कि किसी धार्मिक राजा के कुछ भृत्य लोग उसी मार्ग से जाते थे। उन लोगों ने जयदेव जी की यह दशा देखा और अपने राज्य में उन को उठा ले गए।

वहां औषध इत्यादि से कुछ इन का शरीर स्वस्थ हुआ। इसी अवसर में चोर भी उस नगर में आए और साधु वेश में उस नगर के राजा के यहां उतरे। तब राजा के घर में जयदेव जी का बड़ा मान था और दान धर्म सब इन्हीं के द्वारा होता था। जयदेव जी ने इन साधु वेशधारी चोरों को अच्छी तरह पहचान लिया और यदि वे चाहते तो भली भांति अपना बदला चुका लेते, परन्तु उन के सहज उदार और दयालु चित्त में इस बात का ध्यान तक न आया, वरञ्च दानादिक देकर उन का बड़ा आदर किया। बिदा के समय भी उन को बड़े सत्कार से अच्छी विदाई देकर बिदा किया और राजा के दो नौकर साथ कर दिये कि अपनी सरहद तक उन को पहुंचा आवें। मार्ग में राजा के अनुचर ने उन चोरों से पूछा कि इन साधू जी ने और लोगों से विशेष आप का आदर क्यों किया। इस पर उन चाण्डाल चोरों ने यह उत्तर दिया कि जयदेव जी पहिले एक राजा के यहां रहते थे, इन्हों ने कुछ ऐसा दुष्कर्म्म किया कि राजा ने हम लोगों को इन के प्राण हरने की आज्ञा दिया, किन्तु दया परवश हो कर हम लोगों ने इन के प्राण नहीं लिए, केवल हाथ पैर काट के छोड़ दिया। इसी बात के छिपाने के हेतु जयदेव ने हमलोगों का इतना आदर किया। कहते हैं कि मनुष्यों को आधारभूता पृथ्वी इस अनर्थ मिथ्याप्रवाद को न सह सकी और द्विधा विदीर्ण हो गई। वे चोर सब उसी पृथ्वीगर्त में डूब गए और परमेश्वर के अनुग्रह से जयदेव जी के भी हाथ पैर फिर से यथावत् हो गए। अनुचरों के द्वारा यह वृत्तान्त सुन कर और जयदेव जी से पूर्ववृत्त जान कर राजा अत्यन्त ही चमत्कृत

हुआ। आश्चर्य्य घटना अविश्वासी विद्वानों का मत है कि जयदेव जी ऐसे सहृदय थे कि उन के सहज स्वभाव पर रीझ कर लोगों ने यह गल्प कल्पित कर ली है।

तदनन्तर जयदेव जी ने अपनी पत्नी पद्मावती को भी वहीं बुला लिया। कहते हैं कि एक बेर उस राजा की रानी ने ईर्षा-वश पद्मावती की परीक्षा करने को उस से कह दिया कि जयदेव जी मर गए। उस समय जयदेव जी राजा के साथ कहीं बाहर गए थे। पतिप्राण पद्मावती ने यह सुनते ही प्राण परित्याग कर दिया। जब जयदेव जी आंए और उन्हों ने यह चरित देखा तो श्रीकृष्ण नाम सुना कर उस को पुनर्जीवन दिया, किन्तु उस ने उठ कर कहा कि अब आप हम को आज्ञा ही दीजिए, हमारा इसी में कल्याण है कि हम आप के सामने परमधाम जायं और तद्-नुसार उस ने फिर शरीर नहीं रक्खा। जयदेव जी इस से उदास होकर अपनी जन्मभूमि केंदुली ग्राम में चले आए और फिर यावत् जीवन वहीं रहे।

श्री जयदेव जी के गीतगोविंद के जोड़ पर गीतगिरीश नामक एक काव्य बना है, किन्तु जो बात इस में है वह उस में सपने में भी नहीं है।

गीतगोविंद के अनेक टीकाकार भी हुए हैं, यथा उदय जो खास गोबर्द्धनाचार्य का शिष्य था और जयदेव जी से भी कुछ पढ़ा था। एक टीका उस की बनाई है और पीछे से अनेक टीका बनी हैं। उदयन की टीका जयदेव जी के समय में बन चुकी थी

और इस में भी कोई सन्देह नहीं कि गीतगोविंद जयदेव जी के जीवन काल ही से सारे संसार में प्रचलित हो गया था। गीतगोविंद दक्षिण में बहुत गाया जाता है और बाला जी में सीढ़ियों पर द्राविड़ लिपि में खुदा हुआ है। श्री वल्लभाचार्य्य सम्प्रदाय में इस का विशेष भाव है, वरञ्च आचार्य्य के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ जी की इस के प्रथम अष्टपदी पर एक रसमय टीका भी बड़ी सुन्दर है, जिस में दशावतार का वर्णन शृङ्गार परत्व लगाया है। वैष्णवों में परिपाटी है कि अयोग्य स्थान पर गीतगोविंद नहीं गाते, क्योंकि उन का विस्वास है कि जहां गीतगोविंद गाया जाता है वहां अवश्य भगवान का प्रादुर्भाव होता है। इस पर वैष्णवों में एक आख्यायिका प्रचलित है। एक बुढ़िया को गीतगोविंद की "धीर समीरे यमुना तीरे" यह अष्टपदी याद थी। वह बुढ़िया गोबर्द्धन के नीचे किसी गांव में रहती थी। एक दिन वह बुढ़िया अपने बैंगन के खेत में पेड़ों को सींचती थी और अष्टपदी गाती थी, इस से ठाकुर जी उस के पीछे पीछे फिरे। श्रीनाथ जी के मन्दिर में तीसरे पहर को जब उत्थापन हुए तो श्री गोसाईं जी ने देखा कि श्रीनाथ जी का बागा फटा हुआ है और बैंगन के कांटे और मिट्टी लगी हुई है। इस पर जब पूछा गया तो उत्तर मिला कि अमुक बुढ़िया ने गीतगोविंद गाकर हम को बुलाया इस से कांटे लगे, क्योंकि वह गाती गाती जहां जहां जाती थी मैं उस के पीछे फिरता था। तब से यह आज्ञा गोसाईं जी ने वैष्णवों में प्रचार किया कि कुस्थान पर कोई गीतगोविंद न गावे।

किम्बदन्ती है कि जयदेव जो प्रति दिवस श्रीगङ्गा स्नान करने जाते थे। उन का यह श्रम देख कर गङ्गा जी ने कहा कि तुम इतनी दूर क्यों परिश्रम करते हो, हम तुम्हारे यहां आप आवैंगे। इसी से अजयनद नामक एक धार में गङ्गा अब तक केंदुली के नीचे वहती हैं।

जयदेव जी विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि सम्प्रदाय की मध्यावस्था में मुख्यत्व कर के इन का नाम लिया गया है। यथा—

विष्णुस्वामिसमारम्भां जयदेवादिमध्यगां। श्रीमद्वल्लभपर्य्यन्तांस्तुमोगुरुपरम्पराम् ॥१॥

जयदेव जी का पवित्र शरीर केंदुली ग्राम में समाधिस्थ है। यह समाधि मन्दिर सुन्दर लताओं से वेष्टित हो कर अपनी मनोहरता से अद्यापि जयदेव जी के सुन्दर चित्त का परिचय देता है।

"जयदेव जी नितान्त करुण हृदय और परम धार्म्मिक थे। भक्ति बिलसित महत्व छटा और अनुपम प्रीति व्यञ्जक उदार भाव यह दोनों उन के अन्तःकरण में निरन्तर प्रतिभासित होते थे। उन्हों ने अपने जीवन का अर्द्ध काल केवल उपासना और धर्म्मघोषना में व्यतीत किया। वैष्णव सम्प्रदाय में इन के ऐसे धार्म्मिक और सहृदय पुरुष विरले ही हुए हैं"।

जयदेव जी एक सत्कवि थे, इस में कोई सन्देह नहीं। यद्यपि कालिदास भवभूति भारवि इत्यादि से वह बढ़ कर कवि थे यह नहीं कह सकते, पर इन की अपेक्षा इन को सामान्य भी नहीं कह सकते। बङ्गभूमि में तो कोई ऐसा सत्कवि आज तक हुआ नहीं।

" ललितपद विन्यास और श्रवण मनोहर अनुप्रास छटा निबन्धन से जयदेव की रचना अत्यन्त ही चमत्कारिणी है। मधुर पद विन्यास में तो बड़े २ कवि भी इस से निस्सन्देह हारे हैं "।

जयदेव जी का प्रसिद्ध ग्रन्थ गीतगोविन्द बारह सर्गों में विभक्त है। जिस में पूर्व में श्लोक और फिर गीत क्रम से रक्खे हैं। इस ग्रन्थ में परस्पर विरह, दूती, मान, गुण कथन और नायक का अनुनय और तत्पश्चात् मिलन यह सब वर्णित है। जयदेव जी परम वैष्णव थे। इस से उन्हों ने जो कुछ वर्णन किया अत्यन्त प्रगाढ़ भक्ति पूर्ण हो कर वर्णन किया है। इन्हों ने इस काव्य में अपनी रसशालिनी रचना शक्ति और चित्तरञ्जक सद्भाव शालित्व का एक शेष प्रदर्शन दिया है। पण्डितवर ईश्वरचन्द्रविद्यासागर स्वप्रणीत संस्कृत विषयक प्रस्ताव में लिखते हैं " इस महाकाव्य गीतगोविन्द की रचना जैसी मधुर कोमल और मनोहर है उस तरह की दूसरी कविता संस्कृत-भाषा में बहुत अल्प है। वरञ्च ऐसे ललित पद विन्यास, श्रवन मनोहर, अनुप्रास छटा और प्रसाद गुण और कहीं नहीं है।" वास्तव में रचना विषय में गीतगोविन्द एक अपूर्व पदार्थ है। और तालमानों के चातुर्य्य से और अनेक रागों के नाम के अनुकूल गीतों में अक्षर से स्पष्ट बोध होता है कि जयदेव जी गाना बहुत अच्छा जानते थे। कहते हैं कि गीतगोविन्द को अष्टपदी और अष्टताली नाम से भी लोग पुकारते हैं।

अनेक विद्वानों ने लिखा है गीतगोविन्द विक्रमादित्य की सभा में गाया जाता था। किन्तु यह कथा सर्वथा अप्रासंगिक है।

यह कोई और विक्रम होंगे जिन की सभा में गीतगोविन्द गाया जाता था, क्योंकि शकारि विक्रम के अनेक सौ वर्ष पश्चात् जयदेव जी का जन्म है। हां, कलिङ्ग कर्णाट प्रभृति देश के राजाओं की सभा में पूर्व में गीतगोविन्द निस्सन्देह गाया जाता था। वरञ्च जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में लिखा है कि श्रीहर्ष जब क्रम सरोवर के निकट भ्रमण करते थे उन दिनों गीतगोविन्द उन की सभा में गाया जाता था।

कहते हैं कि "प्रिये चारुशीले" इस अष्टपदी में "स्मरगरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं" इस पद के आगे जयदेव जी की इच्छा हुई कि "देहि पद पल्लव मुदारं" ऐसा पद दें, किन्तु प्रभु के विषय में ऐसा पद देने को उन का साहस नहीं पड़ा, इस से पुस्तक छोड़ कर आप स्नान करने चले गए। भक्तवत्सल, भक्त-मनोरथपूरक भगवान इस समय स्नान से फिरते हुए जयदेव जी के वेश में घर में आए। प्रथम पद्मावती ने जो रसोई बनाई थी उस को भोजन किया, तदनन्तर पुस्तक खोल कर "देहि पद पल्लवमुदारं" लिख कर शयन करने लगे। इतने में जयदेव जी आए तो देखा कि पतिप्राणा पद्मावती जो बिना जयदेव जी को भोजन कराये जल भी नहीं पीती थी वह भोजन कर रही है। जयदेव जी ने भोजन का कारण पूछा तो पद्मावती ने आश्चर्य्य-पूर्वक सब वृत्त कहा। इस पर जयदेव जी ने जाकर पुस्तक देखा तो "देहि पदपल्लवमुदारं" यह पद लिखा है। वह जान गए कि यह सब चरित्र उसी रसिकशिरोमणि भक्तवत्सल का है। इस से आनन्द पुलकित हो कर पद्मावती को थाली का अन्न खा कर अपने को कृतार्थ माना।

कहते हैं कि पुरी के राजा सात्विकराय ने ईर्षापरवश होकर एक जयदेव जी की कविता की भांति अपना भी गीतगोविन्द बनाया था। इस झगड़े को निवटाने को कि कौन गीतगोबिन्द अच्छा है दोनों गीतगोविन्दों को पण्डितों ने जगन्नाथ जी के मंदिर में रख कर बन्द कर दिया। जब यथा समय द्वार खुला तो लोगों ने देखा कि जयदेव जी का गीतगोविन्द श्री जगन्नाथ जी के हृदय में लगा हुआ है और राजा का दूर पड़ा है। यह देखकर राजा आत्महत्या करने को तयार हुआ। तब श्रीजगन्नाथ जी ने उस के सम्बोधन के वास्ते आज्ञा किया कि हम ने तेरा भी अङ्गीकार किया, शोच मत कर।

गीतगोविन्द अङ्गरेज़ी गद्य में सर विलियम जोन्स कृत, पद्य में आनरल्ड साहब कृत, लैटिन में लासिन कृत, जर्मन में रुकार्ट कृत, ऐसे ही अनेक भाषाओं में अनेक जन कृत अनुवादित हुआ है। हिन्दी में इस के छन्दोवद्ध तीन अनुवाद हैं। प्रथम राजा डालचन्द की आज्ञा से रायचन्द नागर कृत, द्वितीय अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरीदास कृत और तृतीय इस प्रबन्ध के लेखक हरिश्चन्द्र कृत। इन अनुवादों के अतिरिक्त द्राविड़ और कार्णाटादि भाषाओं में इस के अपरापर अन्य अनेक अनुवाद हैं।

लोग कहते हैं कि जयदेव जी ने गीतगोविन्द के अतिरिक्त एक ग्रन्थ रतिमञ्जरी भी बनाया था, किन्तु यह अमूलक है। गीतगोविन्द-कार की लेखनी से रतिमञ्जरी सा जघन्य काव्य निकलै यह कभी सम्भव नहीं। एक गङ्गा की स्तुति में सुन्दर पद जयदेव जी का बनाया हुआ और मिलता है वह उन का बनाया हुआ हो तो हो

इस भांति अनेक सौ बरस हुए कि श्रीजयदेव जी इस पृथ्वी को छोड़ गए। किन्तु अपनी कविता बल से हमारे समाज में वह सादर आज भी बिराजमान हैं। इन के स्मरण के हेतु केन्दुली गांव में अब तक मकर की संक्रान्ति को एक बड़ा भारी मेला होता है, जिस में साठ सत्तर हज़ार वैष्णव एकत्र हो कर इन की समाधि के चारों ओर संकीर्त्तन करते हैं।

महिम्न और पुष्पदन्ताचार्य्य।

यह स्तोत्र अब ऐसा प्रसिद्ध है कि आर्ष की भांति माना जाता है, वरंच पुराणों में भी कहीं २ इस का माहात्म्य मिलता है। एक प्रसंग है कि जब पुष्पदन्त ने महिम्न बना के शिवजी को सुनाया तब शिवजी बड़े प्रसन्न हुए, इस से पुष्पदन्त को गर्व हुआ कि मैं ने ऐसी अच्छी कविता किया कि शिवजी प्रसन्न हो गए। यह बात शिवजी ने जाना और अपने भृङ्गी-गण से कहा कि मुंह तो खोलो। जब भृङ्गी ने मुंह खोला, तो पुष्पदन्त ने देखा कि महिम्न के बत्तीसों श्लोक भृङ्गी के बत्तीसों दांत में लिखे हैं। इस से यह बात शिव जी ने प्रगट किया कि ये श्लोक तुम ने नहीं बनाए हैं। वरंच यह तो हमारी अनादि स्तुति श्लोक है। यह बात प्रसिद्ध है कि पुष्पदन्त जब शाप से ब्राह्मण हुआ था तब यह स्तोत्र बनाया है और ऐसी ही अनेक आख्यायिका हैं। अब वह पुष्पदन्त कौन है और कब वह ब्राह्मण हुआ इस का विचार करते हैं। कथासरित-सागर में एक पहिला ही प्रसंग है, जिस से यह प्रसंग बहुत स्पष्ट

होता है, उस में लिखते हैं कि पार्वती जी का मान छुड़ाने को शिवजी ने अनेक विचित्र इतिहास कहे और उस समय नन्दी को आज्ञा दी थी कि कोई भीतर न आवे, परन्तु पुष्पदन्त गण ने योगबल से नन्दी से छिप कर भीतर जा कर वह सब कथा सुनी और अपनी स्त्री जया से कही और जया ने फिर पार्वती से कही। यह सुन कर पार्वती ने बड़ा क्रोध किया और पुष्पदन्त और उस के मित्र माल्यवान् को शाप दिया कि दोनों मृत्युलोक में जन्म लो। फिर जब उन सबों ने पार्वती को बहुत मनाया तब पार्वती ने कहा कि अच्छा बिंध्याचल में सुप्रतीक नाम यक्ष काणभूति पिशाच हुआ है उस को देख कर पुष्पदन्त जब यह सब कथा कहेगा तब दोष दूर होगा और काणभूनि से जब माल्यवान् सुनेगा तब शाप से छूटेगा। वही पुष्पदन्त वररुचि नामक कवि कौशाम्बी में हुआ और सुप्रतिष्ठ नगर में माल्यवान् गुणाढ्य कवि हुआ। यथा—

अवदच्चचन्द्रमौलिः कौशाम्बीत्यस्तियामहानगरी।
तस्यां सपुष्पदंतो बरुचि नामा प्रिये जातः ॥ १ ॥
अन्यश्च माल्यवानपि नगरे सुप्रतिष्टाख्ये।
जातो गुणाढ्य नामा देवितयो रेषवृत्तान्तः ॥ २ ॥"

कौशाम्बी नगरी सोमदत्त वा अग्निशिख नामा ब्राह्मण की स्त्री बसुदत्ता से बररुचि का जन्म हुआ और पिता छोटे ही पन में मर गया, इस से माता ने बड़े कष्ट से इस का पालन किया। यह छोटे ही पन में ऐसा श्रुतिधर था कि एक बेर जो सुनता था

कला देखता कण्ठ कर लेता और जान जाता। एक समय बेतस-पुर के देवस्वामी और कद्म्बक नामा ब्राह्मण के पुत्र इन्द्रदत्त और व्याड़ि इस के घर में आए। वहां इन दोनों ने बररुचि को एक श्रुतिधर सुन के प्राति शांख्य पढ़ा और बररुचि ने उन दोनों को वह ज्यों का त्यों सुना दिया और बररुचि के पिता का मित्र भवानंद नामक नट उस रात्रि को कहीं अभिनय करता था। वह देख कर बररुचि ने अपने माता के सामने ज्यौं का त्यौं फिर कर दिखाया। उन दोनों ब्राह्मणों को इस की एक श्रुतिधरता से बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि जब इन दोनों ने विद्या के हेतु तप किया था तब इन को बर मिला था कि पाटलिपुत्र में वर्ष नामक उपाध्याय से सब विद्या पाओगे। वर्ष उपवर्ष यह दो भाई शंकर स्वामि ब्राह्मण के पुत्र थे। उन में उपवर्ष पण्डित और धनी था और वर्ष मूर्ख और दरिद्री था। उपवर्ष की स्त्री से अनादर पा कर वर्ष ने विद्या के हेतु तप किया और स्कन्द से सब विद्या पाई, परन्तु स्कन्द ने कहा था कि जो एक श्रुतिधर हो उस के सामने तुम अपनी विद्या प्रकाश करना। सो जब वर्ष के पास ये दोनों ब्राह्मण गए तब उस की स्त्री ने कहा कि एक श्रुतिधर कोई हो तो ये अपनी विद्या प्रकाश करैं, अन्यथा न प्रकाश करैंगे। इसी से वे दोनों ब्राह्मण बररुचि को एक श्रुतिधर पा कर बड़े प्रसन्न हुए। बररुचि की माता से उन दोनों ने सब वृत्तांत कह कर बररुचि को साथ लिया और फिर पाटलिपुत्र में आए, क्योंकि उस की माता से भी आकाशवाणी ने कहा था कि तेरा पुत्र एक श्रुतिधर होगा और वर्ष

से सब विद्या पढ़ेगा और व्याकरण का आचार्य्य होगा। वर्ष ने तब उन तीनों को विद्या पढ़ाया और बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि बररुचि एक श्रुतिधर द्वि श्रुतिधर व्याडि और इन्द्रदत्त त्रि श्रुतिधर था। वर्ष को नगर के लोग मूर्ख जानते थे, पर जब एकाएकी उस के विद्या का प्रकाश हुआ तो सब ब्राह्मणवर्ग बड़े प्रसन्न हुए और नंद राजा ने भी बहुत सा धन वर्ष को दिया। फिर इन तीनों ने बड़ी विद्या पढ़ी और वररुचि ने उपवर्ष की कन्या उपकोषा से विवाह किया और उपकोषा अपने पातिव्रत और चरित्र से नन्द की भगिनी हुई। वर्ष के एक पाणिनी * नामा मूर्ख शिष्य ने शिव

* राजा शिवप्रसाद यों लिखते हैं :—"समय के उलट फेर में हमारे पंडित लोग जो कुछ अपनी पंडिताई दिखलाते हैं लिखने योग्य नहीं है। इसी एक बात से सोच लो कि जिस पंडित से पाणिनि वैय्याकरण का ज़माना पूछोगे छूटते कहेगा कि सत्ययुग में हुआ था। लाखों बरस बीते परंतु इस से इन्कार न करेगा कि कात्यायन की पतंजलि ने टीका लिखी और पतंजलि की व्यास ने। अब हेमचन्द्र अपने कोश में कात्यायन का नाम बररुचि बतलाता है और कश्मीर का सोमदेव भट्ट अपने कथा-सरित्सागर में लिखता है कि कात्यायनबररुचि कौशाम्बी में, जो अब प्रयाग के पास जमना के किनारे कोसम गांव कहलाता है, पैदा हुआ, पाणिनि से व्याकरण में शास्त्रार्थ किया और राजा नन्द का मंत्री हुआ। मुद्राराक्षस इत्यादि बहुत ग्रंथों से साबित है कि नन्द के बाद ही चन्द्रगुप्त राज्यसिंहासन पर बैठा और चन्द्रगुप्त का ज़माना ऐसा निश्चय ठहर गया है कि जैसे पलासी की लड़ाई अथवा नादिरशाही अथवा पृथ्वीराज और विक्रम का कहो कि हम पाणिनि का ज़माना अब अढ़ाई हज़ार बरस से इधर मानें या लाखों बरस से उधर? पतंजलि चन्द्रगुप्त के पीछे हुआ इस में किसी तरह का संदेह नहीं, क्योंकि उस ने अपने भाष्य में "सभाराजा मनुष्य पूर्वा" इस सूत्र पर "चंद्रगुप्तसभम्" ऐसा उदाहरण दिया है।"

जो से बर पा कर व्याकरण बनाया और जब बररुचि ने उस से बाद किया तो शिव जी ने हुंकर के बररुचि का इन्द्रमत का व्याकरण भुला दिया, इस से बररुचि ने फिर तपस्या कर के शिवजी से पाणिनि व्याकरण सीखा। यह बररुचि बहुत दिन तक योगानन्द का मन्त्री रहा और इस का नामान्तर कात्यायन था, परन्तु यह नन्द का मन्त्री कैसे हुआ और कब तक रहा यह यहां नहीं लिखते, क्योंकि प्रसङ्ग के बाहर है। यह बन २ फिरने लगा। जब शकटार ने चाणक्य द्वारा नन्दवंश का नाश किया तब

Dr. Rajendra Lal Mitra L. L. D. in his Indo-Aryans No. 1 P. 19 says, "According to Dr. Goldstucker, the Grammar of Panini was composed between the 9th and the 11th centuries before Christ. Professor Max Muller brings down the age of the Grammar to the 6th century B. C.".

पाणिनीय व्याकरण के समय में निम्न लिखित बातें होती थीं।

१ उस समय के लोगों में हंसी करने की चाल थी। एहिमन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति भुक्तः सोऽतिथिभिः—मानो भात खाने आया है सब खा पी गया।

२ श्राद्धों में नाती को अवश्य बुलाने की चाल थी। निमन्त्रणं, आवश्यके श्राद्ध भोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनं—निमन्त्रण, अर्थात् जैसे नाती वगैरह को श्राद्ध भोजन में बुलाना।

३ नृत्य और नृत्त में भेद। गात्र विक्षेपमात्रं नृत्तं भांड़ों का तमासा, बदन तोड़ना इत्यादि। पदार्थाभिनयो नृत्यं—भावादिकों का दिखलाना।

४ बहुत सी कहावतें उस समय के लोग जानते थे। जैसा—नविश्वसेदविश्वस्तं—जिस का विश्वास एक बेर गया फिर उस का विश्वास न करना।

उदास हो कर और विन्ध्याचल में काणभूति पिशाच को देख कर अपना पूर्व जन्म स्मरण कर के उस से सब कथा कह कर बदरिकाश्रम में जा कर योग से अपनी गति को गया और शाप से छूटा। गन्धर्व से भी पहिले जन्म में यह गङ्गातीर के ग्रहार नामक ग्राम में गोविन्ददेव ब्राह्मण अग्निदत्ता ब्राह्मणी का पुत्र देवदत्त था और प्रतिष्ठानपुर के राजा की कन्या से विवाह किया था। उस कन्या ने पहले दांत में फूल दबा कर उस को संकेत बताया था।

---

५ आलिङ्गन करने की रीति थी। आश्लिक्षत् कन्यां देवदत्तः—देवदत्त ने कन्या को आलिङ्गन दिया।

६ लड़कियों को गहना पहिनाने की चाल। उपस्कृता कन्या—अलंकार पहिनाई गई कन्या।

७ मुहाविरेदार बोलने की चाल। हस्तयते—हाथी पर चढ़के जाना है। पादयते—लात मारता है।

८ लोग बहुत भावुक थे। सिद्धशब्दो ग्रन्थान्ते मङ्गलार्थ—ग्रन्थ के अन्त में। सिद्ध—ऐसा लिखो, क्योंकि यह मङ्गल है।

९ वृषस्यतिगौः —गाय उठी है।

१० महल बना करते थे। कुटीयति प्रासादे। महल में बैठ कर झोपड़ी समझता है।

११ भिक्षुक लोग राजा के पास जाया करते थे। भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते।

१२ मल्लयुद्ध हुआ करता था। आह्वयते—मैदान में खड़े होकर पुकारना। नहीं तो आह्वयति।

१३ खिराज दिया जाता था। करं विनयते—कर देने को निकालता है।

१४ शास्त्र की चर्चा रहा करती थी। शास्त्रेवदते—शास्त्र में बोल सकता है।

इस से जब वह ब्राह्मण बरदान पाकर शिवगण हुआ तब उस की स्त्री भी जया प्रतिहारी हुई।

इस कथा के व्याख्यान से यह स्पष्ट होता है कि वर्णन नन्द के राज्य के समय का है और उस समय के देवता शिव और स्कन्ध थे और व्याकरण का बड़ा प्रचार था। कातन्त्र कालाप एन्द्र पाणिनी इत्यादि मत में परस्पर बड़ा बिरोध था। संस्कृत प्राकृत पैशाची और देश भाषा बहुत प्रसिद्ध थी, परन्तु पांच और भाषा भी प्रचलित थीं। पाटलिपुत्र नया बसा था, प्रतिष्ठानपुर और अयोध्या भी बहुत बसती थी। धूर्तता फैल गई थी और हिन्दुस्तान में पश्चिम देश बहुत मिला हुआ था, इत्यादि।

इस वृहत्कथा में ऐसे ही गुणाढ्य कवि के भी तीनों जन्म लिखे हैं और उस का वृहत्कथा का पैशाची भाषा में निर्माण करना, उस में छः लाख ग्रन्थ जला देना और एक लाख ग्रन्थ नर बाहन दत्त के चरित्र का राजा शात बाहन को देना, इत्यादि, सविस्तर वर्णित है।

अब यह वृहत्कथा कब बनी है और किस ने बनाया है इस के विचार में चित्त बहुत दोलायित होता है, क्योंकि इस का काल ठीक निर्णीत नहीं होता। नन्द के समय की भी नहीं मान सकते, क्योंकि इसी वृहत्कथा में विक्रमादित्य उदयन ऐसे प्राचीन नवीन अनेक राजाओं का वर्णन है, परन्तु इतना कह सकते हैं कि इस का मूल प्राचीन काल से पड़ा है और उस को अनेक काल में अनेक कवि बढ़ाते गए हैं, क्योंकि "कात्यायनाद्यैकृतिः, तत-

पुष्पदन्तादिभिः" इत्यादि पदों में आदि शब्द मिलता है। वा अनेक प्राचीन सुनी हुई कथाओं को किसी ने एकत्र कर के आदर के हेतु उस में पुष्पदन्त का नाम रख दिया हो तो भी आश्चर्य नहीं, क्योंकि कात्यायन बररुचि का होना खीस्ताब्दीय के १२० वर्ष पूर्व लोग अनुमान करते हैं और विक्रम का काल पण्डितों ने ५०० खीस्ताब्द के लगभग निश्चय किया है और ऐसा मानने से प्रोफेसर गोल्डस्टूकर इत्यादि इतिहासवेत्ताओं का दो बररुचि मानने वाला मत भी स्पष्ट खण्डित होता है, क्योंकि बृहत्कथा में जब विक्रम का चरित्र है तब उसी विक्रमादित्य वाले बररुचि का नाम कात्यायन सम्भव है।

परन्तु हमारा कथन यह है कि संस्कृत बृहत् कथा गुणाढ्य की बनाई ही नहीं है, क्योंकि उस में स्पष्ट लिखा है कि गुणाढ्य ने संस्कृत बोलना छोड़ दिया था, इस से पिशाच भाषा में बृहत्कथा बनाया। तो इस दशा में सम्भव है कि किसी ने यह बृहत्कथा बना कर बररुचि गुणाढ्य पुष्पदन्त इत्यादि का नाम आदर और प्रमाण पाने के हेतु रख दिया हो।

अब जो बृहत्कथा मिलती है वह तीस हज़ार श्लोक में रामदेव भट्ट के पुत्र सोमदेव भट्ट की बनाई है, जो उस ने कश्मीर के राजा संग्रामदेव के पुत्र अनन्त देव की रानी सूर्यवती के चित्तविनोद के हेतु बनाई है और इसी अनन्तदेव के पुत्र कमलदेव हुए और कमलदेव के पुत्र श्री हर्षदेव हुए। कश्मीर के इन राजाओं के नाम चित्त को और भी संशय में डालते हैं, क्योंकि रत्नावली

वाला श्रीहर्ष कालिदास के पहिले का है, क्योंकि कालिदास ने मालविकाग्नि मित्र में धावक कवि का नाम प्राचीन कवियों में लिखा है। अब इस दशा में विरोध का परिहार यों हो सकता है कि जिस विक्रम का चरित्र वृहत्कथा में है वह नवरत्न वाला विक्रम नहीं, किन्तु कोई प्राचीन विक्रम है। और यह वृहत्कथा धाव के थोड़े ही काल पहिले कश्मीर में सोमदेव ने बनाई है, क्योंकि इस में नन्द और विक्रम के नाम की भांति भोज, कालिदास इत्यादि का नाम नहीं है और नवरत्न वाला बररुचि दूसरा था, क्योंकि उस काल में राजा और कवियों के वही नाम बारम्बार होते थे, इस से वृहत्कथा संवत् और खिृस्तसन के पूर्व बनी है और गुणाढ्य और बररुचि कुछ इस से भी पहिले के हैं।

परन्तु वृहत्कथा के किसी लेख का हम प्रमाण नहीं करते, क्योंकि यह बड़ा ही असंगत ग्रन्थ है। जैसा अनन्त पंडित की बनाई मुद्राराक्षस की पूर्व पीठिका में नन्द का नाम सुधन्वा लिखा है और इस में योगनद है। उस में जो बररुचि के मंत्री होने का प्रसंग है वह इस पीठिका में कहीं मिलताही नहीं और पाणिनी, वर्ष, कात्यायन, व्याड़ि, इन्द्रदत्त और अनेक व्याकरण के आचार्य वृहत्कथा के मत से एक काल के थे, पर बुद्धिमानों ने इन सब के काव्य में बड़ा भेद ठहराया है। इस से इतिहास विषय में वृहत्कथा अप्रमाणिक है।

वृहत्कथा का वर्णन और गुणाढ्य इत्यादि कवियों का वर्णन आर्य्या सप्तशती बनानेवाले गोवर्द्धन कवि ने किया है और

गोवर्द्धन कवि का काव्य जयदेव जी के काल से निश्चित होगा। बंगाली लेखकों ने जयदेव जी का समय पन्द्रहवां शतक ठहराया है, पर इस निर्णय में परम भ्रांत हुए हैं, क्योंकि जयदेव जी का काल एक सहस्र वर्ष के पूर्व है और इस में प्रमाण के हेतु पृथ्वीराज रायसा में चंद कवि का जयदेव जी का और गीतगोविन्द वर्णन ही प्रमाण है। जयदेव जी ने गोवर्द्धन कवि का वर्णन वर्त्तमान क्रिया से किया है। इस से अनुमान होता है कि उस काल में गोवर्द्धन कवि था। बङ्गाली लोगों में कोई बारहवें शतक में लक्ष्मन सेन के काल में जयदेव को मानते हैं और उस के समकालीन गोवर्द्धन इत्यादि कवियों को लक्ष्मन सेन की सभा के पञ्चरत्न मानते हैं। यह बात भी असम्भव है, क्योंकि पृथ्वीराज ग्यारहवें शतक में था और चन्द भी तभी था। तो जयदेव के चन्द के सैकड़ों वर्ष पहिले निस्सन्देह हुए हैं, क्योंकि चन्द ने प्राचीन कवियों की गणना में बड़ी भक्ति से जयदेव जी का वर्णन किया है। हां, यदि लक्ष्मन सेन को पृथ्वीराज के पहिले मानो तो जयदेव उस की सभा के पण्डित हो सकते हैं, नहीं तो समझ लो कि आदर के हेतु इन कवियों का नाम लक्ष्मन सेन ने अपनी सभा में रक्खा है। इस्से चल सखि कुजं की भाषा और अङ्गरेजी इतिहास वेत्ताओं का मत लेकर बंगालियों ने जयदेव जी का जो काल निर्णय किया है वह अप्रमाण है यह निश्चय हुआ और वृहत्कथा उस काल के भी पहिले बनी है यह भी सिद्धान्तित हुआ।

श्री वल्लभाचार्य्य का जीवनचरित्र ।

दोहा—तम पाखंड हि हरत करि, जन मन जलज विकास ।
जयति अलौकिक रवि कोऊ, श्रुति पथ करन प्रकास ॥

जो लोग बहुत प्रसिद्ध हैं, और जिन को लाखों मनुष्य सिर झुकाते हैं उन के जीवनचरित्र पढ़ने या सुनने की किस की इच्छा न होगी। इस हेतु यहां पर श्री वल्लभाचार्य्य का जीवनचरित्र संक्षेप से लिखा जाता है ।

मन्द्राज हाते में, तैलंगदेश के आकबीडु जिले में कांकरवल्लि गांव में भारद्वाज गोत्र, तैलंग ब्राह्मणजाति, पंचप्रवर, यजुर्वेद, तैत्तिरीयशाखा, दीक्षित सोमयागी उपनाम, यज्ञनारायण भट्ट के प्रसिद्ध वंश में, लक्ष्मण भट्ट जी की धर्मपत्नी इल्लमगारु के गर्भ से, चम्पारण्य में इन का जन्म हुआ ।

लक्ष्मण भट्ट जी के तीन पुत्र थे। बड़े रामकृष्ण भट्ट जी युवावस्था ही में संन्यस्त हो गये और केशव पुरी नाम से प्रसिद्ध हुए। मंझले पूर्वोक्ताचार्य और छोटे रामचन्द्र भट्ट जी, जिन के कृष्णकुतूहल गोपाल लीला इत्यादि अनेक ग्रन्थ हैं। इन्हों ने अपने नाना की वृत्ति पाई थी, परन्तु विवाह न करके अपना सब जीवन अयोध्या में बिताया।

लक्ष्मण भट्ट जी अपने घर के खान पान से बहुत सुखी थे। वे जब काशी में अपने जाति के ब्राह्मणों का सत्कार करने आये तो मार्ग में बितिया के इलाके में चौरा गांव के पास चम्पारण्य में

संवत् १५३५ बैशाख बदी ११, (१) आदित्यवार को मध्याह्न समय आचार्य का जन्म हुआ। जब ये पांच वर्ष के हुए तब चैत सुदी ६ के दिन अपने पिता से गायत्री उपदेश लिया और कृष्ण-दास मेघन को उसी दिन अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश करके प्रथम वैष्णव किया।

उसी साल असाढ़ सुदी ८ को काशी के प्रसिद्ध पंडित माधवा-नन्द तीर्थ त्रिदण्डी से विद्याध्ययन किया और छोटेपन ही में पत्रावलम्बन ग्रन्थ कर के विश्वनाथ के दरवाजे पर लगा दिया और डौंडी पीट कर काशी के पण्डितों से पहला शास्त्रार्थ किया। जब इन के पिता काशी से चले, तो लक्ष्मणबाला जी में उन का देहान्त हुआ। उन की क्रियादिक के पीछे आचार्य पृथ्वी परिक्रमा को चले और विद्यानगर में जाकर, कृष्णदेव राजा की सभा में सब पण्डितों को जीत कर आचार्य पद पाया। सम्वत् १५४८ के बैशाख बदी २ को ब्रह्मचर्य धर्म से पहिली पृथ्वी परिक्रमा

---

(१) वल्लभदिग्विजय में लिखा है :—सम्वत् १५३५ शाके १४०० बैशाख मास कृष्णपक्ष ११ रविवार मध्याह्न। एक पद श्री द्वारकेश जी कृत ॥ रागसारंग ॥
तत्व गुनवान भुव माधवासित तरणि प्रथम सौभग दिवस प्रकट लक्ष्मण सुवन।
धन्य चम्पारन्य मन्य त्रैलोक्य जन अन्य अवतार भुवि है न ऐसो भवन ॥१॥
लग्न वृश्चिक कुंभ केतु कवि इन्दु सुख मीन बुध उच्च रवि वैरि नाशे।
मन्द वृष कर्क गुरु भौम सुत सिंह में तमस के योग भुव यश प्रकाशे ॥२॥
रिक्ष धनिष्टा प्रतिष्टा अधिष्ठान स्थिर विरह बदनानलाकार हरि को।
यह निश्चय द्वारकेश इन के शरण और को श्री वल्लाधीश सर को ॥३॥

करने चले और पण्डरपुर त्र्यम्बक उज्जैन होते हुए बृज आए और चार महीने श्रीवृन्दावन में रह कर श्रीमद्भागवत का परायण किया और फिर सोरों अयोध्या वो नैमिषारण्य होते हुए काशी आए।

राह में जो पण्डित मिलते उन से शास्त्रार्थ करते और वैष्णव धर्म फैलाते थे।

काशी जी से गया और जगन्नाथ जी होते हुए फिर दक्खिन चले गए और सम्वत् १५५४ में अपना पहिला दिग्विजय समाप्त किया। दूसरे दिग्विजय में बृज में गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का स्वरूप प्रगट कर के उन की सेवा स्थापन किया, और तीन पृथ्वी परिक्रमा कर के सारे भारतखंड में वैष्णव मत फैलाकर बावन वर्ष की अवस्था में संवत् १५८७ आषाढ़ सुदी २ को काशी जी में लीला में प्राप्त भए। इन के

श्री महाप्रभुन की जन्मकुण्डली ऊपर के कीर्त्तन अनुसार।
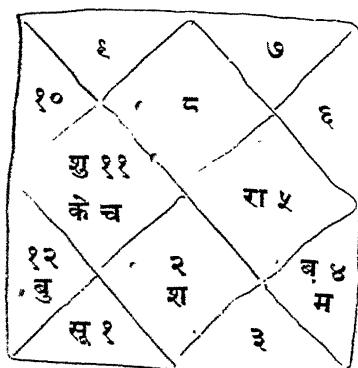
दो पुत्र बड़े श्री गोपीनाथ जी, छोटे श्री विट्ठलनाथ जी। गोपीनाथ जी के पुत्र श्री पुरुषोत्तम जी, पर उन के आगे वंश नहीं। श्री विट्ठलनाथ जी के सात पुत्र, जिन में बड़े गिरधर जी और छोटे पुत्र यदुनाथ जी का वंश अब तक वर्त्तमान है। इन का मत शुद्धाद्वैत अर्थात् जगत्‌ब्रह्म के सच्चित्‌रूप से अभिन्न और सत्य, परन्तु भक्ति बिना ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान फलदायक नहीं। परमोपास्य श्रीकृष्ण और विष्णुस्वामी परमाचार्य, साधन सेवा मुख्य, प्रमाण ग्रन्थ, वेदव्याससूत्र, गीता और भागवत। तिलक दो रेखा का लाल ऊर्द्ध पुंड्र शङ्ख चक्र शीतल।

आचार्य ने अणुभाष्य, तत्वदीप, निबन्ध, रसमंडन, श्री मद्भागवत पर सुबोधिनी टीका, सिद्धान्त मुक्तावली, पुष्टिप्रवाह मर्यादा, पुरुषोत्तम सहस्र नाम, सिद्धान्त रहस्य, अन्तःकरण प्रबोध, भक्ति प्रकरण, नवरतन, विवेक धैर्य्याश्रय, पत्रावलम्बन, कृष्णाश्रय, भक्तिवर्द्धिनी, जलभेद संन्यासनिर्णय, जैमिनी सूत्रभाष्य, चित्त-प्रबोध, निरोधलक्षण, व्यासबिराध लक्षण, परिवृढ़ाष्टक और वैद्यवल्लभ ये चौबीस ग्रन्थ बनाये हैं, जिन में दोनों सूत्रों का भाष्य और भागवत की टीका बहुत बड़े ग्रन्थ हैं।

सूरदास जी का जीवनचरित्र।

दो०—हरि पद पंकज मत्त अलि, कविता रस भरपूर।
दिव्य चक्षु कवि कुल कमल, सूर नौमि श्री सूर॥

सब कवियों के वृत्तान्त में सूरदास जी का वृत्तान्त पहिले लिखने के योग्य है, क्योंकि यह सब कवियों के शिरोमणि हैं और

कविता इन की सब भांति की मिलती है। कठिन से कठिन और सहज से सहज इन के पद बने हैं और किसी कवि में यह बात नहीं पाई जाती। और कवियों की कविता में एक एक बात अच्छी है और कविता एक ढंग पर बनती है, परन्तु इन की कविता में सब बात अच्छी है और इन की कविता सब तरह की होती जैसे किसी ने शाहनशाह अकबर के दरबार में कहा था—

दो०—उत्तम पद कवि गंग को, कविता को बल वीर।
केशव अर्थ गम्भीर को, सूर तीन गुन धीर॥

और इस के सिवाय इन की कविता में एक असर ऐसा होता कि जी में जगह करै। जैसे एक वार्ता है कि किसी समय में एक कवि कहीं जाता था और एक मनुष्य बहुत व्याकुल पड़ा था। उस मनुष्य को अति व्याकुल देख कर उस कवि ने एक दोहा पढ़ा।

दो०—किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यौ, जो अस बिकल शरीर॥

इस वार्ता के लिखने का यह अभिप्राय है कि निस्सन्देह इन के पदों में ऐसा एक असर होता कि जो लोग कविता समझते हैं उन के जी पर इस की चोट लगै।

ये जाति के ब्राह्मण थे और इन के पिता का नाम बाबा रामदास जी था, जो गाना बहुत अच्छा जानते थे और कुछ धुरबपद इत्यादि भी बनाते थे और देहली या आगरे या मथुरा इन्हीं शहरों में रहा करते थे और उस समय के नामी गुनियों में गिने

जाते थे। उन के घर यह सूरदास जी पैदा हुए। यह इस असार संसार के प्रपञ्च को न देखने के वास्ते आंख बन्द किए हुए थे। इन के पिता ने इन को गाना सिखाने में बड़ा परिश्रम किया था और इन की बुद्धि पहिले ही से बड़ी विलक्षण और तीव्र थी। सम्वत् १५४० के कुछ न्यूनाधिक में इन का जन्म हुआ था और आगरे में इन्हों ने कुछ फारसी विद्या भी सीखी थी। इन की जवानी ही में इन के पिता का परलोक हुआ और यह अपने मन के हो गए और भजन तभी से बनाने लगे। उस समय में इन के शिष्य भी बहुत से हो गए थे और तब यह अपना नाम पदों में सूर स्वामी रखते थे। इन्हीं दिनों में इन्हों ने महाराज नल और दमयन्ती के प्रेम की कथा में एक पुस्तक बनाई थी जो अब नहीं मिलती। उस समय इन की पूर्ण युवा अवस्था थी। और उन दिनों में ये आगरे से नां कास मथुरा के रास्ते के बीच में एक स्थान जिस का नाम गऊघाट है, वहीं रहते थे और बहुत से इन के शिष्य इन के साथ थे। फिर ये आचार्य्य कुल शिरोरत्न श्री श्री वल्लभाचार्य्य महा-प्रभु के शिष्य हुए। तब से यह अपना नाम पदों में सूरदास रखने लगे। ये भजनों में नाम अपना चार तरह से रखते थे–सूर, सूरदास, सूरजदास और सूरश्याम। जब यह सेवक हुए थे तब इन्हों ने यह भजन बनाया था।

भजन–चकई री चलि चरन सरोवर, जहं नहिं प्रेम बियोग।

जहं भ्रम निसा होत नहिं कबहूं सो सागर सुख जोग ॥ १ ॥

सनक से हंस मीन शिव मुनि जन नख रवि प्रभा प्रकास ।
प्रफुलित कमल निमेषन ससि डर गुंजत निगम सुबास ॥ २ ॥
जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल सुकृत बिमल जल पीजै ।
सो सर छाड़ि कुबुद्धि बिहङ्गम इहां कहा रहि कीजै ॥ ३ ॥
जहां श्री सहस्र सहित नित क्रीड़त सोभित सूरज दास ।
अवन सुहाई बिषै रस छीलर वा समुद्र की आस ॥ ४ ॥

फिर तो इन की सामर्थ्य बढ़ती ही गई और इन्हों ने श्री मद्भागवत को भी पदों में बनाया और भी सब तरह के भजन इन्हों ने बनाए। इन के श्रीगुरु इन को सागर कह कर पुकारते थे, इसी से इन ने अपने सब पदों को इकट्ठा कर के उस ग्रन्थ का नाम सूरसागर रक्खा। जब यह वृद्ध हो गए थे और श्री गोकुल में रहा करते थे, धीरे धीरे इन के गुण शाहनशाह अकबर के कानों तक पहुंचे। उस समय ये अत्यन्त वृद्ध थे और बादशाह ने इन को बुलवा भेजा और गाने की आज्ञा किया। तब इन ने यह भजन बना कर गाया।

मन रे करि माधो सो प्रीति।

फिर इन से कहा गया कि कुछ शाहनशाह का गुणानुवाद गाइए। उस पर इन्हों ने यह पद गाया।

केदारा—नाहिं न रह्यो मन में ठौर।
नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये उर और ॥ १ ॥
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत राति।
हृदय तें वह मदन मूरति छिनु न इत उत जाति ॥ २ ॥

कहत कथा अनेक ऊधो लोग लोभ दिखाइ।
कहा करों चित प्रेम पूरन घट न सिंधु समाइ ॥ ३ ॥
श्यामगात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे दरस कारन मरत लोचन खास ॥ ४ ॥

फिर सम्वत् १६२० के लगभग श्री गोकुल में इन्हों ने इस शरीर को त्याग किया। सूरदास जो ने अन्त समय यह पद किया था।

बिहाग—खंजन नैन रूप रस माते।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते॥
चलि चलि जात निकट श्रवनन के उलटि फिरत ताटंक फंदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके नातरु अब उड़िजाते॥

दो०—मन समुद्र भयो सूर को, सीप भए चख लाल।
हरि मुक्ताहल परतहीं, मूंदि गए तत काल॥

संसार में जो लोग भाषा काव्य समझते होंगे वह सूरदास जी को अवश्य जानते होंगे और उसी तरह जो लोग थोड़े बहुत भी वैष्णव होंगे वह इन का थोड़ा बहुत जीवनचरित्र भी अवश्य जानते होंगे। चौरासी वार्ता, उस की टीका, भक्तमाल और उस की टीकाओं में इन का जीवन विवृत किया है। इन्हीं ग्रन्थों के अनुसार संसार को और हम को भी विश्वास था कि ये सारस्वत ब्राह्मण हैं, इन के पिता का नाम रामदास, इन के माता पिता दरिद्री थे, ये गऊघाट पर रहते थे, इत्यादि। अब सुनिए, एक पुस्तक सूरदास जी के दृष्टिकूट पर टीका [टीका भी सम्भव होता है उन्हीं की, क्योंकि टीका में जहां अलङ्कारों के लक्षण दिए

हैं वह दोहे और चौपाई भी सूर नाम से अङ्कित हैं] मिली है। इस पुस्तक में ११६ दृष्टिकूट के पद अलङ्कार और नायिका के क्रम से हैं और उन का स्पष्ट अर्थ और उन के अलङ्कार इत्यादि सब लिखे हैं। इस पुस्तक के अन्त में एक पद में कवि ने अपना जीवनचरित्र दिया है, जो नीचे प्रकाश किया जाता है। अब इस को देख कर सूरदास जी के जीवनचरित्र और वंश को हम दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे। वह लिखते हैं कि 'प्रथजगात [१]' प्रार्थज गोत्र वंश में इन के मूल पुरुष ब्रह्मराव [२] हुए जो बड़े सिद्ध और देवप्रसाद लब्ध थे। इन के वंश में भौचन्द [३] हुआ। पृथ्वीराज [४] जिस को ज्वाला देश दिया उस के चार पुत्र, जिन में पहिला राजा हुआ। दूसरा गुणचन्द्र। उस का पुत्र सीलचन्द्र उस का बीरचन्द्र। यह बीरचन्द्र रतम्भमर [रण-थम्भौर प्रसिद्ध हम्मीर [५] के साथ खेलता था। इस के वंश में

---

१ 'प्रथ जगात' इस जाति वा गोत्र के सारस्वत ब्राह्मण सुनने में नहीं आए। पण्डित राधाकृष्ण संगृहीत सारस्वत ब्राह्मणों की जाति माला में 'प्रथ जगात' 'प्रथ' वा 'जगात' नाम के कोई सारस्वत ब्राह्मण नहीं होते। जगा वा जगातिआ तो भाट को कहते हैं।

२ ब्रह्मराव नाम से भी सन्देह होता है कि यह पुरुष या तो राजा रहा हो या भाट।

३ 'भौ' का शब्द हुआ अर्थ में लीजिए तो केवल चन्द्र नाम था। चन्द्र नाम का एक कवि पृथ्वीराज की सभा में था ? आश्चर्य्य !!!

४ पृथ्वीराज का काल सन् ११७६।

५ हम्मीर चौहान, भीमदेव का पुत्र था। रणथम्भौर के किले में इसी की रानी इस के अलाउद्दीन (दुष्ट) के हाथ से मारे जाने पर सहस्रावधि स्त्री के साथ सती

हरिचन्द [६] हुआ उस के पुत्र को सात पुत्र हुए, जिन में सब से छोटा [कवि लिखता है] मैं सूरजचन्द था। मेरे छः भाई मुसलमानों के युद्ध [७] में मारे गए। मैं अन्धा कुबुद्धि था। एक दिन कूंए में गिर पड़ा, तो सात दिन तक उस [अंधे] कूंए में पड़ा रहा, किसी ने न निकाला। सातएं दिन भगवान ने निकाला और अपने स्वरूप का (नेत्र दे कर) दर्शन कराया और मुझ से बोले कि बर मांग। मैं ने बर मांगा कि आप का रूप देख कर अब और रूप न देखें और मुझ को दृढ़ भक्ति मिले और शत्रुओं (८) का नाश हो। भगवान ने कहा ऐसा ही होगा। तू सब विद्या में निपुण होगा। प्रबल दच्छिण के ब्राह्मण-कुल (९) से शत्रु का

हुई थी। इसी का वीरत्व यश सर्व्वसाधारण में 'हमीर हठ' के नाम से प्रसिद्ध है (तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजो बार) इसी की स्तुति में अनेक कवियों ने बीर रस के सुन्दर श्लोक बनाए हैं "मुञ्चति मुञ्चति कोषं भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्गे। हमीर बीर खड्गे त्यजति च त्यजति क्षमा माशु"। इस का समय सन् १२६० (एक हमीर सन् ११९२ में भी हुआ है)।

६ सम्भव है कि हरिचन्द के पुत्र का नाम रामचन्द्र रहा हो जिसे वैष्णवों ने अपनी रीति के अनुसार रामदास कर लिया हो।

७ उस समय तुगलकों और मुगलों का युद्ध होता था।

८ शत्रुओं से लौकिक अर्थ लीजिए तो मुगलों का कुल [इस से सम्भव होता है इन के पूर्व पुरुष सदा से राजाओं का आश्रय कर के मुसल्मानों को शत्रु समझते थे या तुगलकों के आश्रित थे इस से मुगलों को शत्रु समझते थे] यदि अलौकिक अर्थ लीजिए तो काम क्रोधादि।

९ सेवा जी के सहायक पेशवा का कुल जिस ने पीछे मुसल्मानों का नाश

नाश होगा। और मेरा नाम सूरजदास सूर सूरश्याम इत्यादि रखकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गए। मैं व्रज में बसने लगा। फिर गोसाईं (१०) ने मेरी अष्ट (११) छाप में थापना की। इत्यादि। इस लेख से और लेख अशुद्ध मालूम होते हैं, क्योंकि जैसा चौरासी वार्त्ता की टीका में लिखा है कि दिल्ली के पास सीही गांव में इन के दरिद्र माता पिता के घर इन का जन्म हुआ यह बात नहीं आई। यह एक बड़े कुल में उत्पन्न थे और आगरे वा गोपाचल में इन का जन्म हुआ। हां, यह मान लिया जाय कि मुसलमानों के युद्ध में इतने भाइयों के मारे जाने के पीछे भी इन के पिता जीते रहे और एक दरिद्र अवस्था में पहुंच गए थे और उसी समय में सीही गांव में चले गए हों तो लड़ मिल सकती है। जो हो, हमारी भाषा कविता के राजाधिराज सूरदास जी एक इतने बड़े वंश के हैं यह जान कर हम को बड़ा आनन्द हुआ।

किया। अलौकिक अर्थ लीजिय तो सूरदास जी के गुरु श्री वल्लभाचार्य्य दक्षिण-ब्राह्मण-कुल के थे।

१० 'गोसाईं' श्री विठ्ठलनाथ जी श्री वल्लभाचार्य्य के पुत्र।

११ अष्ट छाप यथा सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास और कृष्णदास ये चार महात्मा आचार्य्य जी के सेवक और छींत स्वामि गोविन्द स्वामि, चतुर्भुज दास और नन्ददास ये गोसाईं जी के सेवक। ये आठो महा कवि थे।

दोहा—श्री चवल्लभआचार्य्द के, चारि शिष्य सुखरास।
परमानन्द अरु सूर पुनि, कृष्णरु कुंभन दास ॥ १ ॥
बिठ्ठलनाथ गोसाईं के, प्रथम चतुर्भुज दास।
छीतस्वामि गोबिन्द पुनि, नन्ददास सुख बास ॥ २ ॥

इस विषय में कोई और विद्वान जो कुछ और विशेष पता लगा सके तो उत्तम हो।

भजन—प्रथमही प्रथ जगते में प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप॥
पान पय देवी.द्रियो सिव आदि सुर सुर पाय।
कह्यौ दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु बंस प्रसिद्ध मैं भौचन्द चारु नवीन॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हौ तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीन्हौ प्रथम आप नरेस॥
दूसरे गुनचन्द ता सुत सीलचन्द सरूप।
वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप॥
रत्नभार हमीर भूपत संग खेलत आय।
तासु बंस अनूप भो हरिचन्द अति विख्याय॥
आगरे रहि गोपचल में रहौ ता सुत वीर।
पुत्र जनमें सात ताके महा भट गम्भीर॥
कृष्णचन्द उदारचन्द जु रूपचन्द सुभाइ।
बुद्धिचन्द प्रकाश चौथी चन्द भे सुखदाइ॥
देवचन्द प्रबोध संसृत चन्द ताको नाम।
भयो सत्तो नाम सूरज चन्द मन्द निकाम॥
सो समर करि स्याहि सेवक गए विध के लोग।
रहो सूरज चन्दद्गते हीन भर बर सोक॥

परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार ।
सातएं दिन आइ जदुपति कीन आपु उधार ॥
दियोचख दै कही सिसु सुनु मांगु बर जो चाइ ।
हौं कही प्रभु भगति चाहत सत्रु नास सुभाइ ॥
दूसरो ना रूप देखो देखि राधा स्याम ।
सुनत करुनासिन्धु भाखि एवमस्तु सुधाम ॥
प्रबल दच्छिन बिप्र कुलतें सत्रु ह्वै है नास ।
अषित बुद्धि विचारि विद्यामान माने सास ॥
नाम राखो मोर सूरज दास सूरँ सुश्याम ।
भए अन्तर धान बीते पाछली निसि जाम ॥
मोहि पन सोइ है व्रजकी बसेसु खिचित थाप ।
थापि गोसांई करी मेरी आठ मद्धे छाप ॥
विप्र प्रथ जगात को है भाव भूरि निकाम ।
सूर है नदनन्द जू को लयो मोल गुलाम ॥

सुकरात का जीवनचरित्र ।

इतिहासों से प्रगट है कि यूनान देश प्राचीन काल में हर तरह की विद्या शिल्प विज्ञान आदि के लिये अति प्रसिद्ध था, वरन हर एक विद्याओं की खान या उत्पत्ति भूमि कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। वहीं के बड़े २ विद्वान और विज्ञानों में एक सुकरात भी था। यह ईसाई सन् ४७१ वर्ष पहिले आसीनिया नगर में पैदा हुआ था और " होनहार बिरवान के होत चीकने

पात " इस कहावत के अनुसार छोटो ही उमर में अपने बाप के सौदागरी पेशे का काम झटपट सीख सिखाय भलीभांति प्रखर हो गया। तब यह हर तरह की विद्याओं के सीखने में प्रवृत्त हुआ और अपना समय यूनान देश के विद्वानों में काटने लगा, जिन के सत्संग से कुछ दिनों के उपरान्त अपनो विमल वुद्धि के कारण यह सम्पूर्ण विद्या विज्ञान और शिल्पशास्त्र में भली भांति कुशल हो यूनान के बड़े २ विद्वान् और दार्शनिकों से भी वादा विवाद में भिड़ जाता था। उन का पक्ष खंडन कर अपनी बात अनेक युक्तियों से सिद्ध करता था। यहां तक कि कुछ दिनों में संपूर्ण यूनान भर में इस को लोकोत्तर चमत्कार वुद्धि की धूम मच गई। एक बार सुकरात का बाप कहीं बाहर सफर को जाते समय इसे चार हजार लूर जो उस समय का यूनानी सिक्का था इस के निज के खर्च के लिए दे गया था। पर इस ने उन सब रुपयों को बतौर ऋण के अपने एक मित्र को दे दिया। उस ने रुपये इसे फिर लौटा कर न दिए, पर सुकरात ने इस बात का कुछ भी ख्याल न किया और न रुपए उससे कभी मांगे। मेसिडोनिया का राजा अर्किलीस बहुत कुछ चाहा कि सुकरात एक बार उससे किसी बात के लिए कुछ कहे, पर इस ने कभी इस बात की ओर ध्यान भी न किया। इस वुद्धिमान हकीम में धीरज इतना था कि किसी तरह की तकलीफ या रंज जो इस पर आ पड़ते थे तो यह किसी प्रकार और लोगों को उस मानसी व्यथा को नहीं प्रगट होने देता था। उस के मन की सब से बड़ी अभिलाषा जिस के लिए वह अत्यन्त लौलीन रहा किया यह थी कि जिस तरह हो

सके हम अपनी जन्मभूमि को कुछ फाइदा पहुंचा सकें और सब लोग कुमार्ग से बच सच्चे और सीधे राह पर चलें, एक दूसरे की बुराई कभी न चेतें। यद्यपि इस सज्जन पुरुष ने कोई स्कूल या वाज करने को कोई जगह नहीं बनवाया पर अक्सर जहां लोगों की बहुत भीड़ भाड़ रहती उन के बीच यह खड़ा हो घंटों तक सदुपदेश किया करता था और दिन रात मनसा वाचा कर्मणा अपन देश के लोगों के हित में तत्पर रहा। हकीम अफलातून सुकरात का बहुत बड़ा शागिर्द था। मरती वार सुकरात ने तीन बात के लिये अपनी प्रसन्नता प्रगट की और हाथ जोड़ कर कहा, हे जगदीश्वर, मैं तुझे कोटि कोटि धन्यवाद देता हूं कि तू ने मुझे बातों के मर्म समझने की बुद्धि दी, यूनान ऐसे देश में जन्म दिया और अफलातून ऐसा शिष्य मुझे दिया। एक दिन अटिका का राजा अलसीविडीस बड़े घमंड में भर यह दून हांक रहा था कि मेरे पास बड़ा धन है और मैं बड़े भारी राज्य का स्वामी हूं। जब सुकरात ने उस की यह घमंड को बात सुनी उस्से कहा, अलसीविडोस, तनिक इधर आ और भूगोल के नक्शे की ओर ध्यान कर, और बता तेरा राज्य अटिका कहां पर है। जब उस ने नक्शे को देखा, घमंड के नशे में जो चूर चूर था सब उतर गया और उस को आंख खुल गई। सिर नीचा कर कहा कि मेरा मुल्क यूनान जो संपूर्ण यूरोप का एक छोटा सा देश है उस का भी एक अत्यन्त छोटा प्रदेश है। उस की यह बात सुन सुकरात ने कहा, तो ए प्यारे, फिर क्यों इतनी दून की हांक रहा है? घमंड बहुत बुरा होता है; सर्व शक्तिमान जगदीश्वर के करतब से हम

भूमंडल पर एक से एक चढ़ बढ़ कर पड़े हैं, उन के सामने तू किस गिनती में है ? थोड़े दिन बाद यूनान के बहुत से अत्याचारी निष्ठुर मनुष्यों ने ईर्ष्या से उनहत्तरवें वर्ष में सुकरात पर यह दोष लगाया कि यह बुड्ढा असीना नगर के नव युवा लोगों को बुरे चालचलन की ओर रुजू करता है, उन के बाप दादाओं के पुराने वर्त्ताव और मत से हटा कर उन्हें नास्तिक बनाया चाहता है और उन के देवी देवताओं की निन्दा करता है। इन दोषों के कारण वह अदालत के सपुर्द हुआ। अदालत ने इसे विष पीकर मर जाने को सजा तजवीज की। उस निर्दोषी पर प्राणान्त दण्ड की सजा का हुकुम सुन जब सब उस के बन्धु भाई और मित्र बिलाप कर और पछता रहे थे, सुकरात अत्यन्त धैर्य के साथ विष का प्याला उठा कर घूंट गया और अपने मरने तक सबों को सदुपदेश देता रहा। जब विष इस के सर्वाङ्ग में व्याप्त हो गया, यहां तक कि बोल भी न सकता था, तब इस ने आंख बन्द कर ली और सिधार गया।

महाराजाधिराज नैपोलियन का जीवनचरित्र।

९ वीं जनवरी सन् १८७३ ई० को बारह बज के २५ मिनट पर महाराजाधिराज ३ नैपोलियन ने इस असार संसार को त्याग किया। जो मनुष्य मरने के अढ़ाई वर्ष पूर्व एक प्रधान देश का राजा और संसार के सब मनुष्यों में मुख्य वीर और बुद्धिमान था और पांच लाख योद्धा जिस के साथ चलते थे और जिस ने एक सामान्य मेला किया था उस में सारे संसार के राजा

और महाराज दौड़े आए थे, वही नैपोलियन इङ्गलैण्ड के एक गांव में एक छोटे घर में मरा ! ! ! इस से बढ़ के और क्या दुःख होगा कि जिस के एक लेख में रूम और रूस के महाराज पारिस की गलियों में दौड़ते थे उस के शव के साथ वही ग्राम निवासी लोग ! ! ! क्यों धन के अभिमानियो ! तुम अब भी अपने धन का अभिमान करोगे और अपने से छोटों को दुःख देने में प्रवर्त्त होगे ? यह वही नैपोलियन है जिस का दादा ऐसा प्रतापी था जिस ने सारे यूरप को हिला दिया था और सब अंगरेज़ों को दांतों चने चबवा दिए थे। जर्मनी के युद्ध में नैपोलियन पराजित हुआ इस का कुछ शोच नहीं, क्योंकि जिस काल में नैपोलियन के स्थान का वा उस की समाधि का वा उस युद्धस्थान का भी चिन्ह भी न मिलैगा उस समय तक उन का नाम वर्त्तमान रहेगा।

महाराज नैपोलियन चिजिलहर्स्ट नामक स्थान में गाड़े गए। उस समय बोनापार्ट के वंश के सब लोग और पारिस के समस्त शिल्पविद्या के गुणियों का समाज विमान के आगे था। लार्डसाइडनी और लार्डस्फोल्ड महारानी विक्टोरिया और युवराज की ओर से आए थे और पचास सहस्र मनुष्य केवल कौतुक देखने को एकत्र थे और राजकुमार और विधवा महारानी भी साथ थीं। शव को समाधि करने के पीछे बोनापार्ट के वंश के सब लोगों ने राजकुमार को पिता के स्थानापन्न भाव से वन्दना किया। इङ्गलैंड रूस इत्यादि सब राजकीय कार्य्यालय दस दिवस तक शोक भेष में रहे।

हम को लिखने में अत्यन्त खेद होता है कि पृथ्वी पर का एक

महा विख्यात पुरुष समाप्त हुआ। इस मनुष्य को सब आयुष्य प्रारम्भ से अंत तक चमत्कारित और फेरफार की एक विलक्षण शृङ्खला थी। कुछ काल तक राजा और कुछ काल तक रंक, सांप्रत के सब पराक्रमी राजा उस का आदर करते थे, तो क्या अब उस को तुच्छ मान कर उस की अप्रतिष्ठा करनी चाहिए ?

यद्यपि वे राजसिंहासन पर न थे और इंग्लैण्ड में केवल एक साधारण मनुष्य के समान रहते थे तथापि उन के मरण की दुःख-वार्त्ता श्रवण कर के राजकीय और राजसभा के अधिकारियों के चित्त अवश्य चकित होंगे और फ्रांस के राज्य प्रबंधों में इन के मृत्यु से कुछ विलक्षण फेरफार होगए। यह नेपोलियन फ्रैन्च लोगों के मुख्य महाराज थे। और इन को तीसरे नेपोलियन कहते थे और बड़े नैपोलियन बोनापार्ट के भतीजे थे। इन का जन्म २० अप्रैल सन् १८०८ में फ्रांस देश में हुआ था और इन के पिता का नाम लुई बोनापार्ट था, जो लालैंड के महाराज थे। जब यह सात वर्ष के हुए थे तब प्रथम नैपोलियन का अंत का पराभव हुआ था। अनंतर इन को और इन के माता को फ्रांस छोड़ कर के अन्य देश में जाना पड़ा। इन्हों ने स्विटज़रलैंड में विद्याभ्यास आदि किया। पीछे इन को वहां की सेना में रहने की आज्ञा मिली। कुछ दिवस पर्य्यन्त थन सरोवर के तट के तोपखाने में अभ्यास किया। तद्-नन्तर सन् १८३० में फ्रांस देश में राज्य संबंधी हलचल देखकर के फिर अपने स्वदेश में आने का उद्योग किया। परंतु वह सफल न हुआ; उलटी सीमा के बाहर रहने की आज्ञा हुई। एक वर्ष के अनंतर स्विटज़रलैण्ड छोड़ कर के टस्कनी में जाकर रहना पड़ा और

रोम के युद्ध में मिल गए। इतने में उन के ज्येष्ठ भ्राता का देहांत हुआ। फिर वहां से निकल कर इंगलैंड में जाकर रहे। सन् १८३२ से सन् १८३५ पर्य्यंत काल ग्रंथ लिखने में व्यतीत किया। इसी काल में उन के चचेरे भाई, प्रथम नैपोलियन के पुत्र नैपोलियन की सहायता करके उसे दूसरा नैपोलियन कहला कर राजसिंहासन पर बैठावें, फ्रांस देश के कई एक मुख्य निवासियों के चित्त में यह बात आई थी। फ्रांस के सीमा तक आगमन की इच्छा करते थे तो इतने में उन का भी देहांत हुआ, इस्से फ्रांस के राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार उक्त नैपोलियन को प्राप्त हुआ और वह संपादन करने का विचार उन के चित्त में आया। सन् १८३६ पर्य्यन्त प्रयत्न कर के स्ट्रासवर्ग पर चढ़ाई किया, परंतु यह प्रयत्न सफल न होकर आप ही पकड़े गए। अंत में पारिस में उन को ले गए। उन की माता और दूसरे महाशयों के उद्योग से इन का प्राण बचा और ये युनाइटेड स्टेट्स के पास भेजे गए। वहां एक दो वर्ष रहकर स्विटज़रलैंड में लौट आए, तो वहां उन के माता का देहांत हुआ। सन् १८३८ में उन की अनुमति से एक महाशय ने स्ट्रासवर्ग के चढ़ाई का वर्णन लिखा, इस से फ्रेंच सरकार को बड़ा खेद हुआ और उक्त महाशय को दंड दिया और नैपोलियन को स्विटज़रलैंड से निकाल देने के हेतु वहां के सरकार को लिख भेजा। परंतु नैपोलियन आपही स्विटज़रलैंड छोड़ कर पुनः इंगलैण्ड में गए। वहां दो वर्ष रहकर सन् १८४० में फ्रांस का राज्य मिलने के हेतु प्रयत्न करते रहे और बीलोन पर चढ़ाई किया, परंतु वह भी प्रयत्न निष्फल हुआ और पकड़े गए और इन के सहकारी जितने मनुष्य थे सभों को जन्म भर के हेतु

वहां के दुर्ग में कारागार हुआ। इस दुर्ग में छः वर्ष पर्य्यंत रहे। अनंतर सन् १८४६ के मई महीने के २५ वीं तारीख को अपूर्व वेश धारण कर के बेलजम में भाग कर फिर इंगलैंड में गए। सन् १८४८ के फ्रांस के युद्ध तक वहां रहे। इस युद्ध के समय फ्रांस के निवासियों ने इन को न्याश्नल असेम्ब्ली का सभासद नियत किया. तदनन्तर उन्हीं महाशयों ने इन को अध्यक्ष नियत किया। तारीख २ दिसम्बर सन् १८५१ को उन्हों ने कई महाशयों के विचार से और पारसी के सर्व प्रसिद्ध राजकीय महाशयों को घेर कर कारागार में डाल दिया और न्याश्नल असेम्ब्ली को तोड़ कर के स्वतः मुख्याधिकारी डिक्टेटर नाम से आप प्रसिद्ध हुए। कुछ सेना मार्ग में रख कर प्रबंध किया। नगर का प्रवन्ध करने के अनन्तर सकल देश का हम को दस वर्ष अध्यक्ष का अधिकार मिला यह प्रसिद्ध किया और उन्हीं के इच्छानुसार सब अधिकार उन को प्राप्त हुआ और उन्हों ने फ्रेंच लोगों की सम्मति से तारीख २ दिसम्बर सन् १८५२ को अपने को महाराज तीसरा नैपोलियन कहवाया।

इंग्लेण्ड के सरकार ने प्रथम उन को मान्य किया और पश्चात् यूरोपियन सब राजाओं ने धीरे धीरे उन को फ्रेंच का महाराज कहना स्वीकार किया। सन् १८५३ के जनवरी की १३ तारीख को उन्हों ने विवाह किया। तदनंतर १८५४ में रशिया के युद्ध का आरंभ हुआ और सन् १८५६ में समाप्त हुआ। इस युद्ध से उन को बड़ी प्रतिष्ठा हुई। सन् १८५९—६० इस वर्ष में उन्हों ने विक्टर इमानुअल की सहायता कर के इटली को आस्ट्रिया के अधिकार से निकाल कर स्वतंत्र किया और आस्ट्रिया का पराभव करने से,

उन की और भी विशेष प्रतिष्ठा बढ़ी और उन को कुछ देश भी इसी कारण मिला। इसी समय में महाराज नैपोलियन ने अत्युच्च पद की प्राप्ति किया, यह समझना चाहिए। तदनंतर मेक्सिको में इन्हों ने प्रयत्न और लड़ाई करके अपना राज्य स्थापन किया, परन्तु इस का परिणाम अत्यन्त दुःखकारक हुआ। अंत में सन् १८७० में प्रशिया और उन के युद्ध का आरम्भ होकर इन का भली भांति पराभव ता० २ सेप्टेंबर सन् १८७० में हुआ। तदनंतर कुछ दिवस जरमनी के दुर्ग में बद्ध रह कर छूट गए। पश्चात् इंग्लेण्ड में आए और अपनी रानी और पुत्र चिरंजीव प्रिन्स नैपोलियन यह सब तारीख २० मार्च सन् १८७१ को एकत्र हुए। इस पुत्र का जन्म ता० १६ मार्च सन् १८५६ में हुआ था। अंत का समय उन का साधारण मनुष्य के समान परदेश में और परराष्ट्र में व्यतीत हुआ। उन को कई दिन से रोग हुआ, पर शास्त्रोपाय बहुत करते थे, परन्तु उस से कुछ न्यून न हुआ और बहुत कृष्ट हो गए। तारीख ६ को दिन के साढ़े बारह बजे उन का देहांत हुआ। जब ये राज-सिंहासन पर थे इन्हों ने रोम के प्रथम प्रख्यात महाराज जुलियस-सीज़र का इतिहास लिखा। इन सब वृत्तान्त से स्पष्ट विदित होगा कि इन को जन्म भर फ़ेरफार उलट पुलट करते व्यतीत हुआ; उन को भली भांति स्वस्थता कभी नहीं हुई थी। प्रशियन लोगों से इन का पराभव होने तक सर्व पृथ्वी में इधर दश वर्ष पर्य्यन्त इन के समान बुद्धिमान और वीर सर्व सामान्य गुणयुक्त दूसरा पुरुष नहीं हुआ। ऐसा लोग कहते हैं कि इन को शीघ्र इस दशा में पहुंचने का मुख्य कारण यही है कि इन से कोई परोप-

कार नहीं हुआ और इन के हाथ जेनरल वाशिंगटन के समान निष्काम और परोपकार से रहित थे और अपनी बुद्धि से कोई उत्तम कृत्य नहीं किया इसी कारण इन की कीर्त्ति का उदय और अस्त अन्तकाल में हुआ तथापि यह मनुष्य अति उच्च पद को प्राप्त कर के पतन हुआ और परिणाम अत्यन्त खेदजनक हुआ। इस से सकल मनुष्यों को खेद हुआ यह वार्ता प्रसिद्ध है।

महाराज जंगबहादुर का जीवनचरित्र।

श्रीमन्महाराज जंगबहादुर का वैकुण्ठवास होना सब पर विदित है और बहुत से समाचारपत्रों में यह समाचार प्रकाश हो चुका है, परन्तु हमारी लेखनी इस शोच से काले आंसुओं से न रुदन करै यह चित्त नहीं सहन कर सकता। बादशाह रंजीत सिंह को सब लोग भारतवर्ष का अंतिम मनुष्य कहते थे, परंतु महाराज जंगबहादुर ने अपने अमेय बल से उन्हीं लोगों से यह कह-

लाया कि महाराज जंगबहादुर भी हिन्दुस्तान में एक मनुष्य हैं। पूर्वोक्त महाराज ने १८७७ फरवरी की पचीसवीं तारीख को वीर प्रसू भारतभूमि को पुत्रशोक दिया। यों तो अनेक जननी यौवन-कुठार नित्य जनमते और मरते ही हैं, पर यह एक ऐसा पुरुष मरा कि भारतवर्ष के सच्चे हितकारी लोगों का जी टूट गया। भादों की गहरी अंधेरी में एक दीप जो टिम २ कर के झिलमिला रहा था वह भी बुझ गया। क्या इस अभागिन भारतमाता को फिर ऐसे पुत्र होंगे? नीति के तो मानो ये मूर्तिमान अवतार थे। ऐसे प्रदेश में रह कर जो चारो ओर भिन्न भिन्न राज्यों से घिरा हो, स्वामी की उन्नति साधन करते हुए आस पास के कठिन महाराजों को प्रसन्न रखना नीति सूत्र के परम चतुर सूत्रधार का काम है। हम लोगों के भाग्य ही ऐसे हैं; यह रोना कहां तक रोएं।

पूर्वोक्त महाराज प्रतिवर्ष की भांति दौरा करते हुए शिकार खेलते थे कि एकाएक सुगौली में जो पहुंचे तो रोगाक्रान्त हो गए। कहते हैं कि उबान्त और दस्त होने से एक साथ बहुत व्याकुल हो गए और उसी समय कहारों को आज्ञा दी कि बाघमति गङ्गा पर पालकी ले चलो। बड़ी महारानी महाराज के साथ थीं और उन्हों ने अत्यन्त सावधानी से अपने जगत् विख्यात प्राणपति की उभयलोकसाधिनी अन्तिम सेवा की। कहारों के बदले पालकी क्षत्रियों ने उठाई थी। जब नदी पर सवारी पहुंची तब दानादिक कर के महाराज ने इस असार संसार का त्याग किया। उन के भाई जनरल रणोद्दीप सिंह बहादुर उसी समय काठमांडू गए और महाराज से एकान्त में यह शोक समाचार

कहा। महाराजाधिराज ने उसी समय उन को महाराजगी का पद और उन के भाई को जो जो अधिकार प्राप्त थे सब दिए। महाराज रणोद्दीप सिंह ने बाहर आकर चालीस हज़ार सेना में से बीस हज़ार को बाहरी और सीमा के प्रान्तों पर और बीस हज़ार को नगर के चारो ओर उपस्थित रहने की आज्ञा दिया जिस से किसी प्रकार के उपद्रव की शंका न हो। इस सेना भेजने की आज्ञा केवल स्वकीय रक्षा के निमित्त थी। राजधानी में दो दिन तक यह समाचार छिपा रहा, दूसरी रात्रि को एक साथ यह वज्रपात सा समाचार नगर में फैल गया जिस से सारी राजधानी में महा हाहाकार फैल गया। महाराज के संग एक बड़ी रानी और दो छोटी रानी अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक सती हुईं। कहते हैं कि जिन रानियों से विशेष प्यार था और सदा महाराज के साथ सती होना प्रकाश करती थीं वे न सती हुईं और इन दोनों छोटी रानियों से प्रकाश में प्रेम विशेष नहीं था और ये सती हुईं। कहां हैं और देश की स्त्रियां, आवैं, और आंख खोल कर भारतभूमि का प्रेम और पातिव्रत देखैं और लाज से सिर झुका लैं।

—:o:—

जज्ज द्वारकानाथ मित्र का जीवनचरित्र।

स्वर्गीय आनरेबुल द्वारकानाथ मित्र ने सन् १८३१ में हुगली ज़िला के अन्तर्गत आंपता से एक कोस दूर अगुनाशी गांव में एक साधारण हुगली और हवड़ा की कचहरी के मुख्तार विश्वनाथ मित्र के घर जन्म लिया था। बंगाली पाठशाला और हुगली ब्रांच स्कूल में पढ़कर हुगली कालेज में इन्हों ने अंगरेज़ी विद्याध्ययन कर के

अपनी बुद्धि के चमत्कार से सब शिक्षकादिकों को अचंभित किया। ये अंगरेज़ी भाषा की पारङ्गतता के अतिरिक्त हिसाब किताब भी बहुत अच्छी भांति जानते थे। हुगली कालेज से ये हिन्दू कालेज में आए, जब इन के शील, औदार्य, चातुर्य, स्वातन्त्र्य इत्यादि गुण सब छोटे बड़े के चित्त पर भली भांति खचित हो गए थे। हुगली कालेज में मुख्य छात्र वृत्ति पाना तथा अपने पहिले ही लेख पर पारितोषिक पाना, कौन्सल आफ एजुकेशन के रिपोर्ट में इन की स्थिति का लिखा जाना, और कलकत्ता युनिवर्सिटी के फेलोशिप के हेतु इन का चुना जाना ही इन के गुणों और विद्या का प्रत्यय देता है। एक कानूनी मनुष्य के पुत्र होने के कारण इन को चित्त-वृत्ति एक साथ कानून की ओर फिरी और उस में योग्य क्षमता पाकर सन् १८५६ में ये वकीली की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और उसी वर्ष के मार्च में अपना वर्त्तमान इन्टरप्रिटर का पद छोड़ कर इन्हों ने सदर कचहरी में वकीली करना आरंभ किया। इन्हों ने केवल अपने व्यय से एक औषधालय नियत किया और द्रव्यहीन छात्रों को उत्तम परीक्षा होने तक सहायता करते थे और इन के सत्य-प्रियता, निष्पक्षपातिता, दीनों पर दया, मुकद्दमों के सूक्ष्म भावार्थों की समुझ और कार्य में चातुर्य इत्यादि गुण हाकिमों से लेकर चपरासियों तक विदित हो गए थे। और जज्ज लोग इन को विवाद की जड़ समझने और समझाने से बहुत ही प्यार करते थे। विशेष कर के आनरेबुल पण्डित शंभूनाथ अपनी वकीली से लेकर के जज्ज होने की अवस्था तक इन्हें बहुत प्यार करते थे। ठकुरानी दासी के कर-सम्बन्धी बड़े मुकद्दमे में १५ जज्जों के फुलबेंच के

सामने मिस्टर डाइन ऐसे प्रसिद्ध वकील और अनेक अंगरेज़ वकीलों को सात दिन तक अनवरत वाग्धारा वर्षण से और कानून सम्बन्धी सूक्ष्म बातों की झर से परास्त कर के हिन्दू वकीलों में इन्हों ने चिरकीर्त्ति का ध्वज स्थापित किया और गवर्नमेंट की इन पर विशेष दृष्टि से उस समय में जब कि इन की आमदनी एक लाख रुपये साल की थी, ये गवर्नमेंट के मुख्य वकील हुए। और पण्डित शंभूनाथ के मृत्यु पर सन् १८६७ में ये बिना इच्छा किये भी जस्टिस पीकाक की प्रार्थनानुसार गवर्नमेंट से प्रधान जज्ज नियत किये गये और विचारासन पर बैठ कर जैसी योग्यता और शुद्ध चित्त से सावधान होकर इन्हों ने काम किया वह हिन्दू-समाज में चिरस्मरणीय है। जस्टिस पीकाक के अतिरिक्त कोई जज्ज इन की योग्यता के तुल्य नहीं गिने जाते थे और एक व्यभिचा-रिणी के दाय भाग के बड़े मुकद्दमे के समय बीमार होकर सात बरस जज्जी का काम करके अपने ग्राम में अपनी वृद्धा माता, तीसरी स्त्री, दो बालक और दो विवाहिता बालिका को छोड़ कर ये भारतवर्ष को शून्य कर के अपनी ४३ वर्ष की अवस्था में ता० २५ फेब्रवरी १८७४ बुध के दिन परलोक को सिधारे।

श्री राजाराम शास्त्री का जीवनचरित्र।

श्रीयुत् पण्डितवर राजाराम शास्त्री वेद श्रौतादि विविध विद्यापारीण श्रीयुत् गोबिंदभट्ट कार्लेकर के तीन पुत्रों में कनिष्ठ थे। जब ये दस वर्ष के लगभग थे तब इन के पितृचरण परलोक को सिधारे। फिर त्रिलोचन घाट पर एक ऋषितुल्य महातपस्वी

श्रीयुत् रानडोपनामक हरिशास्त्री विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, उन के पास इन्हों ने अपनी तरुण अवस्था के प्रारंभ में काव्य और कौमुदी पढ़ कर आस्तिकनास्तिकोभयविध द्वादश दर्शनाचार्यवर्य परम मान्य जगद्विदित कीर्त्ति श्रीयुत् दामोदर शास्त्री जी के पास तर्कशास्त्राध्ययन प्रारम्भ किया। थोड़े ही दिनों में इन की अति लौकिक प्रतिभा देख कर इन को उक्त शास्त्री जी महाशय ने अपनी वृद्ध अवस्था के कारण पढ़ाने का आयास अपने से न हो सकेगा, जान कर श्रीमान् कैलास निवास परमानंदनिमग्न दिगङ्गनाविख्यातयशोराशि प्रसिद्ध महा पण्डितवर्य श्रीयुत् काशीनाथ शास्त्री जी के जिन के नाम श्रवणमात्र से सहृदय पंडितवर समूह गद्‌गद होकर सिर डुलाते हैं स्वाधीन कर दिया। और इन के प्रतिभा का अत्यन्त वर्णन कर के कहा कि मैं यह एक रत्न आप को पारितोषिक देता हूं जो आप के सुविस्तीर्ण शाखाकांडमंडित कुसुमचयाकीर्ण यशोवृक्ष को अपनी यशश्चन्द्रिका से सदा अम्लान और प्रकाशित रक्खेगा। फिर इन्हों ने उक्त महाशय के पास व्याकरणादि विविध शास्त्र पढ़ कर चित्रकूट में जाकर उत्तम २ पंडितों के साथ विप्रतिपत्तियों में अत्युत्तम प्रतिष्ठा पाई और श्रीमन्त विनायक राव साहेब ने बहुत सन्मान किया। फिर जब संस्कृतादिक विविध विद्या कलादि गुण-गण मंडित श्रीमान् जान म्यूर साहब श्री काशी में आए और पाठशाला में विविध विद्या पारंगम पण्डिततुल्य विद्यार्थियों की परीक्षा ली तब उक्त शास्त्री जी महाशय के विद्यार्थियों में इन की अद्भुत प्रतिभा और अनेक शास्त्रोपस्थिति देख प्रसन्न होकर केवल इस अभिप्राय से कि ऐसे उत्तम पण्डित रत्न का

अपने पास रहना यशस्कर है और आजिमगढ़ के जिले में उक्त साहेब महाशय प्राड्विवाक थे इस लिये कहीं कहीं हिन्दू धर्म शास्त्र के अनुसार निर्णय करने के विमर्श में और उन को बनाई हुई अनेक सुन्दर सुन्दर कविता के परिशोधन में सहायता के लिए इन को अपने साथ ले गए। उन के साथ चार पांच वर्ष के लगभग रह कर ग्वालियर में गए, वहां बहुत से उत्तम २ पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ में परम प्रतिष्ठा और राजा की ओर से अत्युत्तम सन्मान पूर्वक विदाई पाकर संवत् १९१२ के वर्ष में काशी में आए। तब यद्यपि विधवोद्वाहशङ्कासमाधि अर्थात् पुनर्विवाह खण्डन श्रीमान् परम गुरु श्री काशीनाथ शास्त्री जी तैयार कर चुके थे तथापि उस को इन्हों ने अपूर्व २ अनेक शंका और समाधानों से पुष्ट किया। इसी कारण उक्त शास्त्री जी महाराज ने अपने नाम के पहिले इन्हीं का नाम उस ग्रन्थ पर लिख कर प्रसिद्ध किया। संवत् १९१३ के वर्ष में श्रीमान् यशोमात्रा विशेष वालण्टेन साहेब महाशय ने सांख्यशास्त्राध्यापन के कार्य्य में इन को नियुक्त किया। उस कार्य पर अधिष्ठित होकर सपरिश्रम पाठन आदि में अनेक विद्यार्थियों को ऐसे व्युत्पन्न किया जिन की सभा में तत्काल अपूर्व कल्पनाओं को देख कर प्राचीन प्रतिष्ठित पण्डित लोग प्रसन्न हो कर श्लाघा करते थे। संवत् १९२० के वर्ष में राजकीय श्री संस्कृत पाठशालाध्यक्ष श्रीमान् ग्रिफिथ साहेब महाशय ने इन को धर्मशास्त्राध्यापक का पद दिया। तब से बराबर पढ़ा २ कर शतावधि विद्यार्थियों को इन्हों ने उत्तम पण्डित किया, जो संप्रति देशदेशान्तर में अपने २ विद्यार्थि गण को पढ़ा कर इन की कीर्त्ति को

आसमुद्रांत फैला रहे हैं। कुछ दिन हुए श्रीमान् नन्दन नगर की पाठशाला के संस्कृताध्यापक मोक्षमूलर साहिब महाशय की बनाई हुई अंगरेजी और संस्कृत व्याकरण की पुस्तक का परिशोधन और कई स्थलों में परिवर्तन किया था, जिस से उक्त साहिब महाशय ने अति प्रसन्न हो कर इन की कीर्त्ति अनेक द्वीपान्तर निवासियों में विख्यात की, यहां तक कि जब उन्हों ने अपने पुस्तक की द्वितीयावृत्ति छपवाई तब उस की भूमिका में लिखा है कि इन के समान संस्कृत व्याकरण जानने वाला इस द्वीप में तो क्या संसार भर में दूसरा कोई नहीं है। वे उक्त पण्डित वर राजाराम शास्त्री संप्रति पांच चार वर्ष से विरक्त हो कर योगाभ्यास में लगे थे और अपने दीन बांधवों का पोषण और दीन विद्यार्थी प्रभृति के परिपालन ही के हतु अर्जन करते थे और आप साधारण ही वृत्ति से जीवन करते हुए मठ में निवास करते थे। संवत १९३२ श्रावण शुक्ल १२ के के दिन संन्यास लेकर उसी दिन से अन्न परित्याग पूर्वक परमार्थ का अनुसन्धान करते २ मरण काल से अव्यवहित पूर्व तक सावधानता पूर्वक परमेश्वर का ध्यान करते २ भाद्रपद कृष्ण ३ गुरुवार को प्रातःकाल ९ बजते २ परमपद को प्राप्त हो कर यशोमात्रावशिष्ट रह गए।

लार्ड म्योसाहिब का जीवनचरित्र।

हा! यह कैसे दुःख की बात है कि आज दिन हम उस के मरण का वृत्तान्त लिखते हैं जिस की भुजा की छांह में सब प्रजा सुख से काल क्षेप करती थी और जो हम लोगों का पूरा हित-

कारी था। ऐसा कौन है जो इस को पढ़कर न कम्पित होगा और परम शोक से किस की आंखों से आंसू न बहेंगे? मनुष्य की कोई इच्छा पूरी नहीं होने पाती और ईश्वर और ही कुछ कर देता है। कहां युवराज के निरोग होने के आनन्द में हम लोग मग्न थे और कैसे कैसे शुभ मनोरथ करते थे, कहां यह कैसा विज्जुपात सा हाहाकार सुनने में आया। निस्सन्देह भरतखंड के वृत्तान्त में सर्व्वदा इस विषय को लोग बड़े आश्चर्य और शोक से पढ़ेंगे और निश्चय भूमि ने एक ऐसा अपूर्व्व स्वामी खो दिया जैसा फिर आना कठिन है। तारीख १२ को यह भयानक समाचार कलकत्ते में आया और उसी समय सारा नगर शोकाक्रान्त हो गया।

गुरुवार ८वीं तारीख को श्रीमान् लार्ड म्यौ साहिब पोर्ट ब्लेयर उपद्वीप में ग्लासगो नामक जहाज़ पर आए और ढाका और नेमिसिस नाम के दो जहाज़ और भी संग आए और साढ़े नौ बजे उन टापुओं में पहुंचे और ग्यारह बारह के भीतर श्रीमान् ने वर्मा के चीफ कमिश्नर इत्यादि लोगों के साथ कैदियों की बारक गोराबारिक और दूसरे प्रसिद्ध स्थानों को देखा। उस समय श्रीमान् की शरीर रक्षा के हेतु बहुत से सिपाही, कांस्टेब्ल और गार्ड बड़ी सावधानी से नियत किए गए और थोड़ी देर जेनरल स्टुअर्ट साहिब की कोठी पर ठहर कर सब लोग जहाज़ों को फिर गए। अढ़ाई बजे सब लोग फिर उतरे और इन टापुओं के लोगों का स्वभाव जानकर सब लोग बड़ी सावधानी से चले और बड़े यत्न से सब लोग श्रीमान की रक्षा करते रहे। उस समय श्रीमती लेडी

म्यौ और सब स्त्रियां ग्लासगो जहाज़ पर ही थीं। ये लोग अ
दीन और ऐडो होते हुए बाइयर टापू में पहुंचे। यह स्थान रा
के टापू से ढाई कोस है और यहां १३०० कैदी रहते हैं, जो अ
बुरे कर्म्मों से काले पानी भेजे गए हैं। भय का स्थान समझ
कांस्टेबल् और सरकारी पलटन रक्षा के हेतु संग हुई और जे
खाना इत्यादि स्थानों को देख कर चथाम टापू में गए और व
कोयले की खान देख कर फिर जहाज़ पर फिर आने का विच
करने लगे। अब ५ बजने का समय आया और सब लोग जहा
पर जाने को घबड़ा रहे थे कि श्रीमान् ने कहा कि हम लोग हिरो
की पहाड़ी पर चढ़ें और वहां से सूर्य्यास्त की शोभा देखैं। य
पहाड़ी इसी टापू में है और इसके ऊपर कोई बस्ती नहीं है, पर
नीचे होप टौन नामक एक छोटी बस्ती है, जिस में कुछ कैदी का
करने वाले रहते हैं। यद्यपि सबेरे ऐसा लोगों ने सोचा था
समय मिलैगा तो इस पहाड़ी पर जायंगे, पर ऐसा निश्चय न
था और न वहां कुछ तयारी थी। ऐलिस साहिब इस पहाड़ी प
नहीं चढ़े और यहां पलटन के न होने से चथाम से पलट
बुलाई गई कि वह श्रीमान् की रक्षा करै और वहां से आ
कांस्टेबल् रक्षा के हेतु संग हुए। श्रीमान् एक छोटे टट्टू पर चल
थे और सब लोग पैदल थे। ऊपर बहुत से ताड़ और सुपारी
पेड़ों से स्थान घना हो रहा था और चोटी पर पहुंच कर श्रीमा
पाव घंटे तक सूर्य्यास्त की शोभा देखते रहे। यद्यपि सूर्य्यास
हो चुका था, पर ऊपर प्रकाश इतना था कि नीचे की घाट
दिखाती थी और अंधकार होता जान कर सब लोग नीचे उतर

लगे। मार्ग में केवल दो छुटे हुए कैदी मिले और उन लोगों ने कुछ विनती करना चाहा। पर जेनरल स्टुअर्ट ने उन को टोका और कहा कि जब श्रीमान् स्वस्थ रहें तब आओ। इन के अतिरिक्त और कोई मार्ग में नहीं मिला। कप्तान लकउड और कौंट बाल्गास्टन आगे बढ़ गए थे और एक चट्टान पर बैठे उन लोगों का मार्ग देखते थे। इस समय अंधेरा हो गया था, परन्तु कुछ मार्ग दिखाई देता था और उन लोगों ने केवल कुछ मनुष्यों को पानी ले जाते देखा और कोई नहीं मिला। श्रीमान् सवा सात बजे नीचे पहुंचे और उस समय सम्पूर्ण रीति से अंधेरा हो गया था और एक अफसर ने मशाल लाने की आज्ञा दिया इस से कई मनुष्य भी संग के उन को बुलाने के हेतु दौड़ गए। जब कैदियों के झोपड़े के आगे बढ़े, जेनरल स्टुअर्ट एक ओवर्सियर को आज्ञा देने के हेतु पीछे ठहर गए और श्रीमान् आगे बढ़ गए। उस समय श्रीमान् के आगे दो मशाल और कुछ सिपाही थे और उन के प्राइवेट सेक्रीटरी मेजर बर्न और जमादार भी कुछ दूर हो गए थे और कलनल जरवस और मि० हाकिन और मि० एलिन भी पीछे छूट गए थे कि इतने में एक मनुष्य उन के बीच से उछला और श्रीमान् को दो छुरी मारी, जिस में से पहिली दहिने कन्धे पर और दूसरी बांए पर लगी। यह नहीं जाना गया कि वह किस मार्ग से वहां आया, क्योंकि चारो ओर लोग घेरे थे। पर ऐसा अनुमान होता है कि चट्टानों के नीचे छिप रहा था। श्रीमान् चोट लगते ही उछले और पास ही पानी के गड्हे में गिर पड़े। यद्यपि लोगों ने उन को उठाकर खड़ा किया, पर ठहर न सके और तुरत फिर गिर पड़े। उन

के अन्त के शब्द यह हैं " They've hit me Burne" " बर्न उन लोगों ने मुझे मारा " और फिर जो दो एक शब्द कहे वह समझ न पड़े और उन के शरीर को लोग उठाकर जहाज़ पर लाने लगे, परन्तु श्रीमान् तो पूर्वही शरीर त्याग कर चुके थे और वीरों की उत्तम गति को पहुंच चुके थे। उस दुष्ट को अर्जुन सिंह नामक क्षत्रिय ने बड़े साहस से पकड़ा। कहते हैं कि उस ने पहिले तो उस हत्यारे के मुख पर अपना दुपट्टा डाल दिया और फिर आप उस पर एक साहिब की सहायता से चढ़ बैठा और फिर तो सब लोगों ने उस को हाथों हाथ पकड़ लिया और यदि उस समय विशेष रक्षा न की जाती तो लोग क्रोधावेश में उस को मार डालते। कहते हैं कि जिस समय उन का शरीर जहाज़ पर लाए हैं उस समय अनवर्त्त रुधिर बहता था। जब श्रीमान् का शरीर ग्लासगो पर लाए उस समय लेडी म्यो के चित्त की दशा सोचनी चाहिये! हा! कहां तो वह यह प्रतीक्षा करती थीं कि प्यारा पति फिर के आता है, अब उस के साथ भोजन करेंगे और यात्रा का वृत्तान्त पूछेंगे, कहां उस पति का मृतक शरीर समय आया। हाय हाय! कैसा दारुण समय हुआ है!! परन्तु वाह रे इन का धैर्य्य कि उसी समय शोक को चित्त में छिपा कर सब आज्ञा उसी भांति किया जैसी श्रीमान् करते थे। जब यह समाचार कलकत्ते में १२ वीं तारीख को पहुंचा उसी समय आज्ञा हुई दुर्गध्वज अधोमुख हो और ३६ मिनिट पर सायंकाल तोप छुटें। कानून के अनुसार लार्ड नेपियर गवर्नर जेनरल हुए और उसी टापू से एक जहाज़ उन के लाने को भेजा गया और श्रीमान् के

भाई भी फेर बुला लिए गए, परन्तु लार्ड नेपियर के आने तक आनरेब्ल स्ट्रेची स्थापन गवर्नर जेनरल हुए। कहते हैं कि लार्ड नेपियर १६ तारीख को चले। जिस दिन ये वहां से चले थे उस दिन सब लोग शोक वस्त्र पहरे हुए इन को बिदा करने को एकत्र हुए थे। श्रीमान् का शरीर कलकत्ते में आया और वहां से आयलैंण्ड गया। लेडी म्यौ और श्रीमान् के दोनों भाई और पुत्र तो बम्बई जायंगे, वहां से जहाज़ पर सवार होंगे, पर श्रीमान् का शरीर सीधा कलकत्ते से ग्लासगो पर जायगा।

नीचे लिखा हुआ आशय का पत्र कलकत्ते के छापे वालों को सर्कार की ओर से मिला है। आठवीं तारीख बृहस्पति के दिन श्रीमान् गवर्नर जेनरल बहादुर पोर्टब्लोर नाम स्थान पर पहुंचे और रास नाम स्थान को भली भांति निरीक्षण कर वाइपर नाम टापू में पहुंचे, जहां महा दुष्ट गण रहते हैं। स्टीवर्ट साहेब सुपरिन्टेन्डेन्ट ने श्रीमान् के शरीर रक्षा के हेतु बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था कि कोई मनुष्य निकट न आने पावे। पुलीस के व्यतिरिक्त एक विभाग पदचारियों का साथ था, परन्तु यह श्रीमान् को क्लेशकर जान पड़ता था और उन्हों ने कई बार निषेध किया। यहां से लोग चाथम में गए, जहां आरे चलते हैं और लकड़ी काटी जाती है। परन्तु यह सब कर्म पांच बजे के भीतर ही हो गया. तो श्रीमान् ने कहा कि होपटाउन प्रदेश में चल कर हरियट पर्वत पर आरोहण कर के प्रदोष काल की शोभा देखना चाहिये। यह स्थिर कर सब लोग उसी ओर चले और साढ़े पांच बजे वहां पहुंचे। थोड़े से पुलीस के सिपाही साथ में थे, क्योंकि वहां यह

आशा न थी कि कोई दुष्कर्मा मिले—वहां सब रोग ग्रसित और श्रमित लोग रहते हैं। श्रीमान् बहुत दूर पर्यंत एक टट्टू पर आरूढ़ थे और उन के सहचारी लोग भूमि पर चलते थे। हारियट पर्वत पर पहुंच कर लोगों ने किञ्चित्काल विश्राम किया और फिर तीर की ओर चले। मार्ग में दो एक श्रमित व्यक्ति मिले और श्रीमान् से कुछ कहने की इच्छा प्रकट की, परन्तु स्टीवर्ट साहेब ने उन से कहा कि तुम लोग लिख कर निवेदन करो। दो साहेब आगे थे और और लोग साथ में थे। उन लोगों के तीर पर पहुंचने के पूर्व ही अन्धकार छा गया और श्रीमान् के पहुंचते २ "मशाल" जल गए। तीर पर पहुंच कर स्टीवर्ट साहेब पीछे हट कर किसी को कुछ आज्ञा देने लगे। शेष २० गज आगे नहीं बढ़े थे कि एक दुष्कर्मी हाथ में छुरी लिये द्रुतवेग से मंडल में आया और श्रीमान् को दो छुरी मारी, एक तो वाम स्कन्ध पर और दूसरी दक्षिण स्कन्ध के पुट्ठे के नीचे। अर्जुन नाम सिपाही और हाकिन्स साहेब ने उसे पकड़ा और बड़ा कोलाहल मचा और "मशाल" बुत गए। उसी समय श्रीमान् भी या तो करारे पर से गिर पड़े वा कूद पड़े। जब फिर से प्रकाश हुआ तो लोगों ने देखा कि गवर्नर जेनरल बहादुर पानी में खड़े थे और स्कन्ध देश से रुधिर का प्रवाह बड़े वेग से चल रहा था। वहां से लोग उन्हें एक गाड़ी पर रख कर ले गए और घाव बांधा गया, परन्तु वे तो हो चुके थे। जब उन की लाश ग्लासगो नाम नौका पर पहुंची तो डाक्टरों ने कहा कि इन दोनों घाओं में एक भी प्राण लेने के समर्थ था। परन्त उस समय लेडी म्यो का साहस पशंसनीय था।

उन को अपने "राज" नाश की अपेक्षा भारतखण्ड के राज के नाश और प्रजा के दुःख का बड़ा शोच हुआ। स्टुअर्ट साहेब ने इस विषय का गवर्न्मेन्ट को एक रिपोर्ट किया है और एक सर्टिफिकेट डाक्टरों की ओर से भी गवन्मन्ट को भेजा गया है।

हा! शनिश्चर (१७ वीं) को कलकत्ते की कुछ और ही दशा थी। सब लोग अपना २ उचित कर्म परित्याग कर के विषन्नबदन प्रिन्सेप घाट की ओर दौड़े जाते थे। बालक अपनी अवस्था को विस्मृत कर और खेल कुतूहल छोड़ उस मानव प्रवाह में बहे जाते थे, वृद्ध लोग भी अपने चिरासन को छोड़ लकुट हाथ में, शरीर कांपते हुए उन के अनुसरण चले।—स्त्री बेचारी कुलमर्याद सीमा परिवद्ध उद्विग्न चित्त हो कर खिड़कियों पर बैठी युगल नेत्र प्रसारनपूर्वक अपने हितैषी, परमविद्याशाली, और परमगुणवान उपराज के मृतक शरीर के आगमन की मार्ग प्रतीक्षा करती थीं। मार्ग में गाड़ियों की श्रेणी बंध गई थी, नदी में सम्पूर्ण नौकाओं के पताका युक्त मस्तूल झुक रहे थे, मानो सब सिर पटक २ रो रहे हैं। दुर्ग से सेना धीरे २ आई और गवर्नमेन्ट हाउस से उक्त घाट पर्यन्त श्रेणी बद्ध होकर खड़ी हुई और प्रत्यक वर्ग के पुरुष समुचित स्थान पर खड़े थे। एक सन्नाटा बंध गया था कि पौने पांच बजे घाट पर से एक शतघ्नी (तोप) का शब्द हुआ और उस का प्रतिउत्तर दुर्ग और कानी नाम नौका पर से हुआ। बाजावालों ने बड़ी सावधानी से अपने २ वाद्य यन्त्रों को उठाया और कलकत्ते के वालन्टीयर्स लोग आगे बढ़े। एक तोप की गाड़ी पर इङ्गलैण्ड के राजकीय पताका से आच्छादित श्रीमान् गवर्नर

जेनरल का मृतंक शरीर शवयात्रा के आगे हुआ। उस समय लोगों के चित्त पर कैसा शोच छा गया था उस का वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा कौन पाहनचित होगा जिस का हृदय उस श्रीमान् के चञ्चल अश्व को देख कर उस समय विदीर्ण न हुआ होगा। उस के नेत्र से भी अश्रुधारा प्रवाहित होती थी। हा! अब उस घोड़े का चढ़नेवाला इस संसार में नहीं है। उस से भी शोकजनक श्रीमान् के प्रिय पुत्र की दशा थी जो कि विषन्नवदन, अधोमुख, सजलनयन, बाल खोले अपने दोनों चचा के साथ पिता के मृतक शरीर के साथ चलते थे। हा! ऐसी वयस में उन्हें ऐसी बिपद् पड़ी। परमेश्वर बड़ा विषमदर्शी दीख पड़ता है। वैसे ही मेजर वर्न भी देखे नहीं जाते थे। शोक से आंखें लाल और डबडबाई हुई थीं और अनाथ की भांति अपने स्वामी बैरन उस मित्र के शोक में आतुर थे, जिन्हें उन्हें अन्त में पुकारा और मरण समय उन्हीं का नाम लिया। हा! यह यात्रा निम्न लिखित रीति पर गवर्न्मेन्ट हाउस में पहुंची। क्वार्टर मास्टर जेनरल के विभाग का एक अश्वारोही अफसर, फर्स्ट बेंगाल कवलरी (अश्वरोही सेना) का एक भाग। कलकत्ते के वालन्टीयर्स की रफल पलटन अस्त्र उलटा लिए हुए और श्री महाराणी की १४ वीं रेजिमेन्ट का शोकसूचक बाजा बजता हुआ।

श्रीमान् का बाजा

बाडी गार्ड (शरीररक्षक) पैदल

दुर्ग और कथीड्रल गिरजा के पादरी

श्रीमान् के चापलेन

डाक्टर जे. फेअरर सी. एस. आई. करनेल डी. डिलेम

कमंडिंग

बाडी गार्ड

क. एफ. एच. ग्रेगरी

एडीकांग

डाक्ट ओ. बर्नेट

के. एच. बी. लाकउड

एडीकांग क. टी. एम जोन्स

आर. एन. एल. टी. डीन

क. आर. एच. आंट एडिकांग

सुबादार मेजर और सरदार बहादुर शिवबक्स अवस्थी

एडिकांग

क. सी. एल. सो. डी रोवक

एडिकांग

ले. सी. हाकिन्स आर. एन.

मेजर ओ. टी. वर्न प्राईवेट सेक्रेटरी।

मुख्य शोक प्रकाशक।

आनरेब्ल आर. बोर्क, आनरएब्ल टी. बोर्क, मेजर बोर्क।

श्रीमान् का विश्वासपात्र क्लर्क वा लेखक।

श्रीमान् के सेवक।

श्रीमान् के पलटन के अफसर।

श्रीमान् के एतद्देशीय सेवक।

माझी नौकास्थ लोग और ग्लासगो और डाफनी नाम नौका का तोपखाना।

उक्त नौकाओं के अफसर।

अस्मिन् कालिक गवर्नर जेनरल।

बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और श्रीमान् कमांडर इन चीफ़।

बंगाल के चीफ जस्टिस, कलकत्ते के लार्ड विशप, आर्क विशप और पश्चिम बंगाल के विकार अपस्टालिक।

श्रीमान् गवर्नर जेनरल के सभा के सभासद।

कलकत्ते के पुइन जज्ज।

सभा के अधिक सभासद।

एतद्देशीय राजे।

कनसलस जेनरल। वरमा के चीफ कमिश्नर।

अन्य देशों के कन्सल एजेन्ट।

गवर्नमेन्ट के सेक्रेटरी।

इन के पीछे और बहुत से लोग पलटन के अफसर इत्यादि और लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के साथ के लोग थे।

यद्यपि अनुचित तो है, परन्तु ऐसी शोभा कलकत्ते में कभी देखने में नहीं आई थी और ईश्वर करे न कभी देखने में आवे।

श्रीमान् का शरीर सर्वसाधारण लोगों के देखने के लिये तीन दिन पर्यन्त मारब्लहाल रक्खा गया है और सब लोग श्रीमान् का अन्त का दरबार करने वहां जायंगे।

हे भारतवर्ष की प्रजा! अपने परम प्रेमरूपी अश्रुजल से अपने उस उपराज्याधीश का तर्पण करो जो आज तक तुम्हारा स्वामी

था और जिस को बांह की छांह में तुम लोग निर्भय निवास करते थे और जो अनेक कोटि प्रजा लक्षावधि सैन्य के होते भी अनाथ की भांति एक क्षुद्र के हाथ से मारा गया और एक बेर सब लोग निस्सन्देह शोक समुद्र में मग्न हो कर उस अनाथ स्त्री लेडी म्यौ और उन के छोटे बालकों के दुःख के साथी बनो। हा! लेखनी दुःख से आगे लिखने को असमर्थ हो रही है नहीं तो विशेष समाचार लिखती। निश्चय है कि पाठकजन इस असह्य दुःख रूपी वृत्त को पढ़ कर विशेष दुःखी होने की इच्छा भी न रक्खैंगे।

श्रीमान् स्वर्गवासी के मरण पर लोगों ने क्या किया।

जिस समय यह शोक रूपी वृत्त श्रीमती महाराणी को पहुंचा श्रीमती ने लेडी म्यौ और वर्क साहेब को तार भेजा कि हम तुम लोगों के उस अपार दुःख से अत्यन्त दुःखी हुए और हम तुम लोगों के उस दुःख के साथी हैं जो श्रीमान् लार्ड म्यौ के मरने से तुम पर पड़ा है। सेक्रेटरी आफ स्टेट ने भी इसी भांति स्थानापन्न गवर्नरजेनरल को तार दिया कि "हम इस समाचार से अत्यन्त दुःखी हुए। निस्सन्देह भरतखण्ड ने एक अपना बड़ा योग्य स्वामी नाश किया और यह ऐसा अकथनीय वृत्तान्त है कि इस समय हम विशेष कुछ नहीं कह सकते"। महाराज साम ने भी स्थानापन्न गवर्नरजेनरल को तार दिया है कि हम इस दुःख में लेडी म्यौ और भारत की प्रजा के साथ हैं, जो उन लोगों पर अकस्मात् एक योग्य स्वामी के नाश होने से आ पड़ा है। महाराज जयपुर को जब यह समाचार गया एक सङ्ग शोकाक्रान्त हो गए और राज

के किले का झंडा आधा गिरवा दिया और श्री पंचमी का वस्त्र दर्बार बन्द कर दिया और बीस बीस मिनिट पर किले से शोक-सूचक तोप छूटी और नगर में एक दिन तक सब काम बन्द रहा। सुना है कि महाराज कलकत्ते जायंगे। पटियाला के महाराज ने एक शोकसूचक इश्तिहार प्रकाशित किया और अपने दर्बारियों को आज्ञा दिया कि शोक का वस्त्र पहिरैं। महाराज कपूरथला ने भी ऐसा ही किया और अवध अंजमन के सेक्रेटरी को एक पत्र भेजा कि उन के स्मरणार्थ उद्योग करै। कलकत्ते की दशा तो लिखने के योग्य ही नहीं है, न ऐसा कधी पूर्व्व में हुआ था और न ईश्वर करै होय। वसन्त पञ्चमी का नाच गान सब बन्द हो गया और नगर में दूकानैं सब कई दिन तक बन्द रहीं, बरात नहीं निकली, कई लग्न टाल दिये गए। वहां के जस्टिस आफ दि पीस लोग मिल कर एक शोकपत्र श्री लेडी म्यौ को देने वाले हैं और और भी अनेक शोकसूचक कृत्य हो रहे हैं। बम्बई में भी सब दूकानैं बन्द हो गईं और सब कारखाने बन्द हो गए। बनारस में भी इस समाचार के आने से कई स्कूल बन्द हो गए और कई शोक-सूचक कमेटियां हुईं। बम्बई में फरासीस, इटली और प्रशिया इत्यादि देशों के राजदूतों ने अपनी कोठियों के राज के झंडे आधे आधे गिरा दिये और सब मिल कर शोक का वस्त्र पहिन कर वहां के गवर्नर के पास गए थे और वहां सब लोगों ने शोक भरी वार्त्ता किया और उस के उत्तर में लाट साहिब ने भी एक सुरस भाषण किया। हा ! ईश्वर फिर यह दिन न लावै ! !

उस चाण्डाल दुष्ट हत्यारे शेरअली के विषय में फ्रेंड आफ इंडिया के सम्पादक से हम पूर्ण सम्मति करते हैं। निस्सन्देह उस दुष्ट को केवल प्राण दण्ड देना तो उस की मुंह मांगी बात देनी है, क्योंकि मरने से डरता तो ऐसा कर्म्म न करता। सम्पादक महाशय लिखते हैं कि ये दुष्ट प्राण से प्रतिष्ठा और धर्म्म को विशेष मानते हैं इस से ऐसा करना चाहिये जिस में इन दुष्टों का मुख भंग हो और धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों को हानि पहुंचै। वह लिखते हैं (और बहुत ठीक लिखते हैं, अवश्य ऐसा ही वरन इस से बढ़ कर होना चाहिये) कि उस के प्राण अभी न लिये जायं और उसे खाने को वह वस्तु मिलैं जो "हराम" हैं और वस्त्र के स्थान पर उस को सूअर के चर्म्म की टोपी और कुरता पहिनाया जाय। यावच्छक्ति उस को दुःख और अनादर दिया जाय। ऐसे नीच के विषय में जितनी निर्दयता की जाय सब थोड़ी है और ऐसे समय हम-लोगों को क़ानून छप्पर पर रखना चाहिए और उस को भरपूर दुःख देना चाहिये।

श्रीमान् लार्ड म्यौ स्वर्गवासी के मरने का शोक जैसा विद्वानों की मंडली में हुआ वैसा सर्व्वसाधारण में नहीं हुआ। इस में कोई सन्देह नहीं कि एक बेर जिस ने यह समाचार सुना घबड़ा गया, पर तादृश लोग शोकाक्रान्त न हो गए इस का मुख्य कारण यह है कि लोगों में राजभक्ति नहीं है। निस्सन्देह किसी समय में हिन्दुस्तान के लोग ऐसे राजभक्त थे कि राजा को साक्षात् ईश्वर की भांति मानते और पूजते थे, परन्तु मुसलमानों के अत्याचार से यह राजभक्ति हिन्दुओं से निकल गई। राजभक्ति क्या इन दुष्टों

के किले का झंडा आधा गिरवा दिया और श्री पंचमी का वस्त्र दर्बार बन्द कर दिया और बीस बीस मिनिट पर किले से शोक-सूचक तोप छूटी और नगर में एक दिन तक सब काम बन्द रहा। सुना है कि महाराज कलकत्ते जायंगे। पटियाला के महाराज ने एक शोकसूचक इश्तिहार प्रकाशित किया और अपने दर्बारियों को आज्ञा दिया कि शोक का वस्त्र पहिरैं। महाराज कपूरथला ने भी ऐसा ही किया और अवध अंजमन के सेक्रेटरी को एक पत्र भेजा कि उन के स्मरणार्थ उद्योग करैं। कलकत्ते की दशा तो लिखने के योग्य ही नहीं है, न ऐसा कधी पूर्व्व में हुआ था और न ईश्वर करै होय। वसन्त पञ्चमी का नाच गान सब बन्द हो गया और नगर में दूकानैं सब कई दिन तक बन्द रहीं, बरात नहीं निकली, कई लग्न टाल दिये गए। वहां के जस्टिस आफ दि पीस लोग मिल कर एक शोकपत्र श्री लेडी म्यौ को देने वाले हैं और और भी अनेक शोकसूचक कृत्य हो रहे हैं। बम्बई में भी सब दूकानैं बन्द हो गईं और सब कारखाने बन्द हो गए। बनारस में भी इस समाचार के आने से कई स्कूल बन्द हो गए और कई शोक-सूचक कमेटियां हुईं। बम्बई में फरासीस, इटली और प्रशिया इत्यादि देशों के राजदूतों ने अपनी कोठियों के राज के झंडे आधे आधे गिरा दिये और सब मिल कर शोक का वस्त्र पहिन कर वहां के गवर्नर के पास गए थे और वहां सब लोगों ने शोक भरी वार्त्ता किया और उस के उत्तर में लाट साहिब ने भी एक सुरस भाषण किया। हा! ईश्वर फिर यह दिन न लावै!!

उस चाण्डाल दुष्ट हत्यारे शेरअली के विषय में फ्रेंड आफ इंडिया के सम्पादक से हम पूर्ण सम्मति करते हैं। निस्सन्देह उस दुष्ट को केवल प्राण दण्ड देना तो उस की मुंह मांगी बात देनी है, क्योंकि मरने से डरता तो ऐसा कर्म्म न करता। सम्पादक महाशय लिखते हैं कि ये दुष्ट प्राण से प्रतिष्ठा और धर्म्म को विशेष मानते हैं इस से ऐसा करना चाहिये जिस में इन दुष्टों का मुख भंग हो और धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों को हानि पहुंचे। वह लिखते हैं (और बहुत ठीक लिखते हैं, अवश्य ऐसा ही वरन इस से बढ़ कर होना चाहिये) कि उस के प्राण अभी न लिये जायं और उसे खाने को वह वस्तु मिलें जो "हराम" हैं और वस्त्र के स्थान पर उस को सूअर के चर्म्म की टोपी और कुरता पहिनाया जाय। यावच्छक्ति उस को दुःख और अनादर दिया जाय। ऐसे नीच के विषय में जितनी निर्द्दयता की जाय सब थोड़ी है और ऐसे समय हम-लोगों को क़ानून छप्पर पर रखना चाहिए और उस को भरपूर दुःख देना चाहिये।

श्रीमान् लार्ड म्यौ स्वर्गवासी के मरने का शोक जैसा विद्वानों की मंडली में हुआ वैसा सर्व्वसाधारण में नहीं हुआ। इस में कोई सन्देह नहीं कि एक बेर जिस ने यह समाचार सुना घबड़ा गया, पर तादृश लोग शोकाक्रान्त न हो गए इस का मुख्य कारण यह है कि लोगों में राजभक्ति नहीं है। निस्सन्देह किसी समय में हिन्दुस्तान के लोग ऐसे राजभक्त थे कि राजा को साक्षात् ईश्वर की भांति मानते और पूजते थे, परन्तु मुसलमानों के अत्याचार से यह राजभक्ति हिन्दुओं से निकल गई। राजभक्ति क्या इन दुष्टों

के पीछे सभी कुछ निकल गया; विद्या ही का वैसा आदर न रहा। अब हिन्दुस्तान में तीन बात का बड़ा घाटा है-वह यह है कि लोग विद्या, स्त्री, राजा का तादृश स्वरूप ज्ञान पूर्व्वक आदर नहीं करते। विद्या को केवल एक जीविका की वस्तु समझते हैं। वैसे ही स्त्री को केवल काम शान्त्यर्थ वा घर की सेवा करने वाली मात्र जानते हैं। उसी भांति राजा को भी केवल इतना जानते हैं कि वह मुझ से बलवान है और हम उस के वश में हैं। राजा का और अपना सम्बन्ध नहीं जानते और यह नहीं समझते कि भगवान को ओर से वह हम लोगों के सुख दुख का साथी नियत हुआ है, इस से हम भी उस के सुख दुःख के साथी हों।

हम आशा रखते हैं कि श्रीमान् गवर्नरजेनरल बहादुर के अकाल मृत्यु का समाचार अब सब को भली भांति पहुंच गया। हम लोगों ने जिस समय यह सम्बाद सुना शरीर शिथिलेन्द्रिय और वाक्य शून्य हो गया। यदि कोई आकर कहे कि चन्द्रमा में आग लगी है तो कभी विश्वास न होगा। उसी प्रकार भरतखंड के उपराज का एक कैदी के हाथ से मारा जाना किसी समय में एकाएकी ग्राह्य नहीं हो सकता। हाय! देश को कैसा दुःख हुआ! अभी वे ब्रह्म देश की यात्रा कर के अंडमन्स नांम द्वीपस्थित दुखियों के सहायार्थ उपाय करने को जाते थे और वहां ऐसी घटना उपस्थित हुई। चीफ जस्टिस नार्मन का मरण भूलने न पाया और एक उस से भी विशेष उपद्रव हुआ और फिर भी मुसल्मान के हाथ से। यद्यपि कई अंग्रेज़ी समाचार पत्र सम्पादकों ने लिखा है कि जो कारण नारमन साहब के मारने का

था सो श्रीमान् के घात का कारण नहीं हो सकता, परन्तु इस में हमारी सम्मति नहीं है। क्योंकि यदि शेरअली के मन यह बात पहिले से ठनी न होती तो वह ऐसे निर्जन स्थान में छुरी ले कर छिपा क्यों बैठा रहता। फिर एक दूसरे कैदी के "इजहार" से पष्ट ज्ञात होता है जिस समय शेरअली ने अब्दुल्ला के और नार्मन ाहेब के मरण का समाचार सुना कैसा प्रसन्न हुआ और लोगों ा निमन्त्रण किया। यदि वह उस वर्ग का न होता जो कि तन ान से चाहते हैं कि सरकार "काफिर" है इस लिये उस के २ अधिकारियों के मारने से बड़ा "सवाब" होता है। ासन्नता और निमन्त्रण का क्या कारण था। फिर वह वतः कहता है कि अपने मरण के पूर्व्व मैं एक बात कहूंगा। वह ौन सी बात हो सकती है! इन सब विषयों को भली भांति दृढ़ र के तब उस को फांसी देना उचित है।

लार्ड लारेन्स का जीवनचरित्र।

सन् १८११ ई० ४ मार्च को उक्त महात्मा ने जन्म ग्रहण किया उन्हों ने पहिले कुछ दिन वर्ड लण्डन डेरी के काथेल कालिज शिक्षा लाभ की थी, बाद उस के हेलिवार कालिज में पढ़ने लगे। १८२९ ई० में सिविलियन हो कर भारतवर्ष में आए। १८३१ ई० में दिल्ली के रेज़िडेण्ट और चीफ कमिश्नर सहकारी हुए। १८३२ ई० में प्रतिनिधि मजिस्ट्रेट और कलक्टर हुए। १८३४ ई० में पानीपत के प्रतिनिधि मजिस्ट्रेट हो के गए २ बरस के बाद गुड़गांव के एजण्ट मजिस्ट्रेट और डिपटी

कलक्टर हुए। कई एक वर्षों के बाद दिल्ली के मजिस्ट्रेट हुए। उस समय यहां के गवर्नरजेनरल सर हेनरी हारडिङ्गटो थे। उन्हों ने इन की चमत्कार राजनीति देख कर इन को शतद्रु तीरस्थ प्रदेशों का कमिश्नर कर के भेज दिया। १८४८ ई० में लारेन्स लाहोर के रेज़िडेण्ट के प्रतिनिधि हुए। सिक्खों की दूसरी लड़ाई के बाद लार्ड डलहौसी ने पञ्जाब शासन करने के लिये एक एडमिनिष्ट्रेशन बोर्ड स्थापन किया। उस में यह और इन के बड़े भाई सरहेनरी लारेन्स, चार्ल्स और मानसेल, सभ्य नियुक्त हुए। इन दोनों भाइयों ने राज्य शासन सम्बन्ध में अति उत्तम क्षमता और निपुणता दिखाई। जान लारेन्स ने १८५७ ई० के गदर में अपनी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से पञ्जाब को शांत रक्खा था, इसी लिये आज तक भारत साम्राज्य अव्याहत है। उस समय लारेन्स पञ्जाब के चीफ़ कमिश्नर थे। १८५६ ई० में लारेन्स को के. सी. बी. की उपाधि मिली और बाद ही इन को जी. सी. बी. की भी उपाधि मिली थी। १८५८ ई० में यह महाराज वारनट हो कर प्रीवी कौंसिल के सभ्य हुए। १८६३ ई० के डिसेम्बर महीने में भारतवर्ष के गवर्नर जेनरल हो कर लार्ड एलगिन के उत्तराधिकारी हुए। १८६६ ई० के मार्च महीने में यह लार्ड उपाधि प्राप्त हो कर पार्लियामेण्ट में सभ्य हुए। लार्ड लारेन्स का धर्म विषय में विशेष अनुराग था। इन्हों ने भारतवर्ष के गवर्नमेंट स्कूल समूहों में बाइब्ल पढ़ाने का प्रस्ताव किया था। और और भी विशेष गुण इन में थे। आज कल यह पार्लियामेण्ट में भारतवर्ष सम्बन्धी विषयों की चर्चा विशेष करते

लगे थे। जिस में भारतवर्ष का मङ्गल हो, इन की यही इच्छा और चेष्टा रहती थी। ऐसे हितकारी मित्र को खोकर जो भारतवर्ष शोकाकुल न होगा, यह कहना बाहुल्य है। उन के सन्मानार्थ १ जुलाई को कलकत्ते के किले का निशान गिरा दिया था और ३१ तोपें दागी गईं थीं। लार्ड हेस्टिङ्गस के बाद और किसी का ऐसा सन्मान नहीं किया गया था। वेष्टमिनिष्ट आदि में इन को समाधि दी गई है।

महाराजाधिराज ज़ार का संक्षिप्त जीवनचरित्र

ता० १३ मार्च (१८८१ ई०) रविवार के दिन रूस के शाहनशाह ज़ार राजकीय गाड़ी में बैठकर भजन मन्दिर से अपने भवन में जाते थे कि इस बीच में किसी दुष्ट ने कुलफीदार गोला उन की गाड़ी के नीचे फेंका, परन्तु वार खाली गया। तब दूसरा फेंका। इस बेर गोला फूट गया और उस के भीतर की बारूद और गोलियों ने चारो ओर उड़ कर गाड़ी को विध्वंश किया। और ज़ार के पैरों का पता न लगा। केवल दो घण्टा प्राण रहा, पश्चात् शाहनशाह रूस पंचत्व को प्राप्त हुए। इस गोले ने कई मनुष्यों का प्राण लिया। इस दुष्ट घातक के पकड़ने का शोध हुआ और पकड़ा गया। इस की अवस्था केवल २१ वर्ष की है: नाम इस का रोसा काफ है। यह खनन विद्या में निपुण है। पहले तो इस दुष्ट ने अपने अपराध को अस्वीकार कर के बचाव किया था, पर यह गुप्तभाव कब छिपे। अन्त में इस ने सब कुछ अपने मुख से प्रगट किया। इस घोर विपत्ति से रूस में हाहाकार मचा है। यूरोप के

लोगों को भी बड़ा दुःख हुआ है। राजकुमार ज़ारविच् रूसी राज्य के उत्तराधिकारी अपने पिता के पद पर नियुक्त हुए। और उन का राजकीय नाम "तृतीय एलेक्ज्याण्डर" रक्खा गया है, ड्यूक आफ एडिम्बरा सपत्नीक सेण्टपीटर्सवर्ग में गये हैं। इङ्गलैंड में एक मास भर अधिकारी लोग शोचसूचक वस्त्र धारण करेंगे। हाउस आफ कामंस और लार्ड्स की तरफ से दुःख शांत्वन पत्र भेजे जायेंगे। निहिलिष्ट लोग इस दुष्ट कर्म के करने में बहुत दिन से लगे हुए थे। और कई वेर जो नहीं सो कर चुके थे पर शाहनशाह की आयुष्य थी, इस से इन का यत्न पूरा नहीं होता था। अब की इन्हों ने अपना दुष्ट सङ्कल्प पूरा किया। शाहनशाह रूस जैसे सूर और पराक्रमी थे सो समस्त भूमण्डल में प्रख्यात ही है।

इस महान् व्यक्ति का जन्म सन् १८१८ में हुआ। उस समय इन के चाचा अलेक्ज़ांडर प्रथम रूस के राजसिंहासन पर थे। इन को पूरी सात वर्ष की अवस्था भी नहीं हुई थी कि इन के चाचा साहब स्वर्गवासी हुए। मृत अलेक्ज़ांडर के भाई कांसटंटाइन ने राज्य के भार से मुख मोड़ लिया था, इस कारण ज़ार के पिता निकोलस को गद्दी मिली और ये युवराज हुए। इस के अनन्तर रूसी सैनिक लोगों में बलवा उत्पन्न हुआ और वह कई दिन तक रहा। इन बलवाइयों का नाम "डेकाब्रिस्ट्स" था और ये लोग राजकीय कुटुम्ब के पूर्ण शत्रु थे। इन का यह संकल्प था कि जैसे जर्मनी के छोटे २ हिस्से हो गए हैं, वैसे ही इस राज्य के भी हो जावें। परन्तु बहुत सी अन्य प्रामाणिक सैन्य समूह ने

प्रथम निकोलस को इन के पराजय करने में बड़ी ही सहायता दी, जिस से इन का दुष्ट संकल्प निर्मूल होगया। सन् १८२५ में राजकीय व्यवस्था भली भांति स्थापित करके निकोलस अपनी इच्छानुसार राज करने लगे। ज़ार की माता प्रुशिया के सम्राट् तृतीय फ्रेडरिक की कन्या थीं। इन्हों ने स्वयं अपने लड़के ज़ार को विद्या सिखाई, परन्तु इस बात से इन के पिता अप्रसन्न रहते थे। उन्हों ने ज़ार को फौजी गवर्नरों और निपुण शिक्षकों के पास विद्योपार्जन के निमित्त बैठाया। इस बात को ज़ार ने अनहित समझ अपने को उस शिक्षा से हटाया और देश २ पर्यटन करने लगे और कुछ काल तक अपनी माता की सम्बन्धिनी स्त्रियों के सहवासी रहे। ये राजकीय प्रबन्धों से बहुत प्रसन्न रहते थे। सैनिक कामों में इन का मन कुछ भी न लगता, जो बात रूसी राजदरबार के सम्पूर्ण विरुद्ध थी। इस विषय में पूर्ण चिन्तना और यह कल्पना होने लगी कि इस युवराज के अधिकार में पुराने रूसी समूह क्योंकर रहने पावेंगे। यह बात इन के भाई ग्रांड्यूक कांस्टनटाइन के लिये परमोपयोगी थी। इन दोनों भाइयों में इस कारण ईर्षा उत्पन्न हुई। सामान्यतः इस बात की चर्चा होने लगी और कभी २ लड़ाई भी होती जाती थी।

एक समय की बात है कि इन के भाई कंस्टन्टाइन ने जो समुद्रीयसेना के ऐडमिरल थे, इतनी अधिक शत्रुता इन पर की कि ये कैद कर लिए गए। इस व्यवहार के पल्टे निकोलस ने यही दण्ड देना कंस्टेन्टाइन को योग्य समझा। इस आपुस के विरोध से इन के पिता को बड़ा शोच रहता था। जब कि सन

१८४३ में अलेकज़ैंडर का प्रथम पुत्र जन्मा तब निकोलस ने कांस्टेन्टाइन से शपथ ली कि वह युवराज का आज्ञाकारी रहेगा। निदान निकोलस ने अपने मरने के समय दोनों लड़कों को बुलाकर उन के समक्ष अलैक्ज़ैंडर को राज्याधिकार का तिलक दे दिया और इन दोनों से शपथ ली कि आपुस में विरोध रहित राज्य प्रवन्ध में सन्नद्ध रहें, जिस से प्रजा और राज्य को हानि न पहुंचे। यह सुन शाहज़ादे ने बड़े २ प्रधान मंत्रियों के सन्मुख प्रतिज्ञा की कि राज्य प्रवन्ध हम भलीभांति करेंगे और अपने को द्वितीय अलेक्ज़ैंडर के नाम से विख्यात किया। उसी दिन अपराह्न समय सब राजकीय और सैनिक कर्मचारियों ने जो सेन्टपीटर्सबर्ग में थे आज्ञाकारी स्वीकार की और भेंटें दीं। एक कौंसिल जो नवीन अलेक्ज़ैंडर के लिए नियत हुई थी उस में यह विचार ठहरा कि जो युद्ध उस से और अन्य राजों से हो रहा है वह हुआ करे। अलेक्ज़ैंडर का प्रथम काम यह था कि उस ने समग्र राज्यभर में अपने नाम और राज्यसिंहासन पर स्थित होने का विज्ञापन दिया और उस में यह आशय प्रगट किया कि मुख्य अभिप्राय मेरा यह है कि जिस प्रकार से पीटर कैथराइन, अलेक्ज़ैण्डर प्रथम और निकोलस प्रथम के समय से राज्य की प्रभा और वैभव बढ़ती आई है वैसी ही बढ़ा करे। जेनरल रूडीगर को वार्स नामक स्थान से बुलाकर राजकीयगार्ड की कमान दी और अपनी शान, शौकत के मुआफिक सेना भरती की; वाणिज्य की उन्नति में भी बड़ी चेष्टा की। राज्य में बहुत से गुलाम जो सरदार लोगों के पास थे उन में से २३००००००० गुलामों को दासत्व भाव से मुक्त कराया।

यही नहीं बरन उन को पेट भरने का उद्योग भी बतला दिया। नि:संदेह यह काम ज़ार का, जो सन् १८६१ में हुआ था, अत्यन्त प्रशंसा के योग्य है। इन्हों ने सरकारी कालेज स्थापित किए। देश २ में सभा नियत कराई। फेब्रुअरी सन् १८६८ में पौलेण्ड के लौंडी गुलामी को भी स्वाधीन किया। इस के करने का अभिप्राय यह था कि पौलेण्ड के सरदारों का ऐश्वर्य्य न्यून हो जाय, क्यों-कि पूर्व्व में उस भूमि के स्वामी वेही लोग थे। ज़ार की विद्या विभाग की ओर दृष्टि इतनी अधिक बढ़ी थी कि उन्हों ने यूरप के कालिजों के समान अपनी राजकीय पाठशाला में बड़े २ पद स्थापित किए थे और यह प्रबन्ध बड़ा ही उत्तम था कि प्रत्येक सूबे की ओर से मेम्बर भरती होते थे। इन की सभा प्रथम सन् १८६५ में हुई थी, जिस से बहुत कुछ उपकार के पलटे अपकार की सम्भावना भी हुई। ज़ार ने अपनी प्रजा को युद्ध विद्या में बहुत निपुण किया और राज्य में पञ्चायती कोर्ट न्याय करने को स्थापित कर दिए। सन् १८६६ में इन्हों ने बुखारे के अमीर से लड़ाई प्रारम्भ की, जो डेढ़ वर्ष तक होती रही। इस में रूसी लोग विजयी हुए और समरकन्द पर अपना अधिकार जमा लिया। सन् १८६८ में ज़ार ने अपने अमेरिका प्रदेश में यूनाइटेड स्टेट्स की गवर्नमेन्ट अमेरिका के हाथ २४०००००० रुपये को बेच दिया। जब फ्रेञ्च और जर्मन में लड़ाई होने लगी और जर्मन में लोगों ने पैरिस नामक स्थान को घेर लिया तब ज़ार ने सन् १८५६ के सन्धिपत्र को (जिस से बलफक्सी की सीमा बांधी गई थी) मानना अङ्गीकार किया। इस से बड़े बड़े राष्ट्रों को बड़ी कठिनता

देख पड़ने लगीं। सन् १८७१ में इस निमित्त एक कान्फरेन्स हुआ, जिस में ज़ार के इच्छानुरूप सन्धिपत्र स्थापित हुआ। सन् १८७२ में जब ज़ार बर्लिन नगर को गए तो जर्मन और आस्टिया के सम्राट् से भेंट किया। ये दोनों महाराज सेन्टपीटर्सबर्ग में थे। शाहनशाह की भेंट के लिए निमन्त्रित होकर आए थे। उस अवसर में बड़ा उत्सव हुआ था। सन् १८७३ में जेनरल काफमैन ने खीवा को अधिकार में लाकर इस का कुछ खंड रूसी महाराज में जोड़ा था। सन् १८७४ में इन्हों ने अपने राज्य के चारो ओर पर्य्यटन किए। जहां २ इन का गमन होता था वहां २ की प्रजा बड़ी धूम धाम से इन का आदर सन्मान करती थी। सन् १८७५ में इन के जेनरल काफमैन ने कोखन्द नामक स्थान को सर किया और सब्ज़ दरिया का उत्तर भाग अपने अधिकार में करके मस्कविट के राज्य को मिला लिया। सन् १८७६ में जब टर्की और सर्विया के बीच में युद्ध प्रारम्भ हुआ, उन में इन्हों ने कुछ स्वयं सहायता किसी को नहीं की। हां, रूसी लोग सर्विया की सैन्य समूह में गए थे। जब तुर्क लोगों ने अलेकजनाम को फतः कर लिया उस समय कुस्तुन्तुनियां में रहने वाले वकील ने सुलतान को छः सप्ताह तक युद्ध बन्द करने के लिए एक निवेदनपत्र प्रदर्शित किया था, जिसे सुलतान ने मान्य किया। सन् १८७७ में टर्की और सर्विया के मध्य एक सन्धिपत्र हुआ और इसी वर्ष में यूरप के सब राजों के वकीलों का कुस्तुन्तुनियां में कान्फरेंस हुआ था, उस में जो व्यवस्था नियत हुई सो टर्कों के सुलतान को माननीय न हुई, इस कारण ज़ार ने टर्की से लड़ने का उद्देश प्रगट किया। इस युद्ध में तुर्क लोग बड़ी शूरता से लड़े, प्ररन्तु तुर्की लोग पराजित हुए।

उस समय रूसी सेना कुस्तुन्तुनियां के द्वार तक पहुंची थी। सन् १८७८ ता० १६ फेब्रुअरी को एक सन्धिपत्र स्थान स्टेफेनो में हुआ, जिस के नियम बर्लिन के कान्फरेंस में कुछ परिवर्त्तन हुए थे। ज़ार का चित्त सर्वदा धर्म्म विषय में लगा रहता था, इसी कारण ये सब भजनमन्दिरों के अध्यक्ष हुए थे: परन्तु ये रोमनकैथलिक चर्च से द्वेष रखते थे। ज़ार के ऊपर दो मारण-प्रयोग हुए—प्रथम सन् १८६६ ता० १६ एप्रिल को ज्योंही ये गाड़ी पर सवार होते थे कि एक काराकोसोक विद्यार्थी ने गोली चलाई, परन्तु एक कारीगर ने उसी क्षण अपने बुद्धिबल से उस विद्यार्थी के हाथ को फेर दिया, इस कारण निशाना उस का खाली गया।

इस बात को देख कर ज़ार ने इस कारीगर कामिसरोफ नामक को उच्च पदवी का सरदार बनाया। द्वितीय सन् १८६७ में ता० ६ जून को पारिस में पोल जाति के बरेजाबास्की नामक पुरुष ने इन पर गोली चलाई थी, उस समय ज़ार अपने दोनों पुत्र और शाहनशाह नेपोलियन के साथ गाड़ी में बैठे थे। परन्तु कुशल हुई, कि गोली किसी को न लगी· केवल एक अर्दली सवार का घोड़ा ज़ख्मी हुआ। दूसरी गोली वह दुष्ट छोड़ना ही था कि बन्दूक की नली फट गई और उसी के हाथ में जा लगी। ज़ार का विवाह ता० २८ एप्रिल सन् १८४१ में हेस की राजकन्या मेरिया एलेक्ज़ाड्रोवना से हुआ, जिस से सन्तति बहुत हुई। ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गवासी निकोलस का जन्म ता० २२ सेप्टेम्बर सन् १८४३ में हुआ था, जो सन् १८६५ में मृत्यु के वश हुआ। द्वितीय पुत्र

लेग्ज़ेंडर ता० १० मार्च सन् १८४५ में जन्मे और उन का विवाह ता० ६ नवम्बर सन् १८६६ में डेनमार्क की राजकन्या मेरियाफे- ओरबना से हुआ। इन की राजकन्या डचेज़मेरी का विवाह ता० २३ जनवरी सन् १८७४ में इङ्गलैण्ड के राजकुमार ड्यूक आफ एडिम्बरा से हुआ।

FRANCIS I KING OF FRANCE.

इन का जन्म सन् १४६४ सेप्टेम्बर की १२ वीं तारीख को पैहर बाद १० घंटा ३७ मिनट पर। जन्मदेश का अक्षांश याम्य ८ अंश, उस समय दशम का विषुवांश ३३ अंश ४८ कला, दशम लग्न ११ राशि ६ अंश, जन्म लग्न ३ राशि ५ अंश ५६ कला।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः ।

र०	चं०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	ग्रहाः
५	१०	६	४	४	५	११	रा०
२८	२७	१६	१५	२३	२३	१०	अं०
३६	३०	१०	५०	१५	५४	२२	क०

दक्षिण चन्द्र क्रांतिः १० अंश २ कला। दक्षिण शनिक्रांतिः ६ अंश ४३ कला।

जन्म कुंडली ।
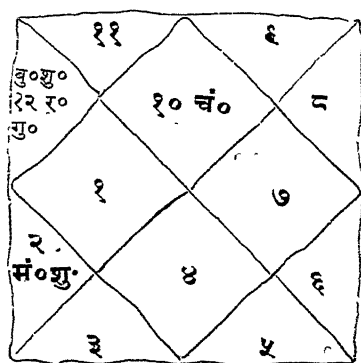
NAPOLEON III EMPEROR OF FRANCE.

इन का जन्म सन् १८०८ अप्रिल की २० वीं तारीख़ की आधीरात के बाद १ घंटा पर। जन्मस्थान प्यारिस, दशम का विषुवांस २२२ अंश ५६ कला, दशम लग्न ७ राशि १५ अंश २४ कला, जन्म लग्न ६ राशि १ अंश २४ कला ।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः संक्रांतयः ।

र०	चं०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	उर्नस	ग्रहाः
०	१०	०	०	०	११	७	७	रा०
२१	२६	२	२	२१	१	२०	३	अं०
४५	२१	३२	२	५३	२४	२४	८	क०
क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	
११	७	१	०	११	८	१५	१२	अं०
२४	४६	१८	३८	७	५५	२८	३	क०

जन्म कुण्डली
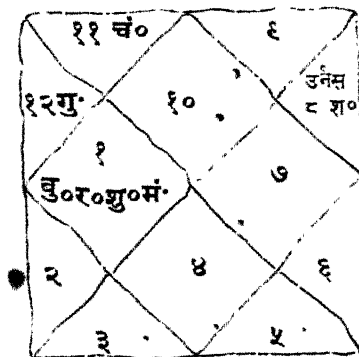
Frederic William V Emperor of Germany.

इन का जन्म सन् १७६७ मार्च की २२ वीं तारीख को दो पहर के बाद दो बजे पर। जन्मस्थान बर्लिन, दशम का बिषुवांश ३० अंश ३० कला ४४ बिकला, दशम लग्न १ राशि २ अंश ३३ कला, जन्म लग्न ४ राशि १८ अंश ५१ कला।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः संक्रांतयः

र०	चं०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	उर्नस	ग्रहाः
०	६	११	११	१	११	२	५	रा०
२	२५	७	१४	१५	२७	२१	६	अं०
२५	२४	२२	५२	२८	३६	४८	५६	क०
क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ३	
०	२३	१०	७	१७	१	२२	८	अं०
५८	३०	४६	१६	२	५६	१२	३५	क०

जन्म कुण्डली
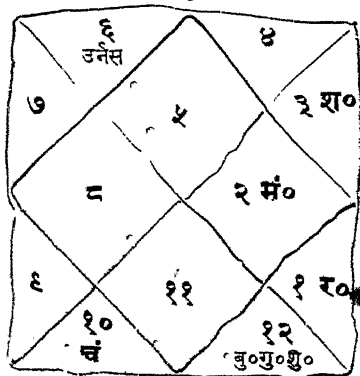
महाराज मल्हार राव की जन्म कुण्डली
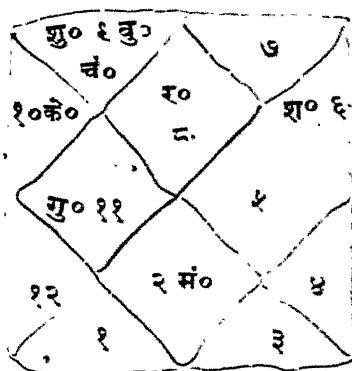
महाराज के प्रस्तुत दशा का कारण लग्नेश ७, भौम है दशमेश रवि १ तनु भावि दोनों का परस्पर दृष्टि योग है।

लग्नकर्माधिनेतारौ अन्योन्याश्रयि संस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तौ विख्यातो विजयी भवेत् ॥ १ ॥

टीपू सुल्तान की जन्म कुण्डली।
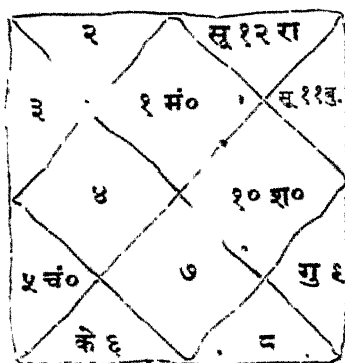
सिकन्दर की जन्म कुण्डली ।
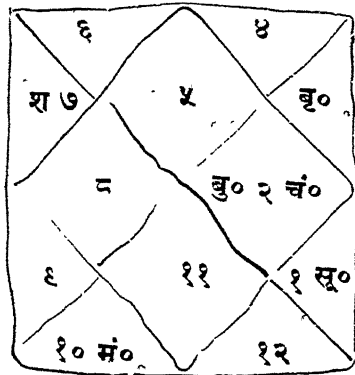
रावण की जन्म कुंडली ।
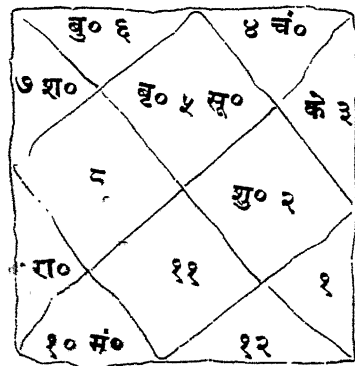
पंच पवित्रात्मा

अर्थात्

मुसलमानी मत के मूलाचार्य महात्मा मुहम्मद, आदरणीय अली
बीबी फातिमा, इमाम हसन
और
इमाम हुसैन की संक्षिप्त जीवनी।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित.

क्षत्रियपत्रिकासम्पादक म० कु० बाबू रामदीन सिंह सङ्कलित.

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.

'खड्गविलास' प्रेस, बांकीपुर, पटना
बाबू रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

ह० सं० ३२—१९१७.

दूसरी बार।

पंच पवित्रात्मा।

महात्मा मुहम्मद।

जिस समय अरब देश वाले बहुदेवोपासना के घोर अन्धकार में फंस रहे थे उस समय महात्मा मुहम्मद ने जन्म ले कर उन को एकेश्वर बाद का सदुपदेश दिया। अरब के पश्चिम ईसामसीह का भक्तिपथ प्रकाश पा चुका था, किन्तु वह मत अरब फारस इत्यादि देशों में प्रवल नहीं था और न अरब ऐसे कट्टर देश में महात्मा मुहम्मद के अतिरिक्त और किसी का काम था कि वहां कोई नया मत प्रकाश करता। उस काल के अरब के लाग मूर्ख, स्वार्थतत्पर, निर्दय और बन्यपशुओं की भांति कट्टर थे। यद्यपि उन में से अनेक अपने को इबराहीम के वंश का बतलाते और मूर्ति पूजा बुरी जानते, किन्तु समाजपरवश होकर सब बहु देवोपाशक बने हुए थे। इसी घोर समय में मक्के से मुहम्मदचन्द्र उदय हुआ और एक ईश्वर का पथ परिष्कार रूप से सब को दिखलाई देने लगा।

महात्मा मुहम्मद इबराहीम के वंश में इस क्रम से हैं :—इबराहीम, इसमाईल, कबजार, हमल, सलमां, अलहौसा, अलीसा, ऊद,

आद, अद्नान, साद, नजार, मजर, अलपास, बद्रका, खरीमा, किनाना, नगफर, मालिक, फहर, गालिब, लवी, काब, मिरह, कलाव, फजी, अबद्मनाफ, हाशिम, अबदुल मतलब, अबदुल्लाह और इन के अबुल कासिम मुहम्मद।

अबदुलमतलब के अनेक पुत्र थे। जैसा हमजा, अब्बास, अबूतालिब अबुल्हब, अईदाक। कोई कोई हारिस, हजब, हकूम, ज़रार जुबैर, कासमे असगर, अबदुलकावा और मकूम को भी कुछ विरोध से अबदुल मतलब का पुत्र मानते हैं। इन में अबदुल्लाह और अबीतालिब एक मां से हैं। अबीतालिब के तीन पुत्र अकील, जाफर और अली। यह अली महात्मा मुहम्मद के मुसलमानी सत्य मत प्रचार करने के मुख्य सहायक और रात दिन के इन के दुख सुख के साथी थे और यह अली जब महात्मा मुहम्मद ने दूतत्व का दावा किया तो पहिले पहल मुसल्मान हुए।

महात्मा मुहम्मद की मा का नाम आमिना है, जो अबद्मनाफ के दूसरे बेटे बहब की बेटी हैं और आदरणीय अली की मा का फातमा है जो असद की बेटी है और यह असद हाशिम के पुत्र हैं, इस से मुहम्मद और अली पितृकुल और मातृकुल दोनों रीति से हाशिमी हैं।

महात्मा मुहम्मद १२ वीं रबिउलऔवल सन् ५६६ ईस्वी को मक्का में पैदा हुए।

महात्मा मुहम्मद के पिता के इन के जन्म के पूर्व [एक लेखक के मत से इन के जन्म के दो वर्ष पीछे] मर जाने से उन के दादा

थी और इस में वहां की स्त्रियां अमंगल समझती थीं, किन्तु अलीमा नामक * एक स्त्री ने इन को दूध पिलाना स्वीकार किया। इस दाई को बालक ऐसा हिल लग गया कि एक दिन अलीमा ने आकर महात्मा मुहम्मद की माता अमीना से कहा कि मक्के में संक्रामक रोग बहुत से होते हैं इस से इस बालक को मैं अपने साथ जंगल में ले जाऊंगी। उन की मा ने आज्ञा दे दी और साढ़े चार बरस तक महात्मा मुहम्मद अलीमा के साथ बन में रहे। परन्तु इन के दैवी चमत्कार से कुछ शङ्का कर के दाई फिर इन को इन की माता के पास छोड़ गई। इन की छ बरस की अवस्था में इन की माता अमीना का भी परलोक हुआ और आठ बरस की अवस्था में इन के दादा अबदुल मतलब भी मर गए। तब से इन के सहोदर पितृव्य अबीतालीब पर इन के लालन पालन का भार रहा। अबीतालिब महात्मा मुहम्मद के बारह और पितृव्यों में इन के पिता के सहोदर भ्राता थे। हाशिम महात्मा मुहम्मद के परदादा का नाम था और यह मनुष्य ऐसा प्रसिद्ध हुआ कि उस के समय से उस के वंश का नाम हाशिमी पड़ा। यहां तक कि मक्का और मदीने का हाकिम अब भी "हशिमियों के राजा" के पद से पुकारा जाता है। अबदुल मतलब महात्मा मुहम्मद को बहुत चाहते थे और यह नाम भी उन्हीं का रक्खा हुआ था। इस हेतु मरती समय अबीतालिब को बुला कर महात्मा मुहम्मद की बांह पकड़ा कर उन के पालन के विषय में बहुत कुछ

कह सुन दिया था। अवीतालिब ने पिता की शिक्षा अनुसार महात्मा मुहम्मद के साथ बहुत अच्छा बरताव किया और इन को देश और समय के अनुसार शिक्षा दिया और व्यापार भी सिखलाया।

उन्हों ने रीति मत विद्या शिक्षा किया था इस का कोई प्रमाण नहीं मिला। पचीस बरस की अवस्था तक पशु चारण के कार्य में नियुक्त थे। चालीस बरस की अवस्था में उन का धर्म भाव स्फूर्ति पाया। ईश्वर निराकार है, और एक अद्वितीय है; उन को उपासना बिना परित्राण नहीं है। यह महासत्य अरब के बहु-देवोपासक आचार भ्रष्ट दुर्दान्त लोगों में वह प्रचार करने को आदिष्ट हुए। तेंतालिस बरस की अवस्था के समय में अग्निमय उत्साह और अटल विश्वास से प्रचार में पूवृत्त हुए। "रजोत: सहुदा" नामक मुहम्मदीय धर्म ग्रन्थ में उन की उक्ति कह कर ऐसा उल्लिखित है। "हमारे पूति इस समय ईश्वर का यह आदेश है कि निशा जागरण कर के दीन हीन लोगों की अवस्था हमारे निकट निवेदन करो, आलस्य शय्या में जो लोग निद्रित हैं उन लोगों के बदले तुम जागते रहो, सुख ग्रह में आनन्द बिह्वल लोगों के लिये अश्रुवर्षण करो।" पैगम्बर महम्मद जब ईश्वर का स्पष्ट आदेश लाभ कर के ज्वलन्त उत्साह के साथ पौत्तलिकता के और पापाचार के विरुद्ध खड़े हुए और ईश्वर एक मात्र अद्वितीय हैं" यह सत्य स्थान स्थान में गम्भीरनाद से घोषना करने लगे, उस समय वह अकेले थे। एक मनुष्य ने भी उन को सम विश्वासी रूप से परिचित होकर उन के उस कार्य्य में सहानुभूति दान नहीं

किया। किन्तु उन्हों ने किसी की मुखापेक्षा नहीं किया, किसी का अनुमात्र भय नहीं किया, बुद्धि विचार तर्क को तृसीमा में भी नहीं गये, प्रभु का आदेश पालन करना ही उन का दृढ़ व्रत था। जब वह ईश्वर के आदेश से "ला इलाह एलिल्लाह" (ईश्वर एक मात्र अद्वितीय हैं) इस सत्य प्रचार में प्रवृत्त हुए, तब सब अरबी लोग उन के कई एक पितृव्य और समस्त ज्ञाति सम्बन्धी निज अवलम्बित धर्म के विरुद्ध वाक्य सुन कर भयानक क्रोधान्ध हुए और उन के स्वदेशीय और आत्मीय गन "महम्मद मिथ्यावादी और ऐन्द्रजालिक है" इत्यादि उक्ति कह के उन के प्रति और सबों का मन विरक्त और अविश्वस्त करने लगे। स्वजन सम्बन्धियों के द्वारा क्लेश अपमान प्रहार यन्त्रना आदि उन को जितनी सह्य करनी पड़ी थी उतनी दूसरे किसी महापुरुष को नहीं सहनी पड़ी। विपरीत लोगों के प्रस्तराघात से उन का शरीर क्षत विक्षत हुआ था। किसी के प्रस्तराघात से उन का दो दांत भग्न और ओठ विदीर्ण तथा ललाट और बाहु आहत हुआ था। किसी शत्रु ने उन को आक्रमण कर के उन का मुख मण्डल कंकड़ मय मृत्तिका में घर्षन किया था, उस से मुंह क्षत विक्षत और शोनिताक्त हुआ था। एक दिन किसी ने उन के गले में फांसी लगा कर स्वास रोध्य कर के उन को बध करने का उपक्रम किया था। एक दिन किसी ने उन का गला लक्ष कर के करवालाघात किया था तब गह्वर में छिपकर उन्हों ने अपने प्राण की रक्षा किया था। कई बार उन की जीवनाशा कुछ भी नहीं थी। एक दिन उन के पितृव्य और जातिवर्ग उन को बध करने को कृत संकल्प हुए थे।

प्रियतमा दुहिता फातिमा ने जान कर रोते रोते उन से निवेदन किया, उस में धर्म्मवीर विश्वासी महम्मद अकुतोभय भाव से बोले कि वत्से ! मत रो, हम को कोई बध नहीं कर सकेगा, हम उपासनारूप अस्त्र धारण करेंगे, विश्वास बर्म्म से आवृत होंगे। जब हजरत महम्मद को प्रहार क्षत कलेवर और निःसहाय देख कर उन के पितृव्य हमज़ा महाक्रोध से अबुलहब और अबुजोहल प्रभृति मुहम्मद के परमशत्रु पितृव्य और दूसरे २ ज्ञाति सम्बन्धियों को प्रहार करने जाते थे, उस समय वह बोले, "जिन ने हम को सत्यधर्म्म प्रचार के हेतु मनुष्य मण्डली में प्रेरण किया है, उस सत्य परमेश्वर के नाम पर शपथ कर के हम कहते हैं, यदि तुम सुतीक्ष्ण करबाल के द्वारा नीच बहुदेवोपासक लोगों को निहत करो और उसी भाव से हमारी सहायता करने को अग्रसर हो तो तुम अपने को शोणित में कलंकित कर के पुन्यमय सत्य परमेश्वर से दूर जा पड़ोगे। ईश्वर के एकत्व में और हम उन के प्रेरित हैं इस सत्य का विश्वास जब तक न करोगे तब तक तुम को युद्ध विवाद में कोई फल नहीं होगा। पितृव्य यदि तुम वात्सल्यरूप औषध हम को प्रदान करने चाहते हो, और हमारे आहत हृदय में आरोग्य का औषध लेपन करना चाहते हो, तो "ला इलाह इलेल्लाह महम्मद रसुलल्लाह" (ईश्वर एकमात्र अद्वितीय और मुहम्मद उस का प्रेरित है) यह वाक्य उच्चारण करो। यह सुन कर हमज़ा विश्वासी होकर कलमा उच्चारण पूर्वक एक ईश्वर के धर्म्म में दीक्षित हुए। तीन बरस शत्रु मण्डली से अवरुद्ध होकर हजरत महम्मद को महा क्लेश से एक गिरिगुहा

में कालयापन करना पड़ा था। इस बीच में बहुत से मनुष्यों ने उन के साथ उस उन्नत विश्वास में योग दिया था और उन के निकट एक ईश्वर के धर्म्म में दीक्षित हुए थे। ईश्वर की आज्ञा-पालन के लिए वह दश बरस मक्का नगर में अपरिसीम क्लेश और अत्याचार सहन कर के पीछे मदीना नगर में चले गए। वहां शत्रु-गन से आक्रान्त होकर उन लोगों के अनुरोध से और आवाहन से युद्ध करने को वाध्य हुए। वह विपन्न अत्याचारित होकर कभी तनिक भी भीत और संकुचित नहीं हुए थे। जितनी बाधा और विघ्न उपस्थित होता था उतना ही अधिक उत्साहानल से प्रज्वलित हो उठते थे। सब विघ्न अतिक्रम कर के अटल विश्वास से वह ईश्वरादेश पालन व्रत में दृढ़ व्रती थे। वह ईश्वर और मनुष्य के प्रभु भृत्य का सम्बन्ध अपने जीवन में विशेष भांति प्रदर्शन करा गए हैं। वह स्वामी आदेश शिरोधार्य कर के स्वर्गीय तेज और अलौकिक प्रभाव से कोटि कोटि मनुष्य को अन्धेरे से ज्योति में लाए। लक्ष लक्ष जन का सांसारिक बल एक विश्वास के बल से चूर्ण कर के जगत् में अद्वितीय ईश्वर की महिमा को महीयान् किया। एकेश्वर की पूजा और सत्य का राज्य प्रतिष्ठित किया। प्रभु का आदेशपालन के हेतु सब प्रकार का दारिद्र क्लेश अपमान और आत्मीय जन का निग्रह अम्लान वदन से सिर नीचा कर के सहन किया। धन्य! ईश्वर के विश्वास किङ्कर महम्मद! आज मुसलमान धर्म्म के प्रवर्त्तक ईश्वर के आज्ञाकारी विश्वस्त भृत्य मुहम्मद के नाम और उन के प्रवर्त्तित पवित्र एकेश्वर के धर्म्म में एशिया से योरोप आफ्रिका तक कोटि

मुसलमान एक सूत्र में ग्रथित हैं। वह ऐसा आश्चर्य धर्म्म का बन्धन जगत् में संस्थापन कर गए हैं कि आज दिन उस के खोलने की किसी को सामर्थ्य नहीं है।

बीबी फ़ातिमा।

अब हम लोग उस का जीवनचरित्र लिखते हैं जिस को करोड़ों मनुष्य सिर झुकाते हैं और जिस के दामन से प्रलय पीछे करोड़ों मनुष्य को ईश्वर के सामने अपने अपराधों की क्षमा मिलने की आशा है। यह बीबी फ़ातिमा मुसलमान धर्म्माद्याचार्य्य महात्मा मुहम्मद की प्यारी कन्या थी। महात्मा मुहम्मद जैसे दुहितृ-वत्सल थे वैसे ही बीबीफातिमा पितृभक्त थीं। यह बाल्यावस्था ही में मातृहीना हो गईं, क्योंकि इन की माता महात्मा मुहम्मद की प्रथमा स्त्री बीबी ख़दीजा इन को शैशवावस्था ही में छोड़ कर परलोक सिधारीं। यद्यपि महात्मा मुहम्मद को अनेक सन्तति थीं पर औरों का कोई नाम भी नहीं जानता और इन को आबाल-वृद्ध वनिता सब जानते हैं। मुहम्मद ने अपने मुख से कहा है कि ईश्वर ने संसार की सब स्त्रियों से फातिमा को श्रेष्ठ किया। इन्हों ने आठ बरस तक जिस असाधारण निष्ठा और परम श्रद्धा से पिता की सेवा की पराकाष्ठा की है वैसी सन्देह है कि किसी स्त्री ने भी न की होगी और न ऐसी पितृगतप्राणा नारी-रत्न और कहीं उत्पन्न हुई होगी। महात्मा मुहम्मद क्षण भर भी दृष्टि से दूर रखने में कष्ट पाते थे। पिता के अलौकिक दृष्टान्त और उपदेशों के प्रभाव से शैशवावस्था ही से इन को अत्यन्त

धर्म्मनिष्ठा थी। इन का मुख भोला भाला सहज सौन्दर्य्य से पूर्ण और सतोगुणी तेज से देदीप्यमान था। कभी इन्हों ने सिंगार न किया। सांसारिक सुख की ओर यौवनावस्था में भी इन्हों ने तृणमात्र चित्त न दिया। धर्म्म की विमल ज्योति और ईश्वरीय प्रताप इन के चिहरे से प्रगट था। धर्म्मसाधन और कठिन वैराग्य व्रतपालन ही में इन को आनन्द मिलता था और अनशानादिक नियम ही इन का व्यसन था। इन के समस्त चरित्र में से दो एक दृष्टान्त स्वरूप यहां पर लिखे जाते हैं।

महात्मा मुहम्मद के चचेरे भाई और परम सहायक आदरणीय अली से इन का विवाह हुआ और सुप्रसिद्ध हसन हुसैन इन के दो पुत्र थे।

एक बेर कुरेशवंशीय अनेक संभ्रान्तजन महात्मा मुहम्मद के पास आए और बोले कि यद्यपि हमारा आप का धर्म सम्बन्ध नहीं है पर हम आप एक ही वंश के और एक ही स्थान के हैं इस से हम लोगों की इच्छा है कि हम लोगों के यहां जो अमुक आप सम्बन्धी का अमुक से विवाह होनेवाला है उस कार्य को आप की पुत्री फातिमा चल कर अपने हाथ से सम्पादन करें। महात्मा मुहम्मद ने अच्छा कह कर बिदा कियां और फातिमा के निकट आ कर कहने लगे—वत्से! लोगों से सद्भाव, तथा शत्रुओं का उत्पीड़न सहन करना और शत्रुतारूपी विष को कृतज्ञता रूपी सुधा भाव से पान ही हमारा धर्म है। आज अरब के अनेक मान्य लोगों ने अपने विवाह में तुम को बुलाया। यह हमारी इच्छा है कि तुम वहां जाओ, परन्तु तुम्हारी क्या अनुमति है हम जानना

चाहते हैं। फातिमा ने कहा ईश्वर और ईश्वर के भेजे हुए आचार्य्य की आज्ञा कौन उल्लंघन कर सकता है ? हम तो आप की आज्ञाधीना दासी हैं, इस से हमारी सामर्थ्य नहीं कि आप को आज्ञा टालें। हम विवाह सभा में जायंगे, परन्तु शोच यह है कि हम कौन सा वस्त्र पहन के जायंगे। वहां और स्त्री लोग महामूल्य वस्त्राभरणादिक धारण कर के आवेंगी और हमारी फटी चद्दर देख कर वे लोग हमारा और आप का उपहास करेंगी। अबूजुहल की वहिन आनवा की स्त्री और शिवा की बेटी इत्यादि अनेक अरब की स्त्री कैसी असभ्यचारिणी और मन्दप्रकृति हैं यह आप भलो भांति जानते हैं और हमालन की बेटी आप के चलने की राह में कांटा बिछा आती थी तथा अबूसफिनान की स्त्री को आप की निन्दा के सिवा और कोई काम ही नहीं है, यह भी आप को अविदित नहीं। सब उस सभा में उपस्थित रहेंगी और रूम और मिस्र के बहुमूल्य अलङ्कार धारण कर के मणिपीठ के ऊंचे आसन पर बड़े गर्व्व से बैठेंगी। उस सभा में आप की कन्या को एक मैली फटी पुरानी चद्दर ओढ़ कर जाना होगा। हम को देख कर वे सब कहेंगी कि इस कन्या को क्या हुआ। इस की माता की अतुल सम्पत्ति क्या हो गई जो इस वेश से यहां आई है। पिता ! इन लोगों को धर्म्मज्ञान और अन्तरचक्षु नहीं है, केवल जगत् के वाह्याडम्बर में भूले हैं, इस से हम को देख कर वह आप की निन्दा करेंगी और केवल हमारे कारण आप का अपमान होगा।

फातिमा पिता से यह कहती थीं और उन के नेत्रों से जल बहता था। महात्मा महम्मद ने उत्तर दिया—बेटी ! तुम किञ्चिन्मात्र भी सोच मत करो। हमारे पास उत्तम वस्त्राभरण और धन तो निस्सन्देह कुछ भी नहीं है, परन्तु निश्चय रक्खो कि जो आज लाल पीले वस्त्र पहन कर अलङ्कार के उद्यान में फूली फूली दिखाई पड़ती हैं वे अपने दुष्कर्मों से कल तृण से भी तुच्छ हो कर नर्क की अग्नि में जलेंगी। हम लोगों का वस्त्र और शोभा वैराग्य है। महात्मा महम्मद और भी कुछ कहा चाहते थे कि फातिमा ने कहा, पिता ! क्षमा कीजिये अब विलम्ब करने की कुछ प्रयोजन नहीं, आप की आज्ञा हम को सर्व्वथा शिरोधार्य्य है।

यह कह कर बीबी फातिमा घर से निकलीं * और उस विवाह सभा की ओर अकेली चलीं, परन्तु लिखा है कि ईश्वर के अनुग्रह से उन के अङ्ग पर दिव्य अमूल्य वस्त्राभरण सज्जित हो गये। कुरेशवंश में और अरब की स्त्री लोग अभिमान से फातिमा की मार्ग की परीक्षा कर रही थीं और कहती थीं कि आज हम लोगों की सभा में महात्मा महम्मद की बेटी फटा कपड़ा पहन कर आवेगी और हम लोगों के उत्तम वस्त्राभूषण देख के आज वह भली भांति लज्जित होगी। इतने में बिद्युल्लता की भांति साम्हने से

* हमारे पुराणों में भी लिखा है कि सती जब उदास हो कर दक्ष के यज्ञ में बिना सिंगार किये ही चलीं तो मार्ग में कुबेर ने उन को उत्तम २ वस्त्राभरण पहिना दिया। वैसे ही अनुमान होता है कि अपने आचार्य्य महात्मा मुहम्मद की बेटी को वस्त्रहीन देख कर उन के किसी धनिक सेवक ने अमूल्य वस्त्राभरण से उन को सजा दिया।

फातमा की शोभा चमकी और विवाह-मण्डप में इन के आते ही एक प्रकाश हो गया। फातिमा ने नम्र भाव से सब स्त्रियों को यथायोग्य अभिवादन किया, परन्तु वे सब स्त्रियां ऐसी हतबुद्धि और धैर्यरहित हो गईं कि सलाम का उत्तर न दे सकीं। फातिमा का मुखचन्द्र देख कर अभिमानिनी स्त्रियों के हृदय कमल मुरझा गये और आंखों में चकचौंधी छा गई। सब की सब घबड़ा कर उठ खड़ी हुईं और आपस में कहने लगीं कि यह किस महाराज की कन्या और किस राजकुमार की स्त्री है। एक ने कहा, यह देवकन्या हैं। दूसरी बोली, नहीं, कोई तारा टूट कर गिरा है। कोई बोली, सूर्य्य की ज्योति है। किसी ने कहा, नहीं नहीं, आकाश से चन्द्रमा उतरा। परन्तु जिन के चित्त में धर्म्मवासना थी उन्हों ने कहा कि यह ईश्वरीय ज्योति है, यह अनेक अनुमान तो लोगों ने किये, परन्तु यह सन्देह सब को रहा कि कोई होय पर यह यहां क्यों आई है। अन्त में जब लोगों ने पहचाना कि यह बीबी फातिमा है तो सब को अत्यन्त लज्जा और आश्चर्य्य हुआ। सब से ऊंचे आसन पर उन को लोगों ने बैठाया और आप सब सिर झुका कर उन के आस पास बैठ गईं। कई उन में से हाथ जोड़ कर बोलीं, हे महापुरुष महम्मद की कन्या! हम लोगों ने आप को बड़ा कष्ट दिया, हम लोगों के कारण जो आप के नित्य कर्म्म में व्यवधान पड़ा हो उसे क्षमा कीजिये और हमारे योग्य जो कार्य्य हो आज्ञा कीजिये। हम लोगों को जैसा आदेश हो वैसा भोजन और शरबत आप के वास्ते सिद्ध करें। बीबी फातिमा ने विनय पूर्वक उत्तर दिया—भोजन और शरबत से हमारा प्रयोजन नहीं, हमारा और

हमारे पितृदेव का विषय में विराग सहज स्वभाव है। अनशन व्रत हम लोगों को सुस्वाद भोजन के बदले अत्यन्त प्रिय है। हमारा और हमारे पिता का सन्तोष ईश्वर की प्रसन्नता है। तुम लोग देवी, देवता, भूत, प्रेत इत्यादि की पूजा और पाखण्ड छोड़ कर सत्य धर्म के प्रकाश में आओ, एक परमेश्वर की भक्ति करो, परस्पर बैर का त्याग और आपस में प्रीति करो। अनेक स्त्रियां फातिमा का यह अतुल प्रभाव देख कर उसी समय मुसलमान हुईं और जिन्हों ने उन का धर्म्म नहीं ग्रहन किया उन्हों ने भी उन का बड़ा आदर किया।

किसी विशेष रोग के कारण इन की मृत्यु नहीं हुई। पितृ-वियोग का शोक ही इन की मृत्यु का मुख्य कारण है। कहते हैं कि महात्मा महम्मद की मृत्यु के पीछे फातिमा शोक से अत्यन्त बिह्वल रहीं। किसी भांति भी इन को बोध नहीं होता था, रात दिन रोती थीं और बारम्बार मूर्च्छित हो जाती थीं। एक दिन उन्हों ने कुछ स्वप्न देखा और मृत्यु के हेतु प्रस्तुत हो कर अपने प्रिय स्वामी आदरणीय अली को बुला कर कहा "कल पितृदेव को स्वप्न में देखा है जैसे वह चारो ओर नेत्र फैला कर किसी के मार्ग की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम ने कहा, पिता! तुमारे विच्छेद से हमारा हृदय विदग्ध और शरीर अत्यन्त जीर्ण हो रहा है। उन्हों ने उत्तर दिया, पुत्री! हम भी तो मार्ग ही देख रहे हैं। फिर हम ने ऊंचे स्वर से कहा, पिता! आप किस का मार्ग देख रहे हैं? तब उन्हों ने कहा, कि तुम्हारा मार्ग देख रहे हैं। पुत्री फातमा! हमारा तुमारा वियोग बहुत दिन रहा, इस से तुमारे बिना अब

प्राण व्याकुल हैं। तुमारे शरीर त्याग का समय उपस्थित है; अब तुम अपनी आत्मा को शरीर सम्पर्क शून्य करो। इस निकृष्ट संकीर्ण जगत् का परित्याग कर के उस प्रसारित उन्नत देदीप्यमान आनन्दमय जगत् में गृहस्थापन करो। संसाररूपी क्लेश कारागार से छुट कर नित्य सुखमय परलोक उद्यान की ओर यात्रा करो। फातिमा ! जब तक तुम न आओगी तब तक हम नहीं जायंगे। हम ने कहा, पिता ! हम भी तुम्हारी दर्शनार्थी हैं, तुम्हारी सहवास सम्पत्ति लाभ करें यही हमारी भी आकांक्षा है। इस पर उन्हों ने कहा, तो फिर बिलम्ब मत करो, कल ही हमारे पास आओ। इस के पीछे हमारी नींद खुली, अब इस उन्नत लोक में जाने के लिये हमारा हृदय व्याकुल है। हम को निश्चय है कि आज सांझ या पहर रात तक हम इस लोक का त्याग करेंगे। हमारे पीछे तुम अत्यन्त शोकाकुल रहोगे, इस से जिस में हमारे सन्तान भूखे न रहें हम आज रोटी कर के रख देते हैं और पुत्र कन्या का वस्त्र भी धो देते हैं। हमारे पीछे यह कौन करेगा इस हेतु हम आप ही इन कामों से छुट्टी कर रखते हैं। हमारे अभाव में हमारे पुत्रों को कौन प्यार करेगा ? हमारी इच्छा थी कि आज इन का सिर सवांरें, परन्तु हम को सन्देह है कि कल कोई उन के मुंह की धूल भी न झारेगा"।

अली यह सुन कर अत्यन्त शोकाकुल हो कर रोने लगे और कहा कि फातिमा ! तुम्हारे पिता के वियोग से हृदय में जो क्षत है वह अब तक पूरा नहीं हुआ और उन महात्मा के चरण दर्शन बिना जो शोक है वह किसी प्रकार से नहीं जाता। इस पर

तुम्हारा वियोग भी उपस्थित हुआ। यह आघात पर आघात और विपत्ति पर विपत्ति पड़ी। फ़ातिमा ने कहा, अली! उस विपत्ति में धैर्य किया है और इस में भी करो, इस क्षण में एक मुहूर्त भर भी हम से अलग मत रहो, हमारे श्वासवायु अवसान का समय निकट है, नित्यधाम में हम तुम फिर मिलेंगे यह प्रतिज्ञा रही।

बीबी फ़ातिमा यह कहती थीं और हसन हुसैन के मुख को ओर देख कर दीर्घश्वास के साथ अश्रुवर्षन करती जाती थीं। माता की यह बात सुन कर हसन हुसैन भी रोने लगे। फ़ातिमा ने कहा, प्यारे बच्चो! थोड़ी देर के वास्ते तुम लोग मातामह के समाधि-उद्यान में जाओ और हमारे हेतु प्रार्थना करो। वे लोग माता के आज्ञानुसार चले गये। फ़ातिमा तब बिछौने पर लेट गई और अली से कहा, प्रिय! तुम पास बैठो। बिदा का समय उपस्थित है। अली बैठे और शोक से रोने लगे। तब फ़ातिमा ने आसमा नाम की दासी को बुला कर कहा कि अन्न प्रस्तुत रक्खो, हमारे प्यारे हसन हुसैन आ कर भोजन करेंगे। जब वे घर आवें तब उन लोगों को अमुक स्थान पर बैठाना और भोजन कराना। उन को हमारे निकट मत आने देना, क्योंकि हमारी अवस्था देख कर वे घबड़ायेंगे। आसमा ने वैसा ही किया। इधर फ़ातिमा ने अली से कहा–हमारा सिर तुम अपनी गोद में ले बैठो, अब जीवन में केवल कुछ क्षण बाकी है। अली ने कहा, फ़ातिमा! तुम्हारी ऐसी बातें हम नहीं सुन सकते। फ़ातिमा ने उत्तर दिया, अली! पथ खुला है, हम प्रस्थान करहींगे और मन अत्यन्त शोकाकुल है और तुम से कुछ कहना भी अवश्य है। हमारी बात सुनो और

हमारे वियोग का शर्बत वाध्य हो कर पान करो। अली फ़ातिमा का सिर गोद में ले कर बैठे। फ़ातिमा ने नेत्र खोल कर अली के मुख की ओर देखा; उस समय अली के नेत्रों से आंसू के बूंद फ़ातिमा के मुख पर टपकते थे। अली को रोते देख कर फ़ातिमा ने कहा, नाथ! यह रोने का समय नहीं है, अवकाश बहुत थोड़ा है। अन्तिम कथा सुन लो। अली ने कहा, कहो क्या कहती हो? फ़ातिमा ने कहा, हमें चार बात कहनी है, पहली यह कि हम तुम्हारे संग बहुत दिन तक रहे। यदि हम से कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करो। अली रोने लगे, और बोले—कभी तुम ने आज तक कोई ऐसी बात ही नहीं किया जो हमारे प्रतिकूल हो। प्यारी! तुम तो सर्व्वदा हमारी मनोरञ्जनी रहीं, भूल कर भी तुम ने हम को कोई कष्ट नहीं दिया, तुम ने सब आपत्ति अपने ऊपर सहन किया, परन्तु हम को दुख न दिया, तुम उपकारिणी थीं, अपकारिणी नहीं। तुम को हम ने कोमल पुष्पमाला की भांति अपने हृदय पर धारण किया, कण्टक की भांति नहीं। बोलो, और बोलो और कौन बात है? फ़ातिमा ने कहा, दूसरे यह कि हमारे प्यारे हसन हुसैन की रक्षा करना। जिस लाड़ प्यार और राव चाव से हम ने उन को पाला है उस में कुछ न्यूनता न हो; उन की सब अभिलाषा पूरी करना। तीसरे यह कि हमारे सब को रात्रि को भूमिशायी करना, क्योंकि जीवन दशा में जैसे पर पुरुष की दृष्टि हमारे शरीर पर नहीं पड़ी है वैसा ही पीछे भी हो। चौथे, हमारी समाधि पर कभी २ आ जाना। इतने में हसन हुसैन भी आ गए और माता की यह अवस्था देख कर बहुत रोने लगे। फ़ातिमा ने किसी प्रकार

समझा कर फिर बाहर भेजा और दासी को बुला कर बीबी फातिमा * ने स्नान किया और एक धौत वस्त्र परिधान कर के एक निर्जन गृह में दक्षिण पार्श्व से शयन कर के ईश्वर का स्मरण करने लगीं। इसी अवस्था में उन्हों ने परलोक गमन किया।

आदरणीय अली की मृत्यु का समाचार।

परम धार्म्मिक सुप्रसिद्ध अली मुसलमान धर्म्म के प्रवर्त्तक हज़रत महम्मद के जामाता और शीआ सम्प्रदाय के पहिले एमाम (आचार्य) थे। हजरत महम्मद के लोकान्तर गमन पीछे मुसलमान धर्म्म की स्थिति और उन्नति अली के ही ऊपर निर्भर थी। जैसे भक्तिभाजन ईसा को उन के शिष्य जूडा ने त्रिंशत मुद्रा के लोभ से शत्रुहस्त में समर्पण कर के वध किया था वैसे ही इबन्मुलज़म नामक एक व्यक्ति ने एक दुश्चारिनी नारी के प्रलोभन में उस की कुमन्त्रना से स्वीय धर्म्माचार्य अली को स्वयं करवालाघात से निहत किया। यह उस से भी भयङ्कर व्यापार है। इबन्मुलज़म के मात्र चरित्र की चञ्चलता देख कर पहिले ही उस के ऊपर अली का सन्देह हुआ था। एक दिन इबन्मुलज़म ने अली को एक उत्कृष्ट सामग्री उपहार दी थी। अली उस उपहार के प्रति अनादर प्रदर्शन कर के बोले कि हम तुम्हारे इस उपढौकन ग्रहण में नहीं प्रस्तुत हैं; तुम परिणाम में हम को जो उपढौकन प्रदान करोगे उस के लिए हम विशेष चिन्तित हैं। इस के कुछ

---

* इफताम अरबी में बच्चे को दूध से छुड़ाने को कहते हैं। इन का फातिमा नाम इसी हेतु पड़ा था कि छोटेपनही में इन की माता की मृत्यु हुई थी।

दिन पीछे अली शिष्य मण्डलीकसाथकूफ़ानगर में उपस्थित हुए। वहां इबन्मुलज़म ने कुत्तामा नाम की एक दुश्चरित्रा विधवा युवती के सौंदर्य से मुग्ध होकर उस से परिनय अभिलाषा प्रगट की। कुत्तामा ने उस को प्रलोभन जाल में आवद्ध कर के कहा, हमारे तीन पण हैं सो पूर्ण करने से हम तुम्हारे साथ व्याह में सम्मत हैं। एक सहस्र दिरहम (ताम्रमुद्रा विशेष) एक जन सुगायिका सुन्दरी दासी और मुहम्मद के जामाता अली का वध साधन। यह सुन कर इबन्मुलज़म बोला—पहिले दोनों पण कठिन नहीं हैं वह संसाधन कर सकेंगे, किन्तु तीसरा पण गुरुतर है इस के संसाधन में हम अक्षम हैं। कुत्तामा बोली, शेषोक्तपण ही सब में प्रधान है, अली हमारे पितृकुल का शत्रु है, उस का प्राणसंहार बिना किए कोई भांति विवाह नहीं हो सकता है। दुरात्मा एबन् मुलज़म उस का सुदृढ़ पण देख कर उस में भी सम्मत हुआ। एवं विषाक्त तीक्ष्ण करवाल के द्वारा गुरु को हत्या करने का सुयोग देखने लगा। एक दिन निशीथ समय में अली कूफा की जामा मस्जिद के दरवाजे पर खड़े होकर नमाज में प्रवृत्त हैं, उस समय सुयोग समझ कर अतर्कित भाव से उस ने अली के सिर में एक आघात किया। अली आघात पाकर चिल्ला कर भूतलशायी हुए। शोनित स्रोत से मस्जिद स्रावित हो गई। उन के आहत मस्तक से मस्तिष्क उद्भिन्न हो कर गिरा। दुरात्मा इबन्मुलज़म उसी क्षण धृत हो कर बन्दी हुआ। पीछे उस ने दुष्कर्म का समुचित प्रतिफल भोग किया। अली ने दो दिवस विष की विषम यंत्रना भोग कर के बन्धु वर्ग को शोकसागर में मग्न कर

के परलोक गमन किया। मृत्युकाल में स्वीय 'प्रियतम पुत्र हसन को यह अनुमति दिया कि हमारा देह निशीथ समय में किसी निभृत स्थान में निहित करना; वही कार्य में परिणत हुआ। जब हसन पितृदेह भूमि निहित कर के लौटते थे उस समय एक व्यक्ति के रोने का शब्द सुन पड़ा। वह क्रन्दन का लक्ष कर के वहां उपस्थित हुए देखा कि एक दरिद्र अन्ध वृद्ध आकुल हो कर रो रहा है। हसन ने रोने का कारण पूछा, तो वह बोला कि प्रति दिन रात को एक महापुरुष आकर हम को आहार देते थे और सुमिष्ट वचन से परितोष करते थे। आज तीन् दिन से वह नहीं आते हैं, और वह मधुर वचन नहीं सुनने पाते हैं, हम अनाहार हैं। हसन ने पूछा,' उन का नाम क्या है? अन्धा बोला, उन्हों ने हम को अपना परिचय नहीं दिया। परिचय पूछने से वह कहते थे, हमारे परिचय से तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है, तुम हमारी सेवा ग्रहण करो। उन का कंठस्वर ऐसा था, वह अल्ला अल्ला की सदा ध्वनि करते थे। हसन अन्धे की बात से जान गए कि वह महापुरुष उन के पिता थे। तब अश्रुपात कर के बोले, कि आज वह महात्मा परलोक सिधारे हैं। अभी उन की अन्त्येष्टि क्रिया समाधान कर के हम चले आते हैं। वृद्ध यह सुन कर शोक से मूर्च्छित हो गिर पड़ा। पीछे रोते रोते बोला, तुम लोग हम को अनुग्रह कर के उन की पवित्र समाधि भूमि में ले चलो। हसन हाथ पकड़ कर वृद्ध को वहां ले गए। वृद्ध ने वहां शोक और अनाहार से प्राण त्याग किया।

एक दिन किसी विपथगामी ईश्वरविरोधी व्यक्ति ने परम प्रेमिक अली से पूछा था कि, हे ज्ञानवान् अली ! गृह चढ़ा और उच्च प्रासाद शिखर पर भी ईश्वर तुम्हारे रक्षक हैं, यह तुम स्वीकार करते हो ? अली बोले "हां, शैशव में, यौवन में, सर्वक्षण सर्वस्थान में वह हमारे प्राण के रक्षक हैं।" यह बात सुन कर वह बोला, तुम अपने को, इस अट्टालिका पर से गिरा कर ईश्वर तुम को रक्षा करते हैं, इस विश्वास की पूर्णता प्रदर्शन करो, तब तुम्हारे विश्वास का हम विश्वास करेंगे और तुम्हारी ईश्वरनिष्ठा प्रमाण युक्त होगी। तब अली बोले, चुप रहो और चले जाओ और स्पर्द्धा कर के जीवन को कलंकित मत करो। मनुष्य का क्या साध्य है कि ईश्वर को परीक्षा में बुलावै। केवल उन को परीक्षा करने का अधिकार है। वह प्रति मुहूर्त्त में मनुष्य के निकट परीक्षा उपस्थित करते हैं। वह हम लोगों के पास हैं। हमलोग क्या हैं, वह प्रकाश कर देते हैं। अन्तर में हम लोग किस भांति धर्म्मभाव रखते हैं, वह दिखला देते हैं। कौन मनुष्य ईश्वर को ऐसी बात कह सकता है कि यह सब पाप अपराध कर के हम ने तुम्हारी परीक्षा किया। हे ईश्वर! देखैं, तुम्हारी कितनी सहिष्णुता है ! हा ! ऐसा कहने का किस को अधिकार है ? तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त दुष्ट हुई है। तुम्हारी यह उक्ति सब पापों से बढ़ कर है। जो यह सुविशाल नभोमण्डल का रचयिता है, उस की तुम परीक्षा करने क्या जानो ? तुम अपना शुभाशुभ तो जानते ही नहीं हो। पहिले अपनी परीक्षा करो, पीछे दूसरे की परीक्षा करना। पथप्रदर्शक अग्रगामी गुरु की जो शिष्य परीक्षा करता है वह मूर्ख है। जिस को तम ने परीक्षक

किया है, हे अविश्वासी, यदि उन्हीं की धर्म्ममार्ग में तुम परीक्षा करो, तो तुम्हारी दुःसाहसिकता और मूर्खता प्रकाश होगी। तुम ईश्वर की क्या परीक्षा करोगे? धूलिकणिका क्या पर्वत की परीक्षा कर सकती है? मनुष्य अपने बुद्धिगत अनुमान से तुला यन्त्र प्रस्तुत कर के ईश्वर को उस में स्थापन करने जाता है, किन्तु ईश्वर बुद्धि के अनायत्त हैं, उन के द्वारा बुद्धि निर्म्मित परिमाण यन्त्र चूर्ण हो जाता है। ईश्वर की परीक्षा करना और उन को आयत्त करना एक ही है। तुम एतादृश महाराज को आयत्त करने की चेष्टा मत करो, चित्रित वस्तु किस प्रकार से चित्रकार की परीक्षा करेगा। उन के असीम ज्ञान में जो सब चित्र विद्यमान हैं उन के पास परिदृश्यमान विश्वचित्र क्या पदार्थ है। जब परीक्षा ग्रहण की कुबुद्धि के द्वारा तुम आक्रान्त होते हो, तब जानना तुम को संहार करने के लिए दुर्भाग्य उपस्थित हुआ है। अकस्मात् ईश्वर में ऐसी कुबुद्धि उपस्थित हो तो भूमिष्ठ प्रणत होना। भूमि को शोकाश्रुस्रोत से अभिषिक्त करना और कहना, हे ईश्वर! इस कुचिन्ता से हमारी रक्षा करो। तब परम परीक्षक ईश्वर तुम को रक्षा करेंगे।

इमाम हसन और इमाम हुसैन।

महात्मा मुहम्मद के जन्म का समाचार पूर्व में लिखा जा चुका है। इन को १८ सन्तति हुई, किन्तु वंश किसी के आगे नहीं चला, केवल बीबी फ़ातिमा को वंश हुआ। यह बीबी फ़ातिमा आदरणीय अली से व्याही थीं। जब तक यह जीती थीं और

विवाह आदरणीय अली ने नहीं किया केवल इन्हीं को अली मान कर इन्हीं के मुखपंकज के अली बने रहे। बीबी फ़ातिमा को पांच सन्तति हुई, तीन पुत्र हसन हुसैन और मुहसिन, और जैनब और उम्म कुलसुम यह दो बेटियां थीं। इन में मुहसिन छोटेपन ही में मर गए। अली ने बीबी फ़ातिमा के मरने के पीछे उलनवीन से विवाह किया, उस से चार पुत्र अब्बास जाफ़र, उसमान और अब्दुल्लाह उत्पन्न हुए, जो चारो अपने भाई इमाम हुसेन के साथ करबला में बीर गति को गए। इन में से अब्बास को सन्तति चली। तीसरी स्त्री कैसी, उस से अब्दुल्लाह और अबूबकर यह दोनों भी करबला में मारे गए। चौथी स्त्री इसमानित से मुहम्मद और यहिया दो पुत्र हुए। इन चारों को सन्तति नहीं है। पांचवी स्त्री सहबाई से उमर और रुकिया, जिन में से उमर की सन्तति है। छठवीं स्त्री अम्मामा। इस को मुहम्मद मध्यम नामक पुत्र हुआ, किन्तु आगे सन्तति नहीं। सातवीं स्त्री इन की खूला है, जिन के पुत्र बड़े मुहम्मद हुए, जिन का वंश वर्त्तमान है। आदरणीय अली को इन बेटों के सिवा चौदह बेटियां भी हुईं। इन सब से इमाम हसन, इमाम हुसैन, अब्बास मुहम्मद और उमर का वंश है, जिन में इमाम हसन और इमाम हुसेन की सन्तति सैयद कहलाती है और शेष तीनों की साहबजादों के नाम से पुकारी जाती है। किन्तु शीया लोगों में अनेक इमाम हसन के वंश को भी सैयद नहीं कहते हैं और कहते हैं कि ठीक सैयद केवल इमाम जनलावदीन (इमाम हुसेन के मध्यम पुत्र) का वंश है। आदरणीय अली सब के पहिले मुसल्मान हुए और दाहिनी भुजा की भांति महात्मा मुहम्मद के

सदा सहायक रहे। इन्हीं अली के पुत्र इमाम हुसेन थे, जिन का दुष्टों ने करबला में बध किया, जिस का हम क्रम से वर्णन करते हैं।

महात्मा मुहम्मद के (६३२ ई०) मृत्यु के पीछे अबूबकर (६३२ ई०) खलीफा हुए और उन के पीछे उमर (६३४ ई०) और फिर उसमान (६४४ ई०) इस में कुछ सन्देह नहीं कि महात्मा मुहम्मद पीछे उन के सब शिष्यों का धन और देश और शासन के लोभ ने ऐसा घेर लिया था कि सब धर्म्म को भूल गए थे। केवल आड़ के वास्ते धर्म्म था। यद्यपि उपद्रव तो मुहम्मद महात्मा की मृत्यु के साथ ही हुआ, किन्तु तीसरे खलीफा (महन्त) के काल से उपद्रव बढ़ गया। यह हम पक्षपात छोड़ कर कह सकते हैं कि ऐसे घोर समय में आदरणीय अली ने बड़ा सन्तोष प्रकाश किया था। शाम (Asia minor) के लोग इन सब उपद्रवों की जड़ थे। उन में भी कूफा के सन् ६५६ में इन उपद्रवियों ने उसमान महन्त का व्यर्थ बध किया, और आदरणीय अली को खलीफा बनाया। यही समय मुहर्रम के अन्याय की जड़ है। उसमान खलीफा के समय में महात्मा मुहम्मद के निज शिष्यों में एक मनुष्य मुआविया (जो इन का गोत्रज भी था) नामक शाम और मिसर आदि देशों में गवर्नर था। जब अली खलीफा हुए तो इस मुआविया ने चाहा कि उन को जय कर के आप खलीफा हों। यहां तक कि अनेक युद्धों में मुसलमानों पर अपना अधिकार जमाता गया। सन् ६६१ में पांच बरस खलीफा रह कर अली एक दुष्ट के हाथ से मारे गए। इन के पीछे इन के बड़े

और महात्मा मुहम्मद के नाती इमाम हसन खलीफा हुए, किन्तु मुआविया ने इन को भी अपने राज्य लोभ से भांति २ का कष्ट देना आरम्भ किया। उस समय के लोग ऐसे क्रूर, लोभी और दुष्ट थे कि धर्म्म छोड़ कर लोभ से बहुत मुआविया से मिल गए और अपने परमाचार्य्य की एकमात्र सन्तति हसन हुसैन को दुःख देने लगे। इमाम हसन यहां तक दुःखी हुए कि चार लाख साल पिन्शन पर निराश हो कर खिलाफत से बाज आए। कुछ ऊपर छ महीने मात्र ये खलीफा थे। किन्तु इस पिन्शन के देने में भी मुआविया बड़ी देर और हुज्जत करता रहा। यहां तक कि सन् ४६ हिजरी (६७० ई०) में मुआविया के पुत्र यजीद ने इमाम हसन की एक दुष्ट स्त्री जादा के द्वारा उन को विष दिलवाया। कहते हैं कि दो बेर पहिले भी इस दुष्टा स्त्री ने इस लोभ से कि वह यजीद को स्त्री होगी इमाम को विष दिया था, किन्तु तीसरी बार का विष ऐसा था कि उस से प्राण न बच सके और इस असार संसार को छोड़ गए। पन्द्रह पुत्र और ८ कन्या इन को हुई थीं। अब लोग इन दुष्टों के धर्म्म को देखें कि साक्षात् परमाचार्य्य ईश्वर प्रिय 'वरञ्च ईश्वर तुल्य' अपने गुरु की सन्तति और गुरु पुत्र और स्वयं भी गुरु उस का इन लोगों ने कैसे आनन्द से वध किया।

इमाम हसन के मरने के पीछे यदीज बहुत प्रसन्न हुआ और अपने राज्य को निष्कण्टक समझने लगा। अब केवल इन लोगों की दृष्टि में इमाम हुसैन बचे जो कि रात दिन खटकते थे, क्योंकि धर्म्मी और श्रद्धालु लोग इन के पक्षपाती थे। मुआविया और

उस के साथी लोग अब इस सोच में हुए कि किसी प्रकार इन को भी समाप्त करो तो निर्द्वन्द्व राज्य हो जाय। सन् ४६ के अन्त में मुआविया मर गया और यदोज नारकी मुसलमानों का महन्त हुआ। यह मद्यप, परस्त्रीगामी और बेईमान् था, इसी हेतु इस के महन्त अपने से अनेक लोगों ने अप्रसन्नता प्रकट की। मक्के और मदीने के सभ्य और अनेक प्राचीन लोग उस के धर्म्म-शासन से फिर गए और अनेक लोग नगर छोड़ छोड़ कर दूर जा बसे। इमाम हुसैन का तो मानो वह शत्रु ही था। मदीना के हाकिम को लिख भेजा कि या तो इमाम हुसैन हमारा शिष्यत्व स्वीकार करें या उन का सिर काट लो। मदीने के हाकिम ने यह वृत्त इमाम हुसैन से कहा और उन पर अधिकार जमाने को नाना प्रकार की उपाधि करने लगा। यह बिचारे दुखी हो कर अपने नाना और मा की समाधि पर बिदा होने गए और रो रो कर कहने लगे कि नाना तुम्हारे धर्म्म के लोग निरपराध हुसैन को कष्ट देते हैं, हसन को विष दे कर मार चुके पर अभी इन को सन्तोष नहीं हुआ। तुम्हारे एक मात्र पुत्र और उत्तराधिकारी दीन हुसैन को महन्तों का पद त्याग करने पर भी यह लोग नहीं जीता छोड़ा चाहते। इसी प्रकार अनेक बिलाप कर के अपनी मा और भाई की समाधि पर से भी बिदा हुए और अपनी सपत्नी नानियों और सम्बन्धियों से बिदा हो कर मक्के की ओर चले। इसी समय कूफा के लोगों ने इमाम को एक पत्र लिखा। उस में उन लोगों ने लिखा कि "हम लोग यजीद मद्यप के धर्म्म-शासन से निकल चुके हैं, आप यहां आइए, आप ही वास्तव में

हमारे गुरु हैं, हम लोग आप के चरण के शरण में रहैंगे और प्राण पर्य्यन्त आप से अलग न होंगे। इस बात को हम शपथ करते हैं।" इस पत्र पर कूफा के हज़ारों मुख्य के हस्ताक्षर थे। इस पत्र को पाकर इमाम ने कूफा जाना चाहा। उन के बन्धुओं ने उन से बहुत कहा कि कूफे के लोग झूठे होते हैं, आप उन का विश्वास न कीजिए। पर उन के ईश्वर की शपथ खाने पर विश्वास कर के इमाम ने किसी का कहना न सुना और अपने मक्का की यात्रा की। उस समय अपने चचेरे भाई मुसलिम को कूफियों के पास भेजा कि उन को मक्का से लौटती समय इमाम के कूफा आने का सम्वाद पहिले से दें। इन को इधर भेज कर आप बन्दना के हेतु मक्के चले। मुसलिम जब कूफे में पहुंचे तो इन का वहां के लोगों ने बड़ा शिष्टाचार किया और इमाम हुसैन के गुरुत्व का सब ने स्वीकार किया। यह देख कर इन्हों ने इमाम को पत्र लिखा कि आप निश्शङ्क कूफा आइए; यहां के लोग सब आप के दासानुदास हैं और तीस हज़ार आदमियों ने आप को गुरु माना है। इस पत्र के विश्वास पर इमाम हुसैन कूफे की ओर और भी निश्चिन्त हो कर चले और बान्धवों का वाक्य स्वीकार न किया। किन्तु शोच की बात है कि बिचारे मुसलिम वहां मारे जा चुके थे। कारण यह हुआ कि यजीद ने जब सुना कि कूफा में मुसलिम इमाम हुसैन का आचार्य्यत्व चला रहे हैं तो उस ने वहां के हाकिम को बदल दिया और अबोदुल्लाह जियाद नन्दन को हाकिम बनाया और आज्ञा भेजा कि हुसैन को बकरे की भांति जिबह करो और मुसलिम को तो जाते ही मार डालो।

अबै जियाद पुत्र शाम का हाकिम हुआ तो मुसलिम के पकड़ने को फ़िक्र में हुआ। पहिले तो कूफे के लोग मुसलिम के साथ उस के मकान पर चढ़ गए, परन्तु जब उस ने उन लोगों को धमकाया और लालच दिया तो एक एक कर के सब मुसलिम का साथ छोड़ कर चले गए और मुसलिम विचारे भाग कर एक घर में जा छिपे। परन्तु लोगों ने उन को वहां भी जाने न दिया और पकड़ लाए और इबने जियाद की आज्ञा से उन का सिर काटा गया और उन का साथी हानी भी मारा गया, बरञ्च उन के दो लड़कों को भी मार डाला। महात्मा मुसलिम मरने के समय यही कहते थे कि मुझे अपने मरने का कष्ट नहीं, क्योंकि सत्य मार्ग स्थापन में मेरे प्राण जाते हैं। मुझे शोच यही है कि मेरे पत्र के विश्वास पर इन कृतघ्नी और विश्वासघाती कूफा वालों के विश्वास पर इमाम हुसैन यहां चले आवैंगे और उन महापुरुष के साथ भी ये कापुरुष कुपुरुष यही व्यवहार करैंगे और आचार्य मुहम्मद की सन्तान को निरपराध ये लोग बध कर डालैंगे। हाय! उन के भाई मुसलिम कूफे में यों अनाथ की भांति मारे गये, यह हुसैन को नहीं मालूम था और वे मंज़िल मंजिल इधर ही बढ़े आते थे। यहां तक कि जब शाम के हाते के भीतर पहुंच चुके तब उन्हों ने मुसलिम का मरना सुना। उस समय आप ने अपने साथ के लोगों से कहा कि भाई अब सब लोग तुम अपने देश लौट जाओ, हम तो प्राण देने जाते हैं। उस समय वे सब लोग, जो अरब से साथ आए थे, प्राण के भय से अपने सच्चे स्वामी को छोड़ कर चले गये। यहां तक कि हज़ारों की जमात में केवल ७२

मनुष्य साथ रह गए। जब इन लोगों के साथ इमाम सरलैफ़ नामक स्थान पर पहुंचे तो हुर नामी अबोदुल्लाल का सेनापति दो हज़ार सिपाहियों के साथ मिला और वह इन लोगों को घेर कर शाम की तरफ बढ़ता हुआ ले चला। इस समय इमाम ने फिर सब लोगों को जाने को कहा, परन्तु अब तो वे लोग साथ थे जो सच्चे बन्धु थे। ऐसे कठिन समय में कौन साथ छोड़ कर जा सकता था। इसी समय शाम से और भी फौजें आने लगीं। इमाम ने उन लोगों को बहुत समझाया और कहा कि हम यजीद के राज्य के बाहर चले जायं, किन्तु किसी ने उन की बात न सुनी। जब इमाम का डेरा करबला नामक स्थान में पड़ा था उस समय शिमर नामक इबने जियाद के सैनापति ने फुरात नहर का पानी भी इन पर बन्द कर दिया। एक तो गरमी के दिन, दुसरे सफर की गरमी और उस पर यह आपत्ति कि पानी बन्द। शिमर और उमर इस लश्कर में मुख्य थे। यदि इन में से किसी को कभी दया और धर्म्म सूझता भी, लोभ उसे हटा देता। कहते हैं कि यजोद हिमदानी ने साद से जाकर इमाम के वास्ते पानी मांगा और कहा कि क्या तुम को ईश्वर को मुंह नहीं दिखलाना है जो अपने गुरुपुत्र को निरपराध वध करते हो? इस के उत्तर में उस दुष्ट ने कहा कि हम रै की हाकिमी को धर्म से अच्छी समझते हैं। अन्त में अबीदुल्लाह ने साद पुत्र को आज्ञा लिखा कि क्यों इतनी देर करते हो? या तो हुसैन का सिर लाओ या उन को यजीद के मत में लाओ। इस आज्ञा के अनुसार (सन् ६१ हिजरी के) ६ वीं मुहर्रम की सन्ध्या को

अट्ठाईस हज़ार सैना से उमर ने इमाम का लशकर घेर लिया। इमाम उस समय संध्या की बन्दना में थे। उठ कर सेना से कहा कि रात भर को मुझे और फुरसत दो। उमर ने इस बात को माना। इमाम ने साथ के लोगों से कहा कि अब अच्छा है चले आओ और मेरे पीछे प्राण मत दो। परन्तु किसी ने न माना और सब मरने को उद्यत हुए। रात भर सब लोग ईश्वर की स्तुति करते रहे। सबेरे इमाम ने स्त्रियों को धैर्य्य और सन्तोष का उपदेश दिया और आप ईश्वर का स्मरण करते हुए सब हथियार बांध कर अपने साथियों के साथ मरने को निकले। इन के साथ जितने लोग मारे गए उन की संख्या बहत्तर है। इन में ३२ सवार और ४० पैदल थे। सरदारों में मुसलिम बिन उन का जरगामः, वहब उन्स, मालिक, हुज्जाज, जहीर, असदी, आमिर, उम्मग, उमरान, शईब यमर, शूदब, और हबीब इबने मजाहिर (एक वृद्ध मनुष्य) थे और इमाम के नानेदारों में इन की बहिन जैनब के दो लड़के, मुहम्मद और ऊन, और तीन मुसलिम के भाई, पांच इमाम हुसैन के विमात्र भाई अब्बास, उसमान, मुहम्मद अब्दुल्लाह और जाफर और तीन पुत्र इमाम हसन के अब्दुल्लाह जैद और कासिम (किसी के मत से ५ अबूबकर और उम्र भी) और एक पुत्र इमाम हुसेन के अली अकबर (अठारह बरस के) इतने मनुष्य थे। युद्ध होने के पूर्व इमाम एक ऊंट पर बैठ कर सैना के सामने आए और मृदु और गम्भीर स्वर से बोले कि हम ने किसी की स्त्री छीनी या किसी का धन हरण किया या कोई और बात धर्म्म-विरुद्ध की? किस बात पर तुम लोग हम को निरपराध बध करते

हो ? इस का उत्तर किसी ने न दिया, तब इमाम यह कह कर उस ऊंट पर से उतरे कि हम ने संसार में तुम से हुज्जत समाप्त कर ली, अब ईश्वर के यहां हमारा तुम्हारा झगड़ा है, और घोड़े पर सवार हुए। युद्ध आरम्भ हुआ और बड़ी वीरता से इन के साथी सब मारे गए। अन्त में इमाम अपने एक छोटे बच्चे को, जो प्यास से व्याकुल हो रहा था, उन लोगों के सामने लाए और कहा कि इस नौ महीने के बच्चे पर दया कर के केवल इस के पीने को तो पानी दो। इस के उत्तर में उन दुष्टों में से एक ने ऐसा तीर मारा कि वह बच्चा वहीं मर गया। और फिर चारो ओर से घेर कर हज़ारों वार लोगों ने किए, यहां तक कि वे घोड़े पर से गिरे। उस समय किसी ने उन का सिर काटा, किसी ने मरे पर भाला मारा, किसी ने हाथ की उंगली नोची। इस पर भी इन लोगों को सन्तोष न हुआ और उन लोगों के मरे शरीर पर घोड़े दौड़ाए। हाय! इतने बड़े मनुष्य की यह गति! भूख प्यास से दुखी और दीन मनुष्य को निरपराध बाल बच्चे समेत स्त्रियों के सामने मारना इन्हीं लोगों का काम है, उस पर भी गुरु-पुत्र को।

मृत्यु का समय	सन्तति	गाड़ेजानेकास्थान	विशेष विवरण
१२ रबीउलऔ० ६३२ ईसवी ११ हिजरी	४ पुत्र, ४ कन्या	मदीना	बहु देववादी भूतपिशाचोपासी अरब जाति में इन्हीं ने एकेश्वर वादस्थापन कर के मुसलमानी मत चलाया; ग्यारह विवाह किए। बुद्धि आश्चय कौशल सम्पन्न थी। किसी के मत में १४ विवाह १८ सन्तति।
११ हिजरी	३ पुत्र, २ कन्या	मदीना	महात्मा मुहम्मद की एक मात्र वंश रखने वाली प्यारी कन्या थी। स्वभाव बहुत नम्र और दयालु था।
४० हिजरी १९ रमजान	१७ पुत्र, वा १९ १७ कन्या	कूफा० नजफ ठीक नहीं मालूम	सुन्नियों के चौथे खलीफ़ा। शीयाओं के पहले इमाम। पांच बरस तीन महीना खिलाफत किया। माता और पिता दोनों सम्बन्ध में यह म० मुहम्मद के बहुत पास थे अर्थ चचेरे और मौसेरे भाई थे। यह सैयदों के वंशाकर्त्ता और फकीरों के मूल गुरु हैं। नौ विवाह किए थे।
१ रबीउल औवल ४९ हिजरी ६७० ईसवी	१९ पुत्र, ८ कन्या	मदीना	सुन्नियों के पांचवें खलीफ़ा तथा शीयाओं के दूसरे इमाम थे। ६ महीना [illegible] शहीद हुए। पांच पुत्रों का वंश है।
१० मुहर्रम ६१ हिजरी ६८३ ई०	६ पुत्र, ८ कन्या	करबाला	शीयाओं के तीसरे इमाम। करबला के प्रसिद्ध युद्ध में शहीद हुए।
१३ हिजरी ६३४ ई०	३ पुत्र, २ कन्या	मदीना	सुन्नियों के पहले खलीफा थे। महात्मा मुहम्मद के पीछे २ वरस तीन महीना खलीफा रहे। महात्मा मुहम्मद की छोटी स्त्री आशा के पिता थे।

मृत्यु का समय	सन्तति	गाड़ेजानेकास्थान	विशेष विवरण
			चार स्त्री थीं। और मुसलमानी धर्म्म फैलाने को इन्हों ने बहुत सा द्रव्य व्यय किया था।
२३ हिजरी ६४ ई०	[illegible] पुत्र, ३ कन्या	मदीना	दूसरे खलीफा थे, १० बरस आठ महीने खलीफा रहे। शहीद हुए, छ पत्नी और दो उपपत्नी थी।
३५ वा ३४ हि० ६५२ ई.	३ पुत्र, ४ कन्य	मदीना	तीसरे खलीफा थे। १२ बरस खलीफा रहे। इन को महात्मा मुहम्मद की दो बेटियां व्याही थीं किन्तु उन को सन्तति नहीं थी। आठ स्त्री थीं पूर्वोक्त तीनों खलीफा की सन्तति शेख कहलाते हैं।
[illegible]४ हिजरी	[illegible] पुत्र, ८ कन्या	मदीना	शीया लोग केवल इन्हीं की सन्तति का सैयद मानते हैं।
११८ वा ११७ हिजरी	११ पुत्र, ८ कन्या	मदीना	
१४८	६ पुत्र, ३ कन्या	मदीना	

नं०	नाम	बाप का नाम	मा का नाम	जन्म का समय	अवस्था
१२	इमाम मूसाकाज़िम	जाफर	हमीरा	१२८ हिजरी	४५ या ५५
१३	अलीरजा	मूसाकाजिम	तकीम	१५३ हिजरी	४६४
१४	अबूजाफरनकी	अली	रहीना	१९५ हिजरी	२५
१५	अबुलहसन असकरीतकी	नका	समाना	२१४ हिजरी	४०
१६	अबूमहम्मद	असकरी	सौमन	२३२ हिजरी	२८
१७	अबुलकासिममिहदी	अबूमुहजकी	नरजिस	२५५ हिजरी	०
१८	इ० अबुहनीफ	साबित		८०	७७
१९	इमाममालिक	उन्स	उमउलमहसिनइमामहसनके परपोतेकीबेटी	९५	८४
२०	इमामशफई	इदरीस		१५०	५४
२१	इमामजुमल	मुहम्मद		१६५	७६
२२	इमामगौस आज़म	अवासालिह इमामहुस्सेन बीरशत	फातिमाउमउलखैर इमामहसन के वंश में	४७०	९१

मृत्यु का समय	सन्तति	गाड़ेजानेकास्थान	विशेष विवरण
१८३	२ पुत्र १ कन्या	बुगदाद	शीया कहते हैं कि सुन्नियों के उपद्रव से अरब छोड़ कर चले गये। किन्तु सुन्नी कहते हैं उस काल के खलीफा बुगदाद में रहते थे इससे आदर के हेतु इनको भी वहीं बुलाकर बसाया। ये बडे भारीवंशकर्त्ता हुए हैं।
२०३	८ पुत्र २२ कन्या	बुगदाद	शीया मत का विशेष प्रचार किया। किन्तु सुन्नी लोग कहते हैं कि ये लोग भी सब सुन्नी थे।
२२०	५ पुत्र १ कन्या	बुगदाद	
२५४	२ पुत्र २ कन्या	सरमनराय	
२६०	२ पुत्र १ कन्या	सरमनराय	
२६७	१ पुत्र	बुगदाद	शीयाओं के मत से ९ वर्ष की अवस्था में पर्वतगुहा में चले गए फिर प्रलय के समय निकलेंगे। सुन्नियों के मत से अभी जन्म हीन हीं हुआ. प्रलय में पैदा होंगे।
१५०	०	मदीना	
१७९	०	मिस्र	नं० १८ से २१ तक ये सुन्नी मतके चार इमाम हैं, शीया इनको नहीं मानते. ये चारो पृथक मत के प्रवर्त्तक हैं यथा हानिफी मालिकी सफाई और जम्बूली.
२०४	०	बुगदाद	अकबर के वंश के बादशाह हानिफा थे। दत्तात्रेय की भांति अबूहनीफा ने अनेक गुरु किये थे, जिनमें इमाम जाफर भी थे।
२४२	०	बुगदाद	सुन्नियों में इन्हीं चारों की चार मुख्य मत शाखा हैं। ये क्रम से एक के दूसरे शिष्य भी थे।
५६१	०	बुगदाद	सुन्नियों में ये एक प्रसिद्ध इमाम हुए हैं हसनी हुसैन सैयद थे और बड़े भारी विद्वान् और सिद्ध थे। शीया लोग इन को नहीं मानते हैं वरञ्च सैयद भी नहीं कहते।

DELHI ASSEMBLAGE MEMORANDUM

दिल्ली दरबार दर्पण।

—o:o—

सब राजाओं की मुलाकातों का हाल अलग २ लिखना आवश्यक नहीं, क्योंकि सब के साथ वही मामूली बातें हुईं। सब बड़े २ शासनाधिकारी राजाओं को एक २ रेशमी झंडा और सोने का तगमा मिला। झंडे अत्यन्त सुन्दर थे। पीतल के चमकीले मोटे २ डंडों पर राजराजेश्वरी का एक एक मुकुट बना था और एक २ पटरी लगी थी जिस पर झंडा पाने वाले राजा का नाम लिखा था, और फरहरे पर जो डंडे से लटकता था स्पष्ट रीति पर उन के शस्त्र आदि के चिन्ह बने हुए थे। झंडा और तगमा देने के समय श्रीयुत वाइसराय ने हरएक राजा से ये वाक्य कहे :—

"मैं श्रीमती महारानी की तरफ से यह झंडा खास आप के लिये देता हूं, जो उन के हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी की पदवी लेने का यादगार रहेगा। श्रीमती को भरोसा है कि जब कभी यह झंडा खुलेगा आप को उसे देखते ही केवल इसी बात का ध्यान न होगा कि इङ्गलिस्तान के राज्य के साथ आप के खैरख्वाह

राजसी घराने का कैसा दृढ़ सम्बन्ध है बरन यह भी कि सरकार की यह बड़ी भारी इच्छा है कि आप के कुल को प्रतापी, प्रारब्धी और अचल देखे। मैं श्रीमती महारानी हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार आप को यह तगमा भी पहनाता हूं। ईश्वर करे आप इसे बहुत दिन तक पहिनें और आप के पीछे यह आप के कुल में बहुत दिन तक रह कर उस शुभ दिन को याद दिलावे जो इस पर छपा है।"

शेष राजाओं को उन के पद के अनुसार सोने या चांदी के केवल तगमे ही मिले। किलात के खां को भी झंडा नहीं मिला, पर उन्हें एक हाथी, जिस पर ४००० की लागत का हौदा था, जड़ाऊ गहने, घड़ी, कारचोबी कपड़े, कमखाब के थान वग़ैरह सब मिला कर २५००० की चीज़ें तुहफे में मिलीं। यह बात किसी दूसरे के लिये नहीं हुई थी। इस के सिवाय जो सरदार उन के साथ आए थे उन्हें भी किश्तियों में लगा कर दस हज़ार रुपये की चीज़ें दी गईं। प्रायः लोगों को इस बात के जानने का उत्साह होगा कि खां का रूप और वस्त्र कैसा था। निस्सन्देह जो कपड़ा खां पहने थे वह उन के साथियों से बहुत अच्छा था तौ भी उन की या उन के किसी साथी की शोभा उन मुगलों से बढ़ कर न थी जो बाज़ार में मेवा लिये घूमा करते हैं। हां, कुछ फर्क था तो इतना था कि लम्बी गझिन दाढ़ी के कारण खां साहिब का चिहरा बड़ा भयानक लगता था। इन्हें झंडा न मिलने का कारण यह समझना चाहिये कि यह बिलकुल स्वतन्त्र हैं। इन्हें आने और जाने के समय श्रीयुत वाइसराय गलीचे के किनारे

तक पहुंचा गए थे, पर बैठने के लिये इन्हें भी वाइसराय के चबूतरे के नीचे वहीं कुर्सी मिली थी जो और राजाओं को। खां साहिब के मिज़ाज में रूखापन बहुत है। एक प्रतिष्ठित बंगाली इन के डेरे पर मुलाकात के लिये गए थे। खां ने पूछा, क्यों आए हो? बाबू साहिब ने कहा, आप की मुलाकात को। इस पर खां बोले कि अच्छा, आप हम को देख चुके और हम आप को, अब जाइये।

बहुत से छोटे २ राजाओं को बोल चाल का ढंग भी, जिस समय वे वाइसराय से मिलने आए थे, संक्षेप के साथ लिखने के योग्य है। कोई तो दूर ही से हाथ जोड़े आए, और दो एक ऐसे थे कि जब एडिकांग के बदन झुका कर इशारा करने पर भी उन्हों ने सलाम न किया तो एडिकांग ने पीठ पकड़ कर उन्हें धीरे से झुका दिया। कोई बैठ कर उठना जानते ही न थे, यहां तक कि एडिकांग को "उठो" कहना पड़ता था। कोई झंडा, तगमा, सलामी और खिताब पाने पर भी एक शब्द धन्यवाद का नहीं बोल सके और कोई बिचारे इन में से दो ही एक पदार्थ पा कर ऐसे प्रसन्न हुए कि श्रीयुत वाइसराय पर अपनी जान और माल निछावर करने को तैयार थे। सब से बढ़ कर बुद्धिमान हमें एक महात्मा देख पड़े जिन से वाइसराय ने कहा कि आप का नगर तो तीर्थ गिना जाता है, पर हम आशा करते हैं कि आप इस समय दिल्ली को भी तीर्थ ही के समान पाते हैं। इस के जवाब में वह बेधड़क बोल उठे कि यह जगह तो सब तीर्थों से बढ़ कर है, जहां आप हमारे "खुदा" मौजूद हैं। नौवाब लुहारू की भी अंगरेज़ी

में बात चीत सुन कर ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्हें हंसी न आई हो। नौवाब साहिब बोलते तो बड़े धड़ाके से थे, पर उसी के साथ कायदे और मुहावरे के भी खूब हाथ पांव तोड़ते थे। कितने वाक्य ऐसे थे जिन के कुछ अर्थ ही नहीं हो सकते, पर नौवाब साहिब को अपनी अंगरेज़ी का ऐसा कुछ विश्वास था कि अपने मुंह से केवल अपने ही को नहीं बरन अपने दोनों लड़कों को भी अङ्गरेज़ी, अरबी, ज्योतिष, गणित आदि ईश्वर जाने कितनी विद्याओं का पण्डित बखान गए। नौवाब साहिब ने कहा कि हम ने और रईसों की तरह अपनी उमर खेल कूद में नहीं गंवाई बरन लड़कपन ही से विद्या के उपार्जन में चित्त लगाया और पूरे पण्डित और कवि हुए। इस के सिवाय नौवाब साहिब ने बहुत से राजभक्ति के वाक्य भी कहे। वाइसराय ने उत्तर दिया कि हम आप की अंगरेज़ी विद्या पर इतना मुबारकबाद नहीं देते जितना अंगरेज़ों के समान आप का चित्त होने के लिये। फिर नौवाब साहिब ने कहा कि मैं ने इस भारी अवसर के वर्णन में अरबी और फारसी का एक पद्य ग्रन्थ बनाया है जिसे मैं चाहता हूं कि किसी समय श्रीयुत को सुनाऊं। श्रीयुत ने जवाब दिया कि मुझे भी कविता का बड़ा अनुराग है और मैं आप सा एक भाई-कवि (Brother-poet) देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, और आप की कविता सुनने के लिये कोई अवकाश का समय अवश्य निकालूंगा।

२६ तारीख को सब के अन्त में महारानी तंजौर वाइसराय से मुलाकात को आईं। ये तास का सब वस्त्र पहने थीं और

मुंह पर भी तास का नक़ाब पड़ा हुआ था। इस के सिवाय उन के हाथ पांव दस्ताने और मोजे से ऐसे ढंके थे कि सब के जी में उन्हें देखने की इच्छा ही रह गई। महारानी के साथ में उन के पति राजा सखाराम साहिब और दो लड़कों के सिवाय उन की अनुवादक मिसेस फ़र्थ भी थीं। महारानी ने पहले आकर वाइसराय से हाथ मिलाया और अपनी कुर्सी पर बैठ गईं। श्रीयुत वाइसराय ने उन के दिल्ली आने पर अपनी प्रसन्नता प्रगट की और पूछा कि आप को इतनी भारी यात्रा में अधिक कष्ट तो नहीं हुआ? महारानी अपनी भाषा की बोलचाल में बेगम भूपाल की तरह चतुर न थीं, इस लिये ज़ियादा बातचीत मिसेस फ़र्थ से हुई, जिन्हें श्रीयुत ने प्रसन्न हो कर "मनभावनी अनुवादक" कहा। वाइसराय की किसी बात के उत्तर में एक बार महारानी के मुंह से "यस" निकल गया, जिस पर श्रीयुत ने बड़ा हर्ष प्रगट किया कि महारानी अंगरेज़ी भी बोल सकती हैं, पर अनुवादक मेम साहिब ने कहा कि वे अंगरेज़ी में दो चार शब्द से अधिक नहीं जानतीं।

इस वर्णन के अन्त में यह लिखना अवश्य है कि श्रीयुत वाइसराय लोगों से इतनी मनोहर रीति पर बात चीत करते थे जिस से सब मगन हो जाते थे और ऐसा समझते थे कि वाइसराय ने हमारा सब से बढ़ कर आदर सत्कार किया। भेंट होने के समय श्रीयुत ने हर एक से कहा कि आप से दोस्ती कर के हम अत्यन्त प्रसन्न हुए, और तगमा पहिनाने के समय भी बड़े से उन की पीठ पर हाथ रख कर बात की।

१ जनवरी को दरबार का महोत्सव हुआ।

यह दरबार, जो हिन्दुस्तान के इतिहास में सदा प्रसिद्ध रहे, एक बड़े भारी मैदान में नगर से पांच मील पर हुआ था। बीच में श्रीयुत वाइसराय का षटकोण चबूतरा था, जिस की गुम्बदनुमा छत पर लाल कपड़ा चढ़ा और सुनहला रुपहला तथा शीशे का काम बना था। कंगुरे के ऊपर कलसे की जगह श्रीमति राजराजेश्वरी का सुनहला मुकुट लगा था। इस चबूतरे पर श्रीयुत अपने राजसिंहासन में सुशोभित हुए थे। उन के बगल में एक कुर्सी पर लेडी साहिब बैठी थीं और ठीक पीछे खवास लोग हाथों में चंवर लिये और श्रीयुत के ऊपर कारचोबी छत्र लगाए खड़े थे। वाइसराय के सिंहासन के दोनों तरफ़ दो पेज (दामन बरदार), जिन में एक श्रीयुत महाराज जम्बू का अत्यन्त सुन्दर सब से छोटा राजकुमार, और दूसरा कर्नेल बर्न का पुत्र था, खड़े थे और उन के दहने बाए और पीछे मुसाहिब और सेक्रिटरी लोग अपने २ स्थानों पर खड़े थे। वाइसराय के चबूतरे के ठीक सामने कुछ दूर पर उस से नीचा एक अर्द्ध चंद्राकार चबूतरा था, जिस पर शासनाधिकारी राजा लोग और उन के मुसाहिब, मदरास और बम्बई के गवरनर, पंजाब, बंगाल और पश्चिमोत्तर देश के लेफ़टिनेन्ट गवरनर, और हिन्दुस्तान के कमान्डरइनचीफ़ अपने २ अधिकारियों समेत सुशोभित थे। इस चबूतरे की छत बहुत सुन्दर नीले रंग के साटन की थी, जिस के आगे लहरियादार छज्जा बहुत सजीला लगा था। लहरिये के बीच २ में सुनहले काम के चांदतारे बने थे। राजाओं की कुर्सियां भी नीली साटन से मढ़ी

थी और हर एक के सामने वे झंडे गड़े थे जो उन्हें वाइसराय ने दिये थे, और पीछे अधिकारियों की कुर्सियां लगी थीं, जिन पर भी नीली साटन चढ़ी थीं। हर एक राजा के साथ एक २ पोलिटिकल अफ़सर भी था। इन के सिवाय गवर्नमेन्ट के भारी २ अधिकारी भी यहीं बैठे थे। राजा लोग अपने २ प्रान्तों के अनुसार बैठाए गए थे, जिस से ऊपर नीचे बैठने का बखेड़ा बिल्कुल निकल गया था। सब मिला कर ६३ शासनाधिकारी राजाओं को इस चबूतरे पर जगह मिली थी, जिन के नाम नीचे लिखे हैं :—

महाराज अजयगढ़ बड़ोदा, बिजावर, भरतपुर, चरखारी, दतिया, ग्वालियर, इन्दौर, जयपुर, जम्बू, जोधपुर, करौली, किशुनगढ़, पन्ना, मैसूर, रीवां, उर्छा; महाराना उदयपुर; महाराव राजा अलवर, बूंदी; महाराज राना झलावर; राना धौलपुर; राजा बिलासपुर, बमरा, बिरोंदा, चम्बा, छतरपुर, देवास, धार, फ़रीदकोट, झींद, खरौंद कूचबिहार, मन्डी, नाभा नाहन, राजपीपला, रतलाम, समथर, सुकेत, टिहरी; रावा जिगनी टोरी; नौवाब, टोंक, पटौदी, मलेरकोटला, लुहारू, जूनागढ़, जौरा, दुजाना, बहावलपुर; जागीरदार, अलीपुरा; बेगम भूपाल; निज़ाम हैदराबाद; सरदार कलसिया; ठाकुर साहिब भावनगर, मुर्वी, पिपलोदा; जागीरदार पालदेव; मीर खैरपुर; महन्त कौंदका, नन्दगांव; और जाम नवानगर।

वाइसराय के सिंहासन के पीछे, परन्तु राजसी चबूतरे की अपेक्षा उस से अधिक पास, धनुषखण्ड के आकार की दो श्रेणियां चबूतरों की और बनी थीं जो दस भागों में बांट दी गई थीं। इ

पर आगे की तरफ़ थोड़ी सी कुर्सियां और पीछे सीढ़ीनुमा बेन्चें लगी थीं, जिन पर नीला कपड़ा मढ़ा था। यहां ऐसे राजाओं को जिन्हें शासन का अधिकार नहीं है और दूसरे सरदारों, रईसों, समाचारपत्रों के सम्पादकों और यूरोपियन तथा हिन्दुस्तानी अधिकारियों को, जो गवरन्मेन्ट के नेवते में आये थे या जिन्हें तमाशा देखने के लिये टिकट मिले थे, बैठने को जगह दी गई थी। ये ३००० के अनुमान होंगे। क़िलात के ख़ां, गोआ के गवरनर जेनरल, विदेशी राजदूत, बाहरी राज्यों के प्रतिनिधि समाज और अन्तर्देश सम्बन्ध कान्सल लोगों की कुर्सियां भी श्रीयुत वाइसराय के पीछे सरदारों और रईसों की चौकियों के आगे लगी थीं।

दरबार की जगह के दक्खिन तरफ़ १५००० से ज़ियादा सरकारी फ़ौज हथियार बांधे लैस खड़ी थी, और उत्तर तरफ़ राजा लोगों की सजीली पलटनें भांति २ की वरदी पहने और चित्र विचित्र शस्त्र धारण किये परा बांधे खड़ी थीं। इन सब की शोभा देखने से काम रखती थी। इस के सिवाय राजा लोगों के हाथियों के परे जिन पर सुनहली अमारियां कसी थीं और कारचोबी झूलें पड़ी थीं, तोपों की क़तारें, सवारों की नंगी तलवारों और भालों की चमक, फरहरों का उड़ना, और दो लाख के अनुमान तमाशा देखने वालों की भीड़ जो मैदान में डटी थी ऐसा समा दिखलाती थी जिसे देख जो जहां था वहीं हक्का बक्का हो खड़ा रह जाता था। वाइसराय के सिंहासन के दोनों तरफ़ हाइलैन्डर लोगों [illegible] आव आनर और बाजेवाले थे, और शासनाधिकारी राजाओं के चबूतरे पर जाने के जो रास्ते बाहर की तरफ़ थे

बन के दोनों ओर भी गार्ड आव आनर खड़े थे। पौने बारह बजे तक सब दरबारी लोग अपनी अपनी जगहों पर आ गए थे। ठीक बारह बजे श्रीयुत वाइसराय की सवारी पहुंची और धनुष्खण्ड आकार के चबूतरों की श्रेणियों के पास एक छोटे से खेमे के दरवाजे पर ठहरी। सवारी पहुंचते ही बिलकुल फ़ौज ने शस्त्रों से सलामी उतारी पर तोपें नहीं छोड़ी गईं। खेमे में श्रीयुत ने जाकर स्टार आव इन्डिया के परम प्रतिष्ठित पद के ग्रांड मास्टर का वस्त्र धारण किया। यहां से श्रीयुत राजसी छत्र के तले अपने राजसिंहासन को ओर बढ़े। श्री लेडी लिटन श्रीयुत के साथ थीं और दोनों दामनबरदार बालक, जिन का हाल ऊपर लिखा गया है, पीछे दो तरफ़ से दामन उठाए हुए थे। श्रीयुत के आगे २ उन के स्टाफ़ के अधिकारी लोग थे। श्रीयुत के चलते ही बन्दीजन (हेरल्ड लोगों) ने अपनी तुरहियां एक साथ बहुत मधुर रीति पर बजाईं और फ़ौजी बाजे से ग्रान्ड मार्च बजने लगा। जब श्रीयुत राजसिंहासनवाले मनोहर चबूतरे पर चढ़ने लगे तो ग्रान्डमार्च का बाजा बन्द हो गया और नैशनल ऐन्थेम अर्थात् (गौड सेव दि क्वीन—ईश्वर महारानी को चिरजीवी रक्खे) का बाजा बजने लगा और गार्ड्स आव आनर ने प्रतिष्ठा के लिये अपने शस्त्र झुका दिये। ज्योंही श्रीयुत राजसिंहासन पर सुशोभित हुए बाजे बन्द हो गए और सब राजा महाराजा, जो वाइसराय के आने के समय खड़े हो गए थे, बैठ गए। इस के पीछे श्रीयुत ने मुख्यबन्दी (चीफ़ हेरल्ड) को आज्ञा की कि श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने के विषय में अंगरेज़ी में

मे राज्यसिंहासन के चबूतरे के नीचे खड़े थे, तुरही बजाई और उस के बन्द होने पर मुख्य बन्दी ने नीचे की सीढ़ी पर खड़े हो कर बड़े ऊंचे स्वर से राजाज्ञापत्र पढ़ा, जिस का उलथा यह है :—

महारानी विक्टोरिया।

ऐसी अवस्था में कि हाल में पार्लियामेन्ट की जो सभा हुई उन में एक ऐक्ट पास हुआ है जिस के द्वारा परम कृपालु महारानी को यह अधिकार मिला है कि यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों की राजसम्बन्धी पदवियों और प्रशस्तियों में श्रीमती जो कुछ चाहें बढ़ा लें और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि ग्रेट ब्रिटन और आयरलैंड के एक में मिल जाने के लिये जो नियम बने थे उन के अनुसार भी यह अधिकार मिला था कि यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों की राजसम्बन्धी पदवी और प्रशस्ति इस संयोग के पीछे वही होगी जो श्रीमती ऐसे राजाज्ञापत्र के द्वारा प्रकाश करेंगी, जिस पर राज की मुहर छपी रहे। और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि ऊपर लिखे हुए नियम और उस राजाज्ञापत्र के अनुसार जो १ जनवरी सन् १८०१ को राजसी मुहर होने के पीछे प्रकाश किया गया, हम ने यह पदवी ली "विक्टोरिया ईश्वर की कृपा से ग्रेट ब्रिटन और आयरलैंड के संयुक्त राज की महारानी स्वधर्म रक्षिणी," और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि उस नियम के अनुसार जो हिन्दुस्तान के उत्तम शासन के हेतु बनाया गया था हिन्दुस्तान के राज का अधिकार, जो उस समय तक हमारी ओर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सपुर्द था, अब हमारे

निज अधिकार में आ गया और हमारे नाम से उस का शासन होगा। इस नये अधिकार की हम कोई विशेष पदवी लें, और इन सब वर्णनों के अनन्तर इस ऐक्ट में यह नियम सिद्ध किया गया है कि ऊपर लिखी हुई बात के स्मरण निमित्त कि हम ने अपने मुहर किये हुए राजाज्ञापत्र के द्वारा हिन्दुस्तान के शासन का अधिकार अपने हाथ में लें लिया हम को यह योग्यता होगी कि यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों की राजसम्बन्धी पदवियों और प्रशस्तियों में जो कुछ उचित समझें बढ़ा लें। इस लिये अब हम अपने प्रिवी काउन्सिल की सम्मति से योग्य समझ कर यह प्रचलित और प्रकाशित करते हैं कि आगे को, जहां सुगमता के साथ हो सके, सब अवसरों में और सम्पूर्ण राजपत्रों पर जिन में हमारी पदवियां और प्रशस्तियां लिखी जाती हैं, सिवाय सनद, कमिशन, अधिकारदायक पत्र, दानपत्र, आज्ञापत्र, नियोगपत्र, और इसी प्रकार के दूसरे पत्रों के जिन का प्रचार यूनाइटेड किंगडम के बाहर नहीं है, यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों की राजसम्बन्धी पदवियों में नीचे लिखा हुआ वाक्य मिला दिया जाय, अर्थात् लैटिन भाषा में "इन्डिई एम्परेट्रिक्स" [हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी] और अंगरेज़ी भाषा में "एम्प्रेस आव इन्डिया"। और हमारी यह इच्छा और प्रसन्नता है कि उन राजसम्बन्धी पत्रों में जिन का वर्णन ऊपर हुआ है यह नई पदवी न लिखी जाय। और हमारी यह भी इच्छा और प्रसन्नता है कि सोने चांदी और तांबे के सब सिक्के, जो आज कल यूनाइटेड किंगडम में प्रचलित हैं और नीतिविरुद्ध नहीं गिने जाते और इसी प्रकार तथा

आकार के दूसरे सिक्के जो हमारी आज्ञा से अब छापे जायंगे, हमारी नई पदवी लेने से भी नीतिविरुद्ध न समझे जायंगे, और जो सिक्के यूनाईटेड किंगडम के आधीन देशों में छापे जायंगे और जिन का वर्णन राजाज्ञापत्र में उन जगहों के नियमित और प्रचलित द्रव्य करके किया गया है और जिन पर हमारी सम्पूर्ण पदवियां या प्रशस्तियां उन का कोई भाग रहे, और वे सिक्के जो राजाज्ञापत्र के अनुसार अब छापे और चलाए जायेंगे इस नई पदवी के बिना भी उस देश के नियमित और प्रचलित द्रव्य समझे जायंगे, जब तक कि इस विषय में हमारी कोई दूसरी प्रसन्नता न प्रगट की जायँगी।

हमारी विन्डसर की कचहरी से २८ अपरैल को एक हजार आठ सौ छिहत्तर के सन् में हमारे राज के उनतालीसवें बरस में प्रसिद्ध किया गया।

ईश्वर महारानी को चिरंजीवी रक्खे !

जब चीफ़ हेरल्ड राजाज्ञापत्र को अंगरेज़ी में पढ़ चुका तो हेरल्ड लोगों ने फिर तुरही बजाई। इस के पीछे फ़ारेन सेक्रेटरी ने उर्दू में तर्जुमा पढ़ा। इस के समाप्त होते ही बादशाही झंडा खड़ा किया गया और तोपखाने से, जो दरबार के मैदान में मौजूद था, १०१ तोपों की सलामी हुई। चौंतीस २ सलामी होने के बाद बंदूकों की बाढ़ें दगीं और जब १०१ सलामियां तोपों से हो चुकीं तब फिर बाढ़ छूटी और नैशनल ऐन्थेम का बाजा बजने

इस के अनन्तर श्रीयुत वाइसराय समाज की ऐड्रेस करने के अभिप्राय से खड़े हुए। श्रीयुत वाइसराय के खड़े होते ही सामने के चबूतरे पर जितने बड़े २ राजा लोग और गवरनर आदि अधिकारी थे खड़े हो गए, पर श्रीयुत ने बड़े ही आदर के साथ दोनों हाथों से हिन्दुस्तानी रीति पर कई बार सलाम करके सब से बैठ जाने का इशारा किया। यह काम श्रीयुत का, जिस से हम लोगों की छाती दूनी हो गई, पायोनीयर सरीखे अंगरेज़ी समाचार पत्रों के सम्पादकों को बहुत बुरा लगा, जिन की समझ में वाइसराय का हिन्दुस्तानी तरह पर सलाम करना बड़े हेठाई और लज्जा की बात थी। खैर, यह तो इन अंगरेज़ी अख़बारवालों की मामूली बातें हैं। श्रीयुत वाइसराय ने जो उत्तम ऐड्रेस पढ़ा उस का तर्जमा हम नीचे लिखते हैं :—

सन् १८५८ ईसवी की १ नवम्बर को श्रीमती महारानी की ओर से एक इश्तिहार जारी हुआ था जिस में हिन्दुस्तान के रईसों और प्रजा को श्रीमती की कृपा का विश्वास कराया गया था जिस को उस दिन से आज तक वे लोग राजसम्बन्धी बातों में बड़ा अनमोल प्रमाण समझते हैं।

वे प्रतिज्ञा एक ऐसी महारानी की ओर से हुई थीं जिन्हों ने आज तक अपनी बात को कभी नहीं तोड़ा, इस लिये हमें अपने मुंह से फिर उन का निश्चय कराना व्यर्थ है। १८ बरस की लगातार उन्नति ही उन को सत्य करती है और यह भारी समागम भी उन के पूरे उतरने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस राज के

रहे और जिन को अपने उचित लाभों की उन्नति के यत्न में सदा रक्षा होती रही उन के वास्ते सरकार की पिछले समय की उदारता और न्याय आगे के लिये पक्की ज़मानत हो गई है।

हम लोग इस समय श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने का समाचार प्रसिद्ध करने के लिये इकट्ठे हुए हैं, और यहां महारानी के प्रतिनिधि होने की योग्यता से मुझे अवश्य है कि श्रीमती के उस कृपायुक्त अभिप्राय को सब पर प्रगट करूं जिस के कारण श्रीमती ने अपने परम्परा की पदवी और प्रशस्ति में एक पद और बढ़ाया।

पृथ्वी पर श्रीमती महारानी के अधिकार में जितने देश हैं—जिन का विस्तार भूगोल के सातवें भाग से कम नहीं है, और जिन में तीस करोड़ आदमी बसते हैं—उन में से इस बड़े और प्राचीन राज के समान श्रीमती किसी दूसरे देश पर कृपादृष्टि नहीं रखतीं।

सब जगह और सदा इंगलिस्तान के बादशाहों की सेवा में प्रवीण और परिश्रमी सेवक रहते आए हैं, परन्तु उन से बढ़ कर कोई पुरुषार्थी नहीं हुए, जिन की बुद्धि और वीरता से हिन्दुस्तान का राज सरकार के हाथ लगे और बराबर अधिकार में बना रहा। इस कठिन काम में जिस में श्रीमती की अंगरेज़ी और देशी प्रजा दोनों ने मिलकर भली भांति परिश्रम किया है श्रीमती के बड़े २ स्नेही और सहायक राजाओं ने भी शुभचिंतकता के साथ सहायता दी है; जिन की सेना ने लड़ाई की मिहनत और जीत में श्रीमती की सेना का साथ दिया है; जिन की बुद्धिपूर्वक

सत्यशीलता के कारण मेल के लाभ बने रहे और फैलते गए हैं; और जिन का यहां आज वर्त्तमान होना, जो कि श्रीमती के राज-राजेश्वरी की पदवी लेने का शुभ दिन है, इस बात का प्रमाण है कि वे श्रीमती के अधिकार की उत्तमता में विश्वास रखते हैं और उन के राज में एका बने रहने में अपना भला समझते हैं।

श्रीमती महारानी इस राज को जिसे उन के पुरखों ने प्राप्त किया और श्रीमती ने दृढ़ किया एक बड़ा भारी पैतृक धन समझती हैं जो रक्षा करने और अपने वंश के लिये सम्पूर्ण छोड़ने के योग्य है; और उस पर अधिकार रखने से अपने ऊपर यह कर्त्तव्य जानती हैं कि अपने बड़े अधिकार को इस देश की प्रजा की भलाई के लिये यहां के रईसों के हकों पर पूरा २ ध्यान रखकर काम में लावें। इस लिये श्रीमती का यह राजसी अभिप्राय है कि अपनी पदवियों पर एक और ऐसी पदवी बढ़ावें जो आगे सदा को हिन्दुस्तान के सब रईसों और प्रजा के लिये इस बात का चिन्ह हो कि श्रीमती के और उन के लाभ एक हैं और महारानी की ओर राजभक्ति और शुभचिंतकता रखनी उन पर उचित है।

वे राजसी घरानों की श्रेणियां जिन का अधिकार बदल देने और देश की उन्नति करने के लिये ईश्वर ने अंगरेज़ी राज को यहां जमाया, प्रायः अच्छे और बड़े बादशाहों से खाली न थीं परन्तु उन के उत्तराधिकारियों के राज्यप्रबन्ध से उन के राज्य के देशों में मेल न बना रह सका। सदा आपस में झगड़ा होता रहा और अंधेर मचा रहा। निबल लोग बली लोगों के शिकार थे और बड़

वान् अपने मद के। इस प्रकार आपस की काट मार और भीतरी झगड़ों के कारण जड़ से हिलकर और निर्जीव होकर तैमूरवंश का भारी घराना अन्त को मिट्टी में मिल गया, और उस के नाश होने का कारण यह था कि उस से पच्छिम के देशों की कुछ उन्नति न हो सकी।

आजकल ऐसी राजनीति के कारण जिस से सब जात और सब धर्म्म के लोगों की समान रक्षा होती है श्रीमती की हर एक प्रजा अपना समय निर्विघ्न सुख से काट सकती है। सरकार के समभाव के कारण हर आदमी बिना किसी रोक टोक के अपने धर्म के नियमों और रीतों को बरत सकता है। राजराजेश्वरी का अधिकार लेने से श्रीमती का अभिप्राय किसी को मिटाने या दबाने का नहीं है बरन रक्षा करने और अच्छी राह बतलाने का। सारे देश की शीघ्र उन्नति और उस के सब प्रान्तों की दिन पर दिन वृद्धि होने से अंगरेज़ी राज के फल सब जगह प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं।

हे अंगरेज़ी राज के कार्यकर्त्ता और सच्चे अधिकारी लोग,— यह आप ही लोगों के लगातार परिश्रम का गुण है कि ऐसे २ फल प्राप्त हैं; और सब के पहले आप ही लोगों पर मैं इस समय श्रीमती की ओर से उनकी कृतज्ञता और विश्वास को प्रगट करता हूं। आप लोगों ने इस भारी राज की भलाई के लिये उन प्रतिष्ठित लोगों से जो आप के पहले इन कामों पर नियत थे किसी प्रकार कम कष्ट नहीं उठाया है और आप लोग बराबर ऐसे साहस, परिश्रम और सचाई के साथ अपने तन, मन को अर्पण करके काम करते रहे जिस से बढ़कर कोई दृष्टान्त इतिहासों में न मिलेगा।

कीर्त्ति के द्वार सब के लिये नहीं खुले हैं परन्तु भलाई करने का अवसर सब किसी को जो उसकी खोज रखता हो मिल सकता है। यह बात प्रायः कोई गवर्नमेन्ट नहीं कर सकती कि अपने नौकरों के पदों को जल्द २ बढ़ाती जाय, परन्तु मुझे विश्वास है कि अंगरेज़ी सरकार की नौकरी में 'कर्त्तव्य का ध्यान' और 'स्वामी की सेवा में तन, मन को अर्पण कर देना' ये दोनों बातें 'निज प्रतिष्ठा' और 'लाभ' की अपेक्षा सदा बढ़कर समझी जायंगी। यह बात सदा से होती आई है और होती रहेगी कि इस देश के प्रबन्ध के बहुत से भारी २ और लाभदायक काम प्रायः बड़े २ प्रतिष्ठित अधिकारियों ने नहीं किये हैं बरन ज़िले के उन अफ़सरों ने जिन की धैर्यपूर्वक चतुराई और साहस पर सम्पूर्ण प्रबन्ध का अच्छा उतरना सब प्रकार आधीन है।

श्रीमती की ओर से राजकाज सम्बन्धी और सेना सम्बन्धी अधिकारियों के विषय में मैं जितनी गुणग्राहकता और प्रशंसा प्रगट करूं थोड़ी है क्योंकि ये तमाम हिन्दुस्तान में ऐसे सूक्ष्म और कठिन कामों को अत्यन्त उत्तम रीति पर करते रहे हैं और करते हैं जिन से बढ़ कर सूक्ष्म और कठिन काम सरकार अधिक से अधिक विश्वासपात्र मनुष्य को नहीं सौंप सकती। हे राजकाज सम्बन्धी और सेना सम्बन्धी अधिकारियो,—जो कमसिनी में इतने भारी ज़िम्मे के कामों पर मुक़र्रर होकर बड़े परिश्रम चाहनेवाले नियमों पर तन, मन से चलते हो और जो निज पौरुष से उन जातियों के बीच राज्य प्रबन्ध के कठिन काम को करते हो जिन की भाषा धर्म और रीतें आप लोगों से भिन्न हैं—मैं ईश्वर से

प्रार्थना करता हूँ कि अपने २ कठिन कामों को दृढ़ परन्तु कोमल रीत पर करने के समय आप को इस बात का भरोसा रहे कि जिस समय आप लोग अपने जाति की बड़ी कीर्त्ति को थामे हुए हैं और अपने धर्म के दयाशील आज्ञाओं को मानते हैं उसी के साथ आप इस देश के सब जाति और धर्म के लोगों पर उत्तम प्रबन्ध के अनमोल लाभों को फैलाते हैं ।

उस पच्छिम की सभ्यता के नियमों को बुद्धिमानी के साथ फैलाने के लिये जिस से इस भारी राज का धन बराबर बढ़ता गया हिन्दुस्तान पर केवल सरकारी अधिकारियों ही का एहसान नहीं है, बरन यदि मैं इस अवसर पर श्रीमती की उस यूरोपियन प्रजा को जो हिन्दुस्तान में रहती हैं पर सरकारी नौकर नहीं हैं, इस बात का बिश्वास कराऊं कि श्रीमती उन लोगों के केवल उस राजभक्ति ही की गुणग्राहकता नहीं करतीं जो वे लोग उनके और उनके सिंहासन के साथ रखते हैं किन्तु उन लाभों को भी जानती और मानती हैं जो उन लोगों के परिश्रम से हिन्दुस्तान को प्राप्त होते हैं तो मैं अपनी पूज्य स्वामिनी के विचारों को अच्छी तरह न वर्णन करने का दोषी ठहरूंगा ।

इस अभिप्राय से कि श्रीमती को अपने राज के इस उत्तम भाग को प्रजा को सरकार की सेवा या निज की योग्यता के लिये गुणग्राहकता दिखाने का विशेष अवसर मिले श्रीमती ने कृपापूर्वक केवल स्टार आफ इन्डिया के परम प्रतिष्ठित पद वालों और आर्डर आफ बृटिश इन्डिया के अधिकारियों की संख्या ही में थोड़ी सी बढ़ती नहीं की है किन्तु इसी हेतु एक बिलकुल नया पद और

नियत किया है जो "आर्डर आफ दि इन्डियन एम्पायर" कहलावेगा।

हे हिन्दुस्तान को सेना के अंगरेज़ो और देसी अफ़सर और सिपाहियो,—आप लोगों ने जो भारी २ काम बहादुरी के साथ लड़ भिड़ कर सब अवसरों पर किये और इस प्रकार श्रीमती की सेना की युद्धकीर्त्ति को थामे रहे उस का श्रीमती अभिमान के साथ स्मरण करती हैं। श्रीमती इस बात पर भरोसा रखकर कि आगे को भी सब अवसरों पर आप लोग उसी तरह मिल जुल कर अपने भारी कर्त्तव्य को सचाई के साथ पूरा करेंगे, अपने हिन्दुस्तानी राज में मेल और अमन चैन बनाए रखने के का काम आप लोगों ही को सपुर्द करती हैं।

हे वालन्टियर सिपाहियो,—आप लोगों के राजभक्ति पूर्ण और सफल यत्न जो इस विषय में हुए हैं कि यदि प्रयोजन पड़े तो आप सरकार की नियत सेना के साथ मिलकर सहायता करें इस शुभ अवसर पर हृदय से धन्यवाद पाने के योग्य हैं।

हे इस देश के सरदार और रईस लोग,—जिन की राजभक्ति इस राज के बल को पुष्ट करनेवाली है और जिन की उन्नति इस के प्रताप का कारण है, श्रीमती महारानी आप को यह विश्वास करके धन्यवाद देती हैं कि यदि इस राज के लाभों में कोई विघ्न डाले या उन्हें किसी तरह का भय हो तो आप लोग उस की रक्षा के लिये तैयार हो जायंगे। मैं श्रीमती की ओर से और उन के नाम से दिल्ली आने के लिये आप लोगों का जी से स्वागत करता हूं, और इस बड़े अवसर पर आप लोगों के इकट्ठे होने को इंगलि

स्तान के राजसिंहासन की ओर आप लोगों की उस राज भक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण गिनता हूं जो श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्स के इस देश में आने के समय आप लोगों ने दृढ़ रीत पर प्रकट की थी। श्रीमती महारानी आप के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझती हैं, और अंगरेज़ी राज के साथ उस के कर देने वाले और स्नेही राजा लोगों का जो शुभ संयोग से सम्बन्ध है उस के विश्वास को दृढ़ करने और उस के मेल जोल को अचल करने ही के अभिप्राय से श्रीमती ने अनुग्रह करके वह राजसी पदवी ली है जिसे आज हम लोग प्रसिद्ध करते हैं।

हे हिन्दुस्तान की राज राजेश्वरी के देसी प्रजा लोग,—इस राज की वर्त्तमान दशा और उस के नित्य के लाभ के लिये अवश्य है कि उस के प्रबन्ध को जांचने और सुधारने का मुख्य अधिकार ऐसे अंगरेज़ी अफसरों को सपुर्द किया जाय जिन्हों ने राज काज के उन तत्वों को भली भांति सीखा है जिन का बरताव राज राजेश्वरी के अधिकार स्थिर रहने के लिये अवश्य है। इन्हीं राजनीति जानने वाले लोगों के उत्तम प्रयत्नों से हिन्दुस्तान सभ्यता में दिन २ बढ़ता जाता है और यही उसके राजकाज सम्बन्धी महत्व का हेतु और नित्य बढ़नेवाली शक्ति का गुप्त कारण है, और इन्हीं लोगों के द्वारा पच्छिम देश का शिल्प, सभ्यता और विज्ञान, (जिन के कारण आज दिन यूरोप लड़ाई और मेल दोनों में सब से चढ़ बढ़ कर है) बहुत दिनों तक पूरब के देशों में वहां वालों के उपकार के लिये प्रचलित रहेगा।

परन्तु हे हिन्दुस्तानी लोग! आप चाहे जिस जाति या मत के हों यह निश्चय रखिये कि आप इस देश के प्रबन्ध में योग्यता

के अनुसार अंगरेज़ों के साथ भली भांति काम पाने के योग्य है, और ऐसा होना पूरा न्याय भी है, और इंगलिस्तान तथा हिन्दुस्तान के बड़े राजनीति जानने वाले लोग और महारानी की राजसी पार्लमेन्ट व्यवस्थापकों ने बार बार इस बात को स्वीकार भी किया है। गवर्नमेन्ट आव इण्डिया ने भी इस बात को अपने सम्मान और राजनीति के सब अभिप्रायों के लिये अनुकूल होने के कारण माना है। इसलिये गवर्नमेन्ट आव इंडिया इन बरसों में हिंदुस्तानियों की कारगुज़ारी के ढंग में, मुख्यकर बड़े २ अधिकारियों के काम में, पूरी उन्नति देख कर संतोष प्रगट करती है।

इस बड़े राज्य का प्रबन्ध जिन लोगों के हाथ में सौंपा गया है उन में केवल बुद्धि ही के प्रबल होने की आवश्यकता नहीं है वरन उत्तम आचरण और सामाजिक योग्यता की भी वैसी ही आवश्यकता है। इस लिये जो लोग कुल, पद, और परम्परा के अधिकार के कारण आप लोगों में स्वाभाविक ही उत्तम हैं उन्हें अपने को और संतान को केवल उस शिक्षा के द्वारा योग्य करना अवश्य है जिस से कि वे श्रीमती महारानी अपनी राजराजेश्वरी की गवर्नमेन्ट की राजनीति के तत्वों को समझें और काम में ला सकें और इस रीत से उन पदों के योग्य हों जिन के द्वार उन के लिये खुले हैं।

राजभक्ति, धर्म, अपक्षपात, सत्य और साहस देश सम्बन्धी मुख्य धर्म हैं उन का सहज रीत पर बरताव करना आप लोगों के लिये बहुत आवश्यक है, और तब श्रीमती की गवर्नमेन्ट राज में

प्रबन्ध में आप लोगों की सहायता बड़े आनन्द से अंगीकार करेगी, क्योंकि पृथ्वी के जिन २ भागों में सरकार का राज है वहां गवर्नमेन्ट अपनी सेना के बल पर उतना भरोसा नहीं करती जितना कि अपनी सन्तुष्ट और एकजी प्रजा की सहायता पर जो अपने राजा के वर्त्तमान रहने ही में अपना नित्य मंगल समझकर सिंहासन के चारों ओर जी से सहायता करने के लिये इकट्ठे हो जाते हैं।

श्रीमती महारानी निबल राज्यों को जीतने या आसपास की रियासतों को मिला लेने से हिन्दुस्तान के राज की उन्नति नहीं समझतीं बरन इस बात में कि इस कोमल और न्याययुक्त राज-शासन को निरुपद्रव बराबर चलाने में इस देश की प्रजा क्रम से चतुराई और बुद्धिमानी के साथ भागी हो। जो हो उनका स्नेह और कर्त्तव्य केवल अपने ही राज से नहीं है बरन श्रीमती शुद्ध चित्त से यह भी इच्छा रखती हैं कि जो राजा लोग इस बड़े राज की सीमा पर हैं और महारानी के प्रताप की छाया में रहकर बहुत दिनों से स्वाधीनता का सुख भोगते आते हैं उनसे निष्कपट भाव और मित्रता को दृढ़ रक्खें। परन्तु यदि इस राज के अमन चैन में किसी प्रकार के बाहरी उपद्रव की शंका होगी तो श्रीमती हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी अपने पैतृक राज की रक्षा करना खूब जानती हैं। यदि कोई बिदेशी शत्रु हिन्दुस्तान के इस महाराज पर चढ़ाई करे तो मानो उस ने पूरब के सब राजाओं से शत्रुता की, और उस दशा में श्रीमती को अपने राज के अपार बल, अपने को ही और कर देने वाले राजाओं की वीरता और

राजभक्ति और अपनी प्रजा के स्नेह और शुभ चिन्तकता के कारण इस बात की भरपूर शक्ति है कि उसे परास्त करके दंड दें।

इस अवसर पर उन पूरब के राजाओं के प्रतिनिधियों का वर्त्तमान होना जिन्हों ने दूर २ देशों से श्रीमती को इस शुभ समारम्भ के लिये बधाई दी है, गवर्नमेन्ट आव इन्डिया के मेल के अभिप्राय, और आस पास के राजाओं के साथ इस के मित्र का स्पष्ट प्रमाण है। मैं चाहता हूं कि श्रीमती की हिन्दुस्तानी गवर्नमेन्ट की तरफ से श्रीयुत खानीकुलात, और उन राजदूतों को जो इस अवसर पर श्रीमती के स्नेही राजाओं के प्रतिनिधि हो कर दूर २ से अंगरेज़ी राज में आए हैं, और अपने प्रतिष्ठित पाहुने श्रीयुत गवरनर जेनरल गोआ, और बाहरी कान्सलों का स्वागत करूं।

हे हिन्दुस्तान के रईस और प्रजा लोग,—मैं आनन्द के साथ आप लोगों को वह कृपा पूर्वक संदेसा जो श्रीमती महारानी आप लोगों की राजराजेश्वरी ने आज आप लोगों को अपने राजसी और राजेश्वरीय नाम से भेजा है सुनाता हूं। जो वाक्य श्रीमती के यहां से आज सवेरे तार के द्वारा मेरे पास पहुंचे हैं वे हैं:—

"हम, विक्टोरिया ईश्वर की कृपा से, संयुक्त राज (ग्रेट ब्रिटन और आयरलैन्ड) की महारानी, हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी, अपने वाइसराय के द्वारा अपने सब राज काज सम्बन्धी और सेनासंबंधी अधिकारियों, रईसों, सरदारों और प्रजा को जो इस समय दिल्ली में इकट्ठे हैं अपना राजसी और राजराजेश्वरीय आशीर्वाद भेजते हैं और उस भारी कृपा और पूर्ण स्नेह का विश्वास कराते हैं जो हम अपने हिन्दुस्तान के महाराज्य की प्रजा

की ओर रखते हैं : हम को यह देख कर जी से प्रसन्नता हुई कि हमारे प्यारे पुत्र का इन लोगों ने कैसा कुछ आदर सत्कार किया, और अपने कुल और सिंहासन की ओर उन की राजभक्ति और स्नेह के इस प्रमाण से हमारे जी पर बहुत असर हुआ। हमें भरोसा है कि इस शुभ अवसर का यह फल होगा कि हमारे और हमारी प्रजा के बीच स्नेह और दृढ़ होगा, और सब छोटे बड़े को इस बात का निश्चय हो जायगा कि हमारे राज में उन लोगों को स्वतन्त्रता, धर्म और न्याय प्राप्त हैं. और हमारे राज का अभिप्राय और इच्छा सदा यही है कि उन के सुख की वृद्धि, सौभाग्य की अधिकता, और कल्याण की उन्नति होती रहे।''

मुझे विश्वास है कि आप लोग इन कृपामय वाक्यों की गुण-ग्राहकता करेंगे।

ईश्वर विक्टोरिया संयुक्त राज की महारानी और हिन्दुस्तान की राजराजेश्वरी की रक्षा करे।

इस अड्रेस के समाप्त होते ही नैशनल ऐन्थेम का बाजा बजने लगा और सेना ने तीन बार हुर्रे शब्द की आनन्दध्वनि की। दरबार के लोगों ने भी परम उत्साह से खड़े होकर हुर्रे शब्द और हथेलियों की आनन्दध्वनि करके अपने जी का उमंग प्रगट किया। महाराज सेंधिया, निज़ाम की ओर से सर सालारजंग, राजपुताना के महाराजों की तरफ़ से महाराज जयपुर, बेगम भूपाल, महाराज कश्मीर, और दूसरे सरदारों ने खड़े होकर एक दूसरे को बधाई दी और अपनी राजभक्ति प्रगट की। इस के अनन्तर श्रीयुत वाइसराय ने आज्ञा की कि दरबार हो चुका और अपनी [illegible] घोड़े की गाड़ी पर चढ़कर अपने खेमे को रवाने हुए।

श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने के उत्सव में गवरन्मेन्ट आव इन्डिया ने हिन्दुस्तान के रईसों और साधारण लोगों पर जो अनेक अनुग्रह किये हैं उन्हें हम संक्षेप के साथ नीचे लिखते हैं ।

सलामी

जम्बू, ग्वालियर, इंदौर, उदयपुर और ट्रावणकोर के महाराजों की सलामी उनकी ज़िन्दगी भर के लिये १६ के बदले २१ तोप की हो गई, और महाराज जयपुर को १७ से बढ़ कर २१ ।

जोधपुर और रीवां के महाराजों के लिये उनकी ज़िन्दगी भर को १७ से बढ़कर १६ तोप की सलामी हो गई ।

किशुनगढ़ और उर्छा के महाराजों की सलामी उनके जीवन समय के लिये १५ तोप के बदले १७ हो गई, और नौवाब टोंक की ११ से बढ़ कर १७। भूपाल की बेगम के पति और हैदराबाद के शम्सुल उमरा नामी दूसरे मंत्री की सलामी नए सिर से १७ तोप की नियत हुई।

नौवाब रामपुर की सलामी उमर भर के लिये १३ से १५ तोप हुई, और भाव नगर के ठाकुर, नवा नगर के जाम, जूनागढ़ के नौवाब और काठियावाड़ के राजा को ११ से बढ़ कर १५। आरकट के शहज़ादे और बेगम भूपाल की सम्बन्धिनी कुदसिया बेगम को १५ तोप की सलामी नए सिर से मुकर्रर हुई ।

महाराज पन्ना, राजा जींद और राजा नाभा की ११ से १३ तोप की सलामी ज़िन्दगी भर के लिये हो गई और महारानी

तंजौर और महाराज बर्दवान को नए सिर से १३ तोप की सलामी मिली।

मकला के नकीब और शिवहर के जमादार को १२ तोप की सलामी उमर भर के लिये मिली।

मलेरकोटला के नौवाब की सलामी ज़िन्दगी भर के लिये ६ से ११ हो गई, और मुरवी के ठाकुर साहिब और टिहरी के राजा के लिए नए सिर से ११ तोप की सलामी क़ायम हुई।

नीचे लिखी हुई जगहों के राजाओं, सरदारों या ठाकुरों को जीवन समय के लिये नये सिर से नौ २ तोप की सलामी मिली—

धरमपुर, ध्रोल, बलरामपुर, बंसडा, बिरौंदा, गोंदाल, जंजीरा, खरौंद, किलचीपुर, लिमरी, मैहर पलिटाना, राजकोट, सुकेतरा (के सुलतान), सुचीन, वादवान और वंकानेर।

यहां यह भी लिखना आवश्यक है कि १ जनवरी सन् १८७१ से श्रीमती राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार उनको सलामी १०१ तोप की और राजसी झंडे तथा हिन्दुस्तान के गवर्नर जेनरल की ३१ तोप की नियत हुई।

नीचे लिखेहुए राजा और अधिकारी लोग "काउन्सिलर आव दि एम्प्रेस" (राजराजेश्वरी के सलाहकार) नियत हुए :—

जीवन समय तक।

महाराज कश्मीर, श्रीरणबीरसिंह जी० सी० एस० आइ०।

" बूंदी, श्रीरामसिंह जी० सी० एस० आइ०।

" ग्वालियर, श्रीजयाजीराव सेंधिया जी० सी० एस० आइ०।

" इन्दौर, श्रीतकाजीराव हुल्कर जी० सी० एस० आइ०।

,, महाराज जयपुर, श्रीरामसिंह जी० सी० एस० आइ० ।

,, त्रावनकोर, श्रीरामवर्मा जी० सी० एस० आइ० ।

,, झींद, श्रीरघुबीर सिंह जी० सी० एस० आइ० ।

,, नौवाब रामपुर, कलबअलीखां जी० सी० एस० आइ० ।

पद का अधिकार रहने तक

श्रीयुत् रिचार्ड प्लान्टाजिनेट कैम्बेल जी० सी० एस० आइ० ड्यूक आव बकिंहैम ऐन्ड शान्डास, मदरास के गवरनर ।

सर फिलिप उडहाउस जी० सी० एस० आइ०, के० सी० बी०, बम्बई के गवरनर ।

सर एफ० हेन्स के० सी० बी०, हिन्दुस्तान के कमान्डरिनचीफ ।

सर रिचर्ड टेम्पल के० सी० एस० आइ० बंगाल के लेफ्टेनेन्ट गवरनर ।

सर जार्ज कूपर सी० बी० पश्चिमोत्तर देश के लेफ्टेनेन्ट गवरनर ।

सर राबर्ट डेवीस के० सी० एस० आइ०, पंजाब के लेफ्टेनेन्ट गवरनर ।

सर जान स्ट्रैची के० सी० एस० आइ० गवरनर जेनरल की काउन्सिल के मेम्बर ।

सर हेनरी नार्मन के० सी० बी० गवरनर जेनरल की काउन्सिल के मेम्बर ।

आनरबल ए० हाबहाउस क्यू० सी०, गवरनर जेनरल की काउन्सिल के मेम्बर ।

सर ए० क्लार्क के० सी० एम० जी०, सी० बी०, गवरनर जेनरल की काउन्सिल के मेम्बर ।

आनरेबल ई० बेली सी० एस०, आई०, गवरनर जेनरल की काउन्सिल के मेम्बर।

सर ए० आरबुथनाट के० सी० एस० आइ०, गवरनर जेनरल की काउन्सिल के मेम्बर।

नीचे लिखे हुए राजाओं को प्रथम श्रेणी के स्टार आव इन्डिया (जी० सी० एस० आइ०) की पदवी मिली :—

श्रीयुत् महाराज रामसिंह, बूंदी।

,, महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह, बनारस।

,, महाराज जसवन्त सिंह, भरतपुर।

,, प्रिन्स अज़ीमशाह बहादुर, आर्कट।

इन लोगों को दूसरी श्रेणी के स्टार आव इन्डिया (के० सी० एस० आइ०) की पदवी मिली :—

श्रीशिवाजी छत्रपति, राजा कोल्हापुर।

राजा आनन्दराव पंवार, धारवाले।

श्रीमानसिंहजी, राजा ध्रांगध्रा।

श्रीविभवजी, जाम नवानगर।

आर० जे० मैकडोनल्ड, श्रीमती के ईस्ट इन्डोज़ की जहाज़ी फ़ौजों के कमान्डरिनचीफ़।

सर जार्ज कूपर सी० बी०, पश्चिमोत्तर देश के लेफ़टेनेन्ट गवरनर।

जेम्स स्टीवन् साहिब, गवरनर जेनरल की काउन्सिल के पहले मेम्बर।

आर्थर हाबहाउस साहिब, गवरनर जेनरल की काउन्सिल के मेम्बर।

ई० सी० बेली साहिब सी० एस० आइ० गवर्नर जेनरल की काउन्सिल के मेम्बर।

तीसरे दरजे के स्टार आव इंडिया [सी० एस० आइ०] की पदवी २५ आदमियों को मिली जिन में मथुरा के सेठ गोबिन्द दास, कश्मीर के दीवान ज्वाला सहाय, और ट्रावणकोर के दीवान शशिया शास्त्री को भी गिनना चाहिये। नीचे लिखे हुए राजाओं को उनके नाम के सामने लिखी हुई पदवियां मिलीं।

महाराज गाइकवाड़ बड़ोदा—"फ़रज़न्दि खास दौलति इंगलिशिया" (अंगरेज़ी सरकार के मुख्य बेटे)

महाराज ग्वालियर—"हिसामुस्सलतनत" [राज्य की तलवार]

महाराज कश्मीर—"इन्द्रमहेन्द्र बहादुर सिपरिसल्तनत" (राज्य की ढाल)

महाराज अजयगढ़—"सवाई"

महाराज बिजावर—"सवाई"

महाराज चरखारी—"सिपहदारुलमुल्क" (देश के सेनापति)

महाराज दतिया—"लोकेन्द्र"

नीचे लिखे हुए सरदारों और रईसों को "महाराज" की पदवी अपनी ज़िन्दगी भर के लिये मिली:—

आनन्दराव पंवार, धार के राजा।

छत्र सिंह, सम्थर के राजा बहादुर।

धनुर्जय नारायणभंज देव, किलाक्योंझार के राजा, उड़ीसा।

देव्या सिंह देव, पुरी के राजा, उड़ीसा।

जगदेन्द्रनाथ राय, [राजा नाटोर के घराने की बड़ी औलाद]

राजा ज्योतिन्द्र मोहन ठाकुर।

कृष्णचन्द्र, मोरभंज वाले, उड़ीसा।

महीपत सिंह, पटना।

आनरेबल राजा नरेन्द्रकृष्ण, कलकत्ता।

राजा कृष्ण सिंह, सुसाग के राजा।

राजा रमानाथ ठाकुर, कलकत्ता।

नीचे लिखी हुई रानियों को उनके जीवन समय के लिये "महारानी" की पदवी मिली :—

रानी हरसुन्दरी देव्या, सिरसौल, बर्दवान।

रानी हींगन कुमारी, पैंदरा, मानभूम।

रानी सुरतसुन्दरी देव्या, राजशाही।

राजा सर दिनकरराव के० सी० एस० आइ० को "राजा मुशोरिखास बहादुर" [राजा मुख्य सलाहकार बहादुर] की पदवी उनकी ज़िन्दगी के लिये मिली।

नीचे लिखे हुए सरदारों और रईसों को उनकी ज़िन्दगी के लिये "राजा बहादुर" की पदवी मिली :—

रघुबीरदयाल सिंह, बिरोंधा के राजा।

खड़गसिंह, सुरोला के राजा।

:दितप्रतापदेव, खरोंद के राजा।

:ाजा विशेशर मालिया, सिरसौल, बर्दवान।

:ाजा हरिवल्लभसिंह, बिहार।

राजा हरनाथ चौधरी, दुबलहट्टी, राजशाही।

राजा मंगलसिंह, भिनाई, अजमेर।

राजा रामरंजन चक्रवर्त्ती, बीरभूम।

—:*:—

नीचे लिखे हुए मनुष्यों को उन के जीवन समय के लिये "राजा" की पदवी मिली :—

बाबू अजीत सिंह, तरौल, प्रतापगढ़।

बाबा बलवन्त राव, जबलपुर।

बलवन्त सिंह, गंगवाना।

डमरू कुमार वेंकटिया नयुडू, ज़मींदार कलाहस्था, उत्तर आरकट।

देवा सिंह, राजगढ़।

दिगम्बर मित्र, कलकत्ता।

राव गंगाधरराम राव, ज़मींदार पितापुर, गोदावरी प्रान्त।

राव छत्रसिंह, ज़मींदार कन्याधन।

हरिश्चन्द्र चौधरी, मैमनसिंह।

कमलकृष्ण, कलकत्ता।

राय बहादुर क्षेत्रमोहनसिंह, दीनाजपुर।

कुंअर हरनरायण सिंह, हातरस।

कुंअर लछमन सिंह, डिप्टी कलेक्टर, बुलन्दशहर।

सर टी० माधवराव के० सी० एस० आई०, बड़ोदा के दीवान।

ठाकुर माधव सिंह, अजमेर।

प्रताप सिंह, अजमेर।

रामनरायन सिंह, मुंगेर।

श्यामनन्द दे, बलेसर।

श्यामशंकर राय, टिउटा।

सरदार सूरत सिंह मंजिठिया सी० एस० आइ०।

राव साहिब त्र्यम्बक जो नाना अहीर, नागपुर के राव।

कांदोकिशोर भूपति ज़मींदार सुकोंदा, उड़ीसा।

पादोलब राव, ज़मींदार औल, उड़ीसा।

३२ आदमियों को "राव बहादुर" की पदवी मिली जिन में गोपाल राव हरीदेशमुख, अहमदाबाद की स्मालकाज़कोर्ट के जज़, और नारायण भाई दंडकर बरार के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर भी हैं।

२८ मनुष्यों को "राय बहादुर" को पदवी मिली जिन में डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र और बाबू कृष्णोदास पाल के नाम भी गिनने चाहियें।

८ आदमियों को "राव साहिब" को पदवी मिली, ४ को "राव" की और ५ को "राय" की। इन में से अजमेर के पांच आदमी "रावसाहिब" और तीन "राय" हुए। निस्संदेह अजमेर के चीफ़ कमिश्नर सिफारश करने में बड़े उदार जान पड़ते हैं क्योंकि और भी बहुत सी पदवियां उधरवालों के हिस्से में आई हैं। हमारे पश्चिमोत्तर देश से तो सिवाय दो एक के कोई पूछा ही नहीं गया है यद्यपि योग्य पुरुषों की यहां कमी नहीं है।

राय मुन्शी अमीचंद अजमेर के जुडिशल असिस्टेन्ट कमिश्नर को "सरदार बहादुर" को पदवी मिली; रतनसिंह मध्य भरतखंड के पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट को "सरदार" की; देवर परगना के

ठाकुर हीरासिंह को "ठाकुर रावत" की; और लक्ष्मीनरायन सिंह केरावाले को "ठाकुर" की पदवी दी गई। ४ आदमी "नौवाब" हुए। ४० को "ख़ां बहादुर" का ख़िताब मिला जिन में से एक मौलवी अबदुललतीफ़ ख़ां कलकत्ते के डिपटी कलेक्टर भी हैं; और दो को "ख़ां" का ख़िताब मिला।

इन सरदारों को उनके नाम के सामने लिखे हुए ख़िताब ख़ानदानी मिले :—

महाराज सर जयमंगल सिंह बहादुर के० सी० एस० आई० गिद्धौर, मुंगेर—"महाराज बहादुर"।

धर्मजीत सिंह देव, सरदार उदैपुर, छोटानागपुर महाल—"राजा उदयपुर"।

नौवाब ख़ाजा अबदुलग़नी, ढाका—"नौवाब"

दीवान ग़यासुद्दीनअली ख़ां सज्जादाकशीन, अजमेर, को उन को ज़िन्दगी भर के लिये "शैख़ुलमशायख़" का ख़िताब मिला, और सरदार अतरसिंह बहादुर, भदौर, को "मलाजुल उलमा उलफ़ीज़ला" का।

इस के सिवाय एक को "दीवान बहादुर" की, एक को "दीवान" की, और १३ को "आनरेरी असिस्टन्ट कमिशनर" की पदवी दी गई।

दो यूरोपियन महाशयों को फ़ारिन डिपार्टमैंट असिस्टन्ट सेक्रिटरी का, और आनररी असिस्टेन्ट प्राइवेट सेक्रिटरी का पद भी अलग २ दिया गया।

सेना के कितने अधिकारों के साथ भी "सरदार बहादुर" और "बहादुर" की पदवियां लगा दी गईं, और सब छोटे २ अधिकारियों, जहाज़ी नौकरों, सेना के सिपाहियों और गोरों को एक २ दिन की तनख़ाह इनाम मिली और दूसरी रिआयतें भी इन के साथ की गईं। इस के सिवाय नेटिव कमिशन्ड आफ़िसर लोगों की तनख़ाह भी कुछ बढ़ा दी गई है।

रहीमखां खां बहादुर, असिस्टन्ट सर्जन लाहौर को "आनरशी सर्जन" की पदवी मिली।

श्रीयुत रणवीर सिंह जी० सी० एस० आइ० महाराज जम्बू और कश्मीर, और श्रीयुत जयाजीराव सेंधिया जी० सी० एस० आइ० महाराज ग्वालियर को सेना के जेनरल [जरनैल] का पदप्रतिष्ठा की रीत पर श्रीमतीराजराजेश्वरी की ओर से दिया गया।

राजालोगों के सलामी की शोधी हुई नई फिहरिस्त।

राज की सलामी

२१

——गाइकवाड़ बड़ोदा, निज़ाम हैदराबाद और महाराज मैसूर।

१९

महारानी मेवाड़, ख़ान किलात; बेगम भूपाल; महाराज जम्बू इन्दौर, ग्वालियर, ट्रैवंकोर और कोल्हापूर।

बहावलपुर के नवाब, बूंदी के महाराव राजा, कोटा के महाराव, कोचीन के राजा, कच्छ के राव; और भरतपुर बीकानेर जैपुर करौली जोधपुर पटियाला और रीवां के महाराजा।

१५

धार, दतिया, ईडर, कृष्णगढ़, शिकम और उर्छा के महाराजा, देवास के छोटे बड़े राजा, प्रतापगढ़ के राजा, अलवर के महाराव रजा, रानाधौलपुर; डूंगरपुर और जैसलमेर के महा रावल, झालावार के महाराज राना, खैरपूर के खां और सिरोही के राव।

१३

महाराजा बनारस, जावरा और रामपूर के नवाब, कोच बिहार, रतलाम और त्रिपुरा के राजा।

११

चम्बा, छतरपुर, ध्रांगध्रा, फरीदकोट, झबुआ, जींद, कहलूर; कपूरथला, मण्डो, नाभा, नरसिंहगढ़, राजपिम्पला, सीतामऊ, सिलहना, सिरमौर, और सुकेत के राजे। बावनी, कम्बे, जूनागढ़, राधनपूर, राजगढ़, और टौंक के नवाब। अजयगढ़, बिजावर, चरखारी, पन्ना और समथर के महाराजे। बांसवारा के महारावल, भाव नगर के ठाकुर, नवा नेगर के जाम. पालनपर के दीवान और पोर बन्दर के राना।

९

अली राजपूर, बड़वानी और लुनवारा के राना; बैरिया, छोटा उदयपुर, नबोद और सोंठ के राजा; वालाशिनोर के वावी, फुलवो

और लहज के सुलतान तथा सावन्तवाड़ी के देसाई और मालि-यर कोटला के नव्वाब।

शारीरक सलामी।

२१

महाराज दिलीप सिंह, महाराज जीयाजी राव सेंधिया, महाराज तुकोजी राव होलकर, महाराना सज्जनसिंह जी उदयपुर महाराज राम सिंह सवाई जयपूर, महाराज रणवीर सिंह कश्मीर, महाराज श्रीरामबरमा ट्रावेङ्कोर।

१९

मुरशिदाबाद के नवाब निज़ाम, महाराज जसवन्त सिंह जोध-पुर, महाराज सरजङ्ग बहादुर वज़ीर नयपाल, महाराज रघुराज सिंह रीवां।

१७

बेगम भूपाल के पति, हैदराबाद के सालारजङ्ग और शमसुल-उम्रा, महाराज पृथ्वी सिंह कृष्णगढ़, महाराज महेन्द्रप्रताप सिंह पन्ना और नवाब इब्राहीम खां टोंक।

१५

आर्कट के प्रिन्स अज़ीमजाह, ठाकुर तख्तसिंह जी भाव नगर, कुदसिया बेगम भूपाल, राजा मानसिंह ध्रांगध्रा, नवाब महावतखां जूनागढ़, जाम श्रीविभव जी नवा नगर, नवाब कलवलीखां रामपुर।

महाराज महताबचन्द बर्दवान, महाराज जींद, महाराज पन्ना, महाराज विजयनगरम्, राजा नाभा और रानी विजय महिषी मुक्ताबाई तंजौर।

१२

उमर बिन अब्दुल्लह बिन मुहम्मद नकीब मकला, औघ बिन उमर जमादार शहरा।

११

नवाब मालियर कोटला, ठाकुर मोरवो और राजा टेहरी।

९

महारावल बांसवाड़ा, महाराजा बलरामपुर, महारावल धरमपुर, भोल गोंदल, लिमड़ी, पालीटाना, राजकोट और वादवान के ठाकुर, जंगीरा के और सुचीन के नवाब; खंरोद, वंकनीर बिरोंदा और मैहर के राजे और सुलतान सकोतरा तथा किलिचीपुर के राव।

विदित रहे कि महाराज नैपाल, सुल्तान मसकत, सुलतान जंजीबार और अमीर काबुल की सलामी भी २१ है।